आलोचनात्मक अध्ययन

(प्रश्नोत्तर रूप में)

जायसी की काव्य-साधना

— प्रो० दानबहादुर पाठक एम० ए०

डॉक्टर सरला शुक्ला एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर–हिन्दी-विभाग (लखनऊ वि०वि०)
के कर-कमलों में
सादर समर्पित

निवेदन

प्रेम की पीर के अमर गायक नरश्रेष्ठ जायसी, हिन्दी-साहित्य की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका 'पद्मावत' हिन्दी का प्रथम सफल महा-काव्य है, जिसका अध्ययन-अध्यापन प्रायः सभी भारतीय विश्वविद्यालयों की उच्चतम कक्षाओं में किया जाता है। जायसी-साहित्य पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है, अभी और लिखा जाना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण एम० ए० तथा साहित्यरत्न आदि उच्चतम कक्षा के विद्यार्थियों की दृष्टि से किया गया है जिसमें अब तक की प्राप्त समस्त सामग्री का यथासम्भव उपयोग हुआ है। लिखते समय मैंने यह चेष्टा की है कि अधिकाधिक उपयोगी-सामग्री ही विद्यार्थियों के सम्मुख जा सके। अनावश्यक कलेवर-वृद्धि से ग्रंथ को बचाने के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ। प्रश्नोत्तर रूप में जायसी को समझने में विद्यार्थियों को अधिक सुविधा होगी और इससे अपनी परीक्षाओं में वे यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

अपनी इस छोटी-सी कृति के प्रणयन में मैंने निम्नलिखित ग्रंथों की सामग्री का पर्याप्त उपभोग करने का दुस्साहस किया है। अस्तु इन सबके लेखकों तथा प्रकाशकों के प्रति मैं विनम्र आभार प्रकट करता हूँ—

१. जायसी ग्रंथावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२. सूफी महाकवि जायसी—डा० जयदेव
३. सूफीमत और हिन्दी साहित्य—डा० विमलकुमार जैन
४. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमल कुलश्रेष्ठ
५. सूफीमत साधना और साहित्य —प्रो० रामपूजन तिवारी
६. कविवर जायसी और उनका पद्मावत—डा० सुधीन्द्र
७. जायसी—डा० रामरतन भटनागर

८. पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य—प्रो० शिवसहाय पाठक
९. कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा
१०. हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
११. तसव्वुक अथवा सूफीमत—डा० चन्द्रबली पाण्डेय
१२. कुछ अन्य ग्रंथ तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं आदि।

सामग्री का उपयोग करते समय मैंने यथास्थान लेखकों का नामोल्लेख कर दिया है, जहाँ कहीं नहीं कर पाया हूँ उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। जैसा भी मुझ से वन पड़ा है ग्रंथ पाठकों के सामने है। आलोचना के क्षेत्र में मेरा यह प्रारम्भिक प्रयास है जिससे इसमें अनेक त्रुटियों का पाया जाना स्वाभाविक है। इस समय मैं सूफी-साहित्य के विशेष अध्ययन एवं शोध-कार्य में रत हूँ, यदि ईश्वरीय कृपा और विद्वानों के सहज स्नेह से वंचित नहीं हुआ तो शीघ्र ही दो-एक वर्षों में अपने सहृदय पाठकों के सम्मुख कुछ उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करूँगा—पर यह भविष्य की बात है।

हिन्दी साहित्य संसार, नई सड़क देहली के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री रामकृष्ण शर्मा जी का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जिनके आग्रह के फलस्वरूप ही इस ग्रंथ का प्रणयन और प्रकाशन हो सका। ग्रंथ-निर्माण में दुर्भाग्यवश मुझे किसी से भी सहायता नहीं मिली है, इससे उसकी समस्त त्रुटियों का दायित्व भी मेरे ऊपर है।

बस, इस समय इतना ही। आशा है सामान्य अध्येताओं एवं विद्यार्थियों को इस लघु कृति द्वारा जायसी-साहित्य के समझने में सहायता मिलेगी। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

९-७-५८

—दानबहादुर पाठक

प्रश्न-सूची

———

प्रश्न १—'सूफी' शब्द की व्याख्या करते हुए 'सूफी-धर्म' के उद्भव और विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कीजिये तथा भारत में उसके प्रवेश एवं साहित्य पर उसके प्रभाव का भी उल्लेख कीजिए।

'सूफी धर्म' के उद्भव को जानने के पूर्व 'सूफी' शब्द की उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लेना नितांत आवश्यक है; वस्तुतः अत्यधिक महत्वपूर्ण न होते हुए भी विद्वानों के विवाद का यह एक गंभीर विषय रहा है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं जिनमें कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं :—

"कुछ लोगों की धारणा है कि मदीना में मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था, उसी पर जो फकीर बैठते थे वे सूफी कहलाये। दूसरे लोगों का कहना है कि सूफी शब्द के मूल में 'सफ' (पंक्ति) है। निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एवं व्यवहार के कारण औरों से अलग एक पंक्ति में खड़े किये जायेंगे, वास्तव में उन्हीं को सूफी कहते हैं। चौथे दल के विचार में सूफी शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपांतर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है। पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द वास्तव में सूफ (ऊन) से बना है। सूफधारी ही वास्तव में सूफी के नाम से विख्यात हुए। निकल्सन, ब्राउन, मारगोलियथ प्रभृति विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ से बना है। अनेक मुस्लिम प्रतिभाओं ने भी इसे स्वीकार किया है। अस्तु हमको यह व्युत्पत्ति मान्य है। वपतिस्मा देने वाला जान या यूहन्ना भी सूफधारी था, पर अब सूफी का प्रयोग मुस्लिम संत या फकीर के लिए ही नियत सा समझा जाता है।"—(तसव्वुफ अथवा सूफीमत—आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय)।

"ईसा की आठवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म में एक विप्लव हुआ। राजनीतिक नहीं धार्मिक। पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों का एक विरोधी दल उठ खड़ा हुआ। वह फारस का एक छोटा सा संप्रदाय था। इसने परम्परागत

मुस्लिम-आदर्शों का ऐसा घोर विरोध किया कि कुछ समय तक इस्लाम के धार्मिक क्षेत्र में उथल-पुथल मच गई। इस संप्रदाय ने संसार के सारे सुखों को तिलांजलि सी दे दी। संसार के सारे ऐश्वर्यों और सुखों को स्वप्न की भाँति भुला दिया। वाह्य शृंगार और बनावटी बातों से उसे एक बार ही घृणा हो आई। उसने एक स्वतंत्र मत की स्थापना की। सादगी और सरलता ही उसके बाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई। कीमती कपड़े और स्वादिष्ट भोजन से उसे घृणा हो गई। सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख रख उस संप्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र भी बहुत साधारण रखे। वे थे सफेद ऊन के साधारण वस्त्र। फारसी में सफेद ऊन को 'सूफ' कहते हैं। इसी शब्दार्थ के अनुसार सफेद ऊन के वस्त्र पहिनने वाले व्यक्ति 'सूफी' कहलाने लगे। उनके परिधान के कारण ही उनके नाम की सृष्टि हुई।"—(कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा)।

"सूफी शब्द का व्यवहार किसी व्यक्ति के साथ, कब से उपाधि रूप में जुड़ा कुछ निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता। लेकिन कुथैरी के अनुसार इस शब्द का प्रचलन ईसा की नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बहुत हो गया। 'अवारी-फुल मारीफ' के प्रणेता शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी का भी ऐसा ही कथन है कि पैगंबर की मृत्यु के दो सौ वर्षों के बाद ही इस शब्द का आविर्भाव हुआ। वैसे बाद में चलकर सूफी संप्रदाय के सम्बन्ध में लिखने वालों ने जो उसके किसी न किसी संप्रदाय में अन्तंभुक्त थे, इस बात को बहुत दूर तक बढ़ा चढ़ाकर लिखा है। इन लोगों के अनुसार यह शब्द और मत पैगम्बर के समय से अथवा उससे भी पहले से चला आ रहा है। इन कथनों में भावना और कल्पना का ही प्राधान्य है। किसी ऐतिहासिक तथ्य की उद्भावना नहीं। जामी का कहना है कि सर्व प्रथम इस शब्द को अपने नाम के साथ जोड़ने वाला कूफा का अलहाशिम था। निकोल्सन के विचार से अरबी लेखकों में संभवतः बसरा का 'जाहिज प्रथम' था। जिसने सूफी शब्द का प्रयोग किया है। इसी क्रम में प्रो० रामपूजन तिवारी अपनी पुस्तक "सूफीमत साधना और साहित्य" में आगे लिखते हैं कि "इसमें संदेह की गुन्जायश नहीं कि प्रारंभिक काल में सन्यास जीवन बिताने वाली प्रवृत्ति ही

प्रमुख थी जिसने बाद में रहस्यवादी प्रवृत्तियों को अपनाया। सन्यास जीवन और रहस्यवादी प्रवृत्ति का संयोग उमैय्या खलीफों के शासन के अन्तिम दिनों में दीखने लगता है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। अब्बासी खलीफों के शासन के प्रारम्भिक काल में ही यह प्रवृत्ति अत्यधिक व्यापक हो उठती है और 'सूफी' शब्द का प्रसार अधिक से अधिक हो जाता है। पहले जहाँ यह शब्द व्यक्तियों के नाम के साथ जुड़ा हुआ मिलता है वहाँ पचास वर्षों के भीतर इसका प्रयोग सम्पूर्ण ईराक के रहस्यवादी साधकों के लिए होने लगा और दो सो वर्ष बीतते न बीतते प्रायः सभी मुस्लिम रहस्यवादी साधकों के लिए इसका व्यवहार होने लगा। तब से आज तक 'सूफी' शब्द का व्यवहार उसी अर्थ में होता आ रहा है।"

सूफी मत तथा उसका उद्भव—इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में कम मत-भेद नहीं। सूफी शब्द का प्रचलन चाहे जब हुआ हो, "परन्तु इसमें अन्तर्निहित भावना उतनी ही प्राचीन है जितना विकसित मानव हृदय, क्योंकि सूफी भावना भी मानव में सदैव से तरंगित रहस्य की जिज्ञासा का ही परिणाम है।" "मानव मन निसर्गतः एक-सा है जो सदा आत्मा के मूल की खोज में प्रकट या अप्रकट रूप से विकल रहता है। मुस्लिम साधकों के मन में भी यही भावना देश काल के साधन पाकर उद्बुद्ध हुई और अन्त में सूफीमत के रूप में संसार के समक्ष आविर्भूत हुई।"—डा० विमलकुमार जैन

अबुल हसन अलनूरी के अनुसार सूफीमत संसार के प्रति घृणा और प्रभु के प्रति प्रेम रूप गंभीर धार्मिक भावों का प्रकाशन था।

जुनेद का कहना है कि तसव्वुफ ईश्वर द्वारा पुरुष में व्यक्तित्व की समाप्ति और ईश्वरत्व की उद्बुद्धि का नाम है।

अली गजली की दृष्टि में जो शांति से रहता हुआ ईश्वर में अविराम लीन रहे, सूफी है।

शिब्ली ने ईश्वर के अतिरिक्त अखिल विश्व के त्याग को तसव्वुफ कहा है।

अलहुजविरी अमूर्त तत्व को ही सूफीमत बताता है।

डा० विमलकुमार जैन की दृष्टि में "विधि-विधानों से मुख मोड़ निखिल विश्व में व्याप्त इस शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति की झलक सर्वत्र पाकर मुस्लिम साधकों ने जो रहस्य अभिव्यक्त किये उन्हीं के सामंजस्य का नाम सूफीमत है।" सूफीमत या तसव्वुफ भी रहस्यवाद ही है जो अन्तर्निहित भावना के सार्वकालीन एवं सार्वदेशिक होते हुए भी मूलतः मुस्लिम संप्रदाय से सम्बन्ध रखता है। विश्व में सचाई एक है। रहस्यवाद, चाहे वह सूफीमत हो चाहे अद्वैत मत, उसी सचाई के आविष्करण का नाम है।"

"इस प्रकार सूफीमत केवल आदर्शवाद से परे तथा बौद्धिक स्तर को आधार न बनाता हुआ एक धर्म है। जिसमें रहस्य के प्रकटन का प्राधान्य होता हुआ भी चमत्कार को कोई स्थान नहीं है।"

डा० लक्ष्मीधर शास्त्री ने भाषा-विज्ञान के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस्लाम से पूर्व दक्षिणी अरब और यीमैन की सभ्यता का उद्गम भारतीय था। ईसा की तीसरी शताब्दी में ईसाई प्रचारकों ने अरब में पग रखे और नजरान में आकर बसे। ईसाई साधु इतस्ततः भ्रमण करते तथा हनीफ लोगों को मूर्ति पूजा के त्याग और एकेश्वरवाद की शिक्षा देते। साथ ही सन्यस्त जीवन को अपनाने के लिए उत्साहित करते थे और सादा वस्त्र एवं अनेक प्रकार के भोजनों से निवृत्ति की शिक्षा भी देते थे। कुरान में भी इसाइयों की प्रशंसा की गई है।

"इस्लाम से पूर्व अरब में बहुविवाह प्रचलित था। वह प्रथा मुसलमानों में भी आई। ईसाई मत इस विषय में प्रभाव न डाल सका। अनेक गुह्य मण्डलियाँ भी थीं तथा देव दासियों का भी प्रचार था, जिनके द्वारा रति को प्रदीप्ति मिल रही थी। साधकों ने उस रति भाव को रति परक कर दिया जिसमें कुरान में वर्णित, ईश्वर सब का है, विश्व के सारे धर्म उसी एक की आराधना करते हैं; भिन्न-भिन्न रूपों में वही किसी महापुरुष द्वारा सद्ज्ञान प्रचारित करता है। अतः दृश्य भिन्न रूपता नगण्य है। इन शिक्षाओं ने उदारशषों के हृदय में विश्व बन्धुत्व उत्पन्न कर बड़ा योग दिया। आगे चलकर यही रतिभाव

सूफीमत का आधार बना। सूफी साधकों ने इसी सांसारिक प्रेम को दैवी प्रम की सीढ़ी माना।" —डा० विमलकुमार जैन

मुहम्मद साहब के जीवन का अध्ययन हमें बतलाता है कि वे संसार से विरक्त भी थे। संसार का अंतर्द्वन्द उन्हें कभी-कभी विकल कर देता था और वे एकान्त चिन्तन में लीन रहते थे। चालीस वर्ष की अवस्था से कुछ पूर्व वे हेरा की गुफाओं में चले जाते थे और कई दिनों पर्यन्त ईश्वरीय ध्यान में निमग्न रहते थे। सन् ६०९ ई० रमजान के दिनों में एक रात उसी गुफा में उन्हें ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त हुई। उनमें दैवी गिरा अवतरित हुई। कुरान उसी का परिणाम है। उन्होंने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित किया। हेरा की गुफा का यही चिन्तन सूफीमत के चिन्तन का प्राथमिक आधार बना। इस प्रकार आदि सूफियों को अंतिम रसूल के जीवन में सूफीमत के बीज मिले।

कुछ सूफियों का कथन है कि सूफीमत का आदम में बीजवपन हुआ, नूह में अंकुर ज़मा, इब्राहिम में कली खिली, मूसा में विकास हुआ एवं मसीह में परिपाक और मुहम्मद में फलागम हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफीमत अथवा तसव्वुफ के आविर्भाव में पैग-म्बर साहब की शिक्षाओं एवं उनके निजी व्यक्तित्व ने पर्याप्त सहयोग दिया। मुहम्मद साहब द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कोई नई चीज नहीं थी वरन् वैदिक तथा ईसाई एकेश्वरवाद का ही यह प्रतिरूप था। ईश्वर का जो स्वरूप वर्णित है उसमें सूफियों के लिए रहस्यवाद के बीज विद्यमान थे। सूफी ईश्वर को भय का कारण न मानकर प्रेम का पात्र मानते हैं। कुछ लेखकों का विश्वास है कि सूफीमत का मूल स्रोत कुरान ही है जिसका रहस्यपूर्ण अर्थ केवल सूफियों के हृदय में ही प्रकाशित हुआ था।

"सूफियों की भावाविष्टावस्था उनके प्रेमोन्माद और परमात्मा को पान की आतुरता कुरान से आई हुई नहीं जान पड़ती। इस्लाम धर्म की प्रकृति में इस प्रकार की रहस्यवादी भावना नहीं है। वैसे ऐसा कहने का अर्थ यह नहीं है कि रहस्यवादी भावना इस्लाम में एकदम नहीं है, लेकिन इतना अवश्य है

कि प्रारम्भिक काल के धार्मिक प्रवृत्ति वाले मुसलमानों का ध्यान उसकी ओर नहीं था। मनुष्य और परमात्मा के बीच प्रेम का सम्बन्ध तथा अन्य रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ उसमें बाहर से आईं।" —प्रो० रामपूजन तिवारी

सूफीमत की रहस्यात्मक प्रवृत्ति जब इस्लाम से नहीं आई ता आखिर कहाँ से आयी। इस सम्बन्ध में कुछ योरूपीय विद्वानों ने खोज की है जिनमें से अधिकांश का यह मत है कि उस काल में जिस समय सूफीमत ने रूप लेना प्रारम्भ किया था ग्रीक दर्शन और ग्रीक विचारकों का प्रभाव इस्लामी दुनियाँ में अधिक था।

एडलवर्ट मर्क्स ने सूफी मत का आविर्भाव यूनानी दर्शन से बताया है।

ब्राउन का कहना है कि अन्य विचार धाराओं की अपेक्षा सूफीमत के सिद्धान्तों के बनने में नव अफलातूनी दर्शन का सबसे अधिक हाथ है।

निकोल्सन ने यूनानी प्रभाव को सूफीमत के आविर्भाव तथा विकास में प्रमुख स्थान दिया है उसके अनुसार यूनानी प्रभाव के कारण इस्लाम के प्रारम्भ कालीन सन्यास का रूप बदल गया और रहस्यवादी प्रवृत्तियों का उसमें प्रवेश हुआ तथा सन्यास जीवन के क्रिया-कलापों का उद्देश्य यह माना जाने लगा कि वे आत्मा की शुद्धि के लिए साधन मात्र है। आत्म शुद्धि का प्रयोजन यह समझा जाता था कि आत्मा विशुद्ध होकर परमात्मा को जान सके, उससे प्रेम कर सके तथा उसके साथ एकत्व प्राप्त कर सके। इसके साथ ही निकोल्सन ने सूफीमत पर ईसाई धर्म तथा बौद्ध धर्म का भी प्रभाव माना था।

सूफियों की अनेक क्रियाओं में भारतीयता की छाप है। वान क्रैमर के साथ गोल्डजिहिर इस बात पर एक मत है कि सूफियों के भावाविष्टावस्था को उत्पन्न करने वाली कुछ क्रियायें तथा प्राणायाम आदि जैसी क्रियायें भी निस्सन्देह सूफीमत में भारत से आयीं।

वान क्रैमर ने सूफीमत पर ईसाई साधकों के तापस जीवन और बौद्धों की चिन्ताधारा दोनों का प्रभाव माना है। उसकी दृष्टि में बौद्ध तत्व चिन्ता

के द्वारा इस्लाम की रहस्वादी प्रवृत्ति में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए वही सूफीमत के रूप में प्रगट हुआ।

सोपेनहावर ने सूफीमत पर भारत का पूर्णतः प्रभाव माना है।

बहुत लोगों का ऐसा भी कहना है कि सूफीमत वास्तव में हिन्दुओं के वेदान्त दर्शन का इस्लामी संस्करण है।

कुछ लोगों का ऐसा भी कहना है कि सूफीमत वास्तव में आर्य जाति के धार्मिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ जब कि कुछ लोगों ने इसके आविर्भाव को सेमेटिक (शामी) धर्म की विजय के विरुद्ध आर्यों की प्रतिक्रिया माना है।

प्रोफेसर रामपूजन तिवारी ने उपर्युक्त समस्त मतों की चर्चा करते हुए आगे लिखा है कि **"जिस काल में सूफीमत के रूप ग्रहण करने की बात कही जाती है उस काल के पहले से ही भारतवर्ष के साथ अरबों का घनिष्ट सम्बन्ध हो चुका था। इन राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्धों के साथ वे यहाँ के लोगों के रहन-सहन धर्म साधना पद्धति आदि के सम्पर्क में भी आये। वे यहाँ के बौद्ध सन्यासियों तान्त्रिकों सिद्ध पीठों से अवगत हो चुके थे। सिंध के लोगों से उनका घनिष्ट सम्बन्ध होना बिलकुल स्वाभाविक है। सिंध में उस काल में बौद्ध धर्म का प्रचार था। इसका पता अरबों के विवरण से चलता है।"**

दो प्रकार की संस्कृतियाँ अगर पास ही पास हों तो वे एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। साधारण जनता का वाह्याचारों से परिचित होना स्वाभाविक है। मुस्लिम जनता ने निकटवर्ती क्षेत्रों में बौद्धश्रवणों की दिनचर्या सन्यासी जीवन आदि को देखा था और बहुत अंशों में वह प्रभावित भी हुई थी। इन वाह्याचारों के साथ बौद्ध दर्शन का भी कुछ-कुछ परिचय धार्मिक प्रवृत्ति वाले मुसलमानों को था। सूफी साधकों ने माला का व्यवहार इन बौद्ध भिक्षुओं से सीखा। कट्टर मुसलमान इन साधकों को माला का व्यवहार करते देख अप्रसन्न होते थे। बाद में कुछ परिवर्तनों के साथ इस्लाम में भी माला का समावेश हो गया।

भारतीय चिन्ताधारा से अरब तथा अन्य देशों का परिचय साहित्य, ज्योतिष, गणित आदि द्वारा भी हुआ था।

अन्त में प्रो० तिवारी इस निष्कर्ष पर आते हैं कि "इसके आविर्भाव तथा विकार में अन्य धर्म और मतों जैसे भारतीय वेदान्त, बौद्धधर्म, नास्टिक मत, नव अफलातूनी तथा यूनानी दर्शन का प्रभाव रहा है। लेकिन यह प्रभाव नकल के रूप में नहीं रहा है बल्कि उन बाहरी विचारधाराओं को सूफी साधकों एवं तत्व-चिन्तकों ने अपने ढंग से अपनाया और सूफीमत का विकास इस्लाम धर्म को ध्यान में रखते हुए ही हुआ।"

वस्तुत: सूफीमत के आविर्भाव का केन्द्र-बिन्दु कोई एक नहीं। न तो यह मत इस्लाम से निकला और न बौद्ध, हिन्दू अथवा ईसाई धर्मों से। इस धर्म के मूल में प्रारम्भ में तापसी जीवन व्यतीत करने वाले पवित्र साधुओं की उस सात्विक मनोवृत्ति का वास है जो पारलौकिक प्रेम को प्राप्त करने में उनकी सहायिका रही है। कालान्तर में विभिन्न धर्मों, जातियों और संस्कृतियों तथा परिस्थितियों के सम्पर्क में आने से समयानुकूल उसमें परिवर्तन होते गय। जिसमें अनेक नवीन तत्वों का समावेश भी हुआ। इस प्रकार उत्तरोत्तर इसका विकास होता गया। यही कारण है कि सूफीमत में वे सभी तत्व हैं जिनके द्वारा मानवता का उच्चतर भाव भूमि पर अनुभव और विकास होता है। सूफीमत की मूल प्रेरक भावना को किसी एक धर्म, जाति या परम्परा की सम्पत्ति नहीं कहा जा सकता।

सूफीमत का विकास—इस्लामी धर्म तथा शासन सम्बन्धी संस्थाओं के अध्यक्ष मुहम्मद का निधन ८ जून ६३२ ई० को हुआ। उनकी प्रिय पत्नी आएशा के पिता अबूबकर उनके उत्तराधिकारी निर्वाचित हुए। किन्तु उनके समय में स्थान-स्थान पर विद्रोह की ज्वाला फूटी। प्रथम बार एक अस्त-व्यस्तता नजर आई, तदुपरि उनके उत्तराधिकारी 'उमर' खलीफा हुए और फिर उनके बाद उस्मान अध्यक्ष चुने गये। उस्मान के समय में ही अरब ने शीघ्रता से विलासिता की ओर कदम बढ़ाये। इस्लाम की पवित्रता अब काल्पनिक वस्तु रह गई। बारह वर्षों के अल्प-जीवन में ही वह इस गति को प्राप्त हुआ। उस्मान ६४४ ई० में खलीफा हुए थे। उस्मान के बाद ६५६ ई० में अली जो कि ईश्वरीय दूत के दामाद थे इस बार इस्लामी धर्म तथा शासन सम्बन्धी संस्थाओं

के अध्यक्ष नियुक्त हुए। किन्तु इनके समय में स्थिति और भी डावाँडोल हो गई। स्वार्थों की आँधी ने उनके सिंहासन को डगमगा दिया। मुआवियाबिन अबी सुफया के अधिनायकत्व में एक भारी विद्रोह हुआ और एक दर्द-भरी कहानी के साथ अन्तत: मुआविया खलीफा हुए।

इस समय तक मुहम्मद के चारों साथी विश्व से विदा ले चुके थे। मुआविया ने, जो इस समय खलीफा के पद पर था, सर्वप्रथम अपने को बादशाह कहा। किन्तु जनता इससे बहुत ही असन्तुष्ट थी। धीरे-धीरे उसमें दो दल हो गये—सिपा और खारिजा। ६८० ई० में अली के पुत्र हुसेन ने सामने आकर अपने को सच्चा खलीफा पद का अधिकारी कहा। इस समय मुआविया का पुत्र वजीद सिंहासन पर था। उससे हसन हुसेन का भीषण युद्ध हुआ। कर्बला की भूमि रक्त-रंजित हो गई। हसन-हुसेन तथा उसके सभी साथी मृत्यु को प्राप्त हुए। वजीद बड़ा नृशंस था। उसने मक्का तथा मदीना पर भी अत्याचार किया। इसकी प्रतिक्रिया हुई। मुख्तार नाम के एक व्यक्ति के नेतृत्व में लोगों ने उसे मार डाला। सीरिया के अरब भी उत्तरी और दक्षिणी अरबों में विभक्त हो गये।

इस्लाम की जन्मदात्री अरब की पुण्य भूमि का सातवीं शताब्दी का यही इतिहास है। इस समय तक जनता इन विद्रोहों और क्रान्तियों से ऊब चुकी थी। उसे अब सन्देह होने लगा कि क्या मुहम्मद साहब की शिक्षा यही मार-काट सिखाती थी ? क्या कुरान ने मानवता का इसी पथ का प्रदर्शन किया था ? क्या इस्लाम के अधिष्ठाता का यही आदर्श स्वरूप था ? इस प्रकार के अनेक प्रश्न उस समय की शान्ति-प्रिय जनता के मस्तिष्क में उठने लगे थे। मुहम्मद साहब की मृत्यु को अभी सौ वर्ष भी नहीं बीते थे कि इसी बीच पतन का यह ताण्डव नर्तन और नृशंसता का यह रूप प्रकट हुआ। जनता को इससे भारी विरक्ति हो गई और वह कुरान के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए लालायित हो उठी। परिणाम स्वरूप एक वर्ग बन गया जिसने कुरान का एक दूसरा ही अर्थ निकालना आरम्भ किया। सूफी-धर्म का मूल यहीं से इस्लामी सम्पर्क लिए आरम्भ होता है।

आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध शान्तिपूर्ण ढंग से बीता। खलीफाओं ने राज्य-व्यवस्था में उन्नति करवाई। जनता के उपर्युक्त वर्ग को कुछ सोचने-समझने का अवसर मिला और विद्या तथा कला की विशेष उन्नति हुई।

आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुनः विप्लव आरम्भ हुए। मुस्लिम जनता का एक अल्पसंख्यक वर्ग इससे घबरा गया। शान्ति की भूखी जनता विह्वल हो उठी। यह अशान्ति और उच्छृङ्खलताओं का युग था। सलमान पारसी के नेतृत्व में एक धार्मिक सुधार आन्दोलन हुआ। सलमान पारसी ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का उपासक था। ईश्वर और मनुष्य के बीच प्रेम का सम्बन्ध ही वह सर्वोत्तम मानता था। उसका वह प्रेम सांसारिकता से दूर आध्यात्मिक प्रेम था। पर उसने विश्व की भी उपेक्षा नहीं की, प्रकृति में उसी परमात्मा का प्रतिबिम्ब देखा। सूफी धर्म का प्राण रहस्यवादी प्रेम यहीं से जीवन आरम्भ करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सातवीं शताब्दी के अन्त में सूफी धर्म का आकारिक आविर्भाव होता है और नवीं शताब्दी तक उसे विकास का स्वरूप मिल जाता है। फिर उत्तरोत्तर उसकी गति का अपना अस्तित्व बनता गया। इसी विकास-कथा को डा० कमलकुलश्रेष्ठ ने निम्न चार कालों में बाँटा है जिन्हें हम साभार उद्धृत करते हैं—

१—तापसी जीवन—(७-९वीं शताब्दी ईसवी)।
२—सैद्धान्तिक विकास (१०-१३वीं शताब्दी ईसवी)।
३—सुसंगठित सम्प्रदाय (१४-१८वीं शताब्दी ईसवी।
४—पतन (१९वीं शताब्दी ईसवी से आधुनिक समय तक)।

तापसी जीवन—ऊपर हमने बताया है कि **"ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्त में जनता का एक वर्ग इस्लाम के प्रचलित स्वरूप से सशंकित हो उठा था। सम्भवतः उसका यह दृढ़ विश्वास हो चला होगा कि मोहम्मद साहब की शिक्षा में कुछ और अधिक गहराई है। कुरान मानवता को किसी दूसरे मार्ग पर जाने का आदेश देती है और इस्लाम के धवल प्रकाश ने किसी दूसरे**

समुन्नत लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पंथ को आलोकित किया है । इस वर्ग के मनुष्यों को मोहम्मद साहब का जीवन तथा कुरान की पवित्र पुस्तक कुछ दूसरी शिक्षायें देती थी । यह वर्ग उस समय के पतनोन्मुख समाज से अलग एकान्त में व्यष्टि का तापसी जीवन व्यतीत करता था । सूफी-धर्म की प्रारम्भिक उत्पत्ति इसी में अन्तर्निहित है । मोहम्मद द्वारा प्रचारित इस्लाम धर्म के धवल प्रकाश में कई रंग की किरणें मिली हुई थीं। राजनीति के शीशे ने उनको अलग-अलग बिखरा दिया । शिया, खारिजा, मुर्जिया और कादरी सम्प्रदायों ने सबसे पहिले जन्म लिया ।" —डा० कमलकुलश्रेष्ठ । बाद में ये सम्प्रदाय उपसम्प्रदायों में विभक्त हो गए ।

ईसा की सातवीं शताब्दी में सूफी साधक परम्परागत धर्म की पाबन्दी और इसके नियम-कानूनों को मानकर ही चलते थे । उस समय तक सूफीमत नकारात्मक विशेष था । उसके सिद्धान्तों का उस समय तक समुचित विकास नहीं हो पाया था । इस समय तक वे न साधना के मानसिक पक्ष की ही ओर अग्रसर हो पाये थे और न पूरा-पूरा फकीरों जैसा जीवन बिताने तक ही सीमित है । पैगम्बर के कुछ विशेष वचनों और उपदेशों को वे अत्यधिक महत्व देते थे । धीरे-धीरे तत्व-चिन्तन की ओर भी अग्रसर होने लगे । किन्तु यह तत्व-चिन्तन की प्रवृत्ति भीतर ही भीतर काम कर रही थी । प्रकाश में लगभग सौ वर्षों के बाद आई ।

ईसा की आठवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में सूफी साधना का मानसिक पतन प्रवल होता गया और सूफी साधकों ने परम सत्ता की सर्वव्यापकता तथा प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परम सत्ता के दर्शन करने के सिद्धान्त को अधिक से अधिक अपनाया । बग़दाद उस काल में एक जबरदस्त सांस्कृतिक केन्द्र था । अब्बासी खलीफों के दरबार में विद्वानों और अन्य सुधी जनों को पूरा सम्मान था । बाहर के विद्वान वहाँ आते थे और इसाइयों, बौद्धों तथा मुसलमानों के बीच शास्त्रार्थ हुआ करता था इसका प्रभाव सूफी साधकों पर पड़ा । ईसा की आठवीं शताब्दी के पिछले दस पंद्रह वर्षों से लेकर नवीं शताब्दी के लगभग साठ वर्षों तक, ७५ वर्षों का काल सूफीमत के विकास की एक नई दिशा की

सूचना देता है। इसके पहले के साधक फकीरों सा सादा जीवन बिताते थे और इस प्रकार के जीवन को वे ईश्वरीय विधान के अनुरूप समझते थे। फकीरी जीवन बिताने के साथ-साथ इन साधकों ने परम सत्ता को प्रियतम के रूप में देखा। इसके लिए उनके हृदय में प्रेम की व्याकुलता थी। उसका प्रेम पाना ही उनके लिए अभीष्ट था। प्रेम की यह विह्वलता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इस काल के साधक प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परम सत्ता के दर्शन पाने लगे तथा अहं को खो कर बेखुदी की हालत में परम प्रियतम का साक्षात्कार करने लगे।

सारांश यह है कि इस समय का सूफी-धर्म अत्यधिक व्यवहारिक था और अपने आदर्श के निकट था। पार्थिव संघर्षों से दूर प्रकृति की एकांतिक गोद में उसका विकास हो रहा था। सूफी धेय के सिद्धान्त, निर्माण की राह में थे।

सैद्धान्तिक विकास—उपर्युक्त बातों की चर्चा करते हुए प्रो० रामपूजन तिवारी लिखते हैं कि **"सूफियों के प्रेम और बेखुदी के सिद्धान्त इस्लाम के धर्मानुयायियों को खटकने वाले थे। सूफी इस्लाम के वाह्य आचारों को उतना महत्व नहीं देते थे और उनकी व्याख्या अपने ढंग से करते थे। केवल वाह्य आचार का यंत्रवत पालन करना सूफियों की दृष्टि में बेकार था। वे अन्तर की शुद्धि तथा हृदय से धर्म के नियमों को समझना और उनका पालन करना ही असली धर्म का पालन करना मानते थे। इसका फल यह हुआ कि बहुत से सूफी साधकों को प्राण गवाँ देने पड़े और कितनों को निर्वासित होना पड़ा।"** राबियाँ और उसकी सहेलियों को शरीयत विरुद्ध भावनाओं के प्रकाशन के लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। बरजा के हाथ पैर काट गये। किन्तु इन सन्त महिलाओं ने रसूल की (मुहम्मद) की उपेक्षा की और सारे जीवन को परमेश्वर के प्रेम से प्लावित कर दिया। मीरा जिस तरह अपने को कृष्ण की दुलहिन समझती थीं उसी तरह राबियाँ और उसकी सखियाँ अपने को अल्लाह की दुलहिन समझती थीं। इनके उद्‌गारों में जहाँ प्रेम का पुनीत दर्शन है, जहाँ भावना का दिव्य विलास है, वहाँ वेदना का भी प्राचुर्य है। मंसूर शतशः प्रेमी जीव था। इसी से सरीयत के उपासक उसके प्राणों के ग्राहक हो गये।

पर इससे वह घबराया नहीं। हँसते-हँसते प्राण गंवा दिया। **'अनहलक'** कह कर उसने भारतीय ब्रह्मवाद के **'तत्वयसि'** की बात दुहराई। सूफियों के अनेक सिद्धान्त कसूर (हल्लाज) से ही आरम्भ होते हैं। उसी ने **'हुलूल', 'लाहूत', 'नासूल', 'नूर मुहम्मदी', 'अम्र, और अनलहक'** की व्याख्या की।

सनातन पंथी इस्लाम के साथ सूफीमत के विरोध को दूर करने तथा इन दोनों में सामन्जस्य बैठाने का सर्वाधिक श्रेय ग़ज़ाली को है। सनातन पंथियों के बीच सूफीमत के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव ग़ज़ाली के ही कारण आया। अब तक बहुत से लोग सूफ़ियों में काफी प्रसिद्धि पा चुके थे और गुरु परम्परा का प्रणयन हो चुका था। यह बात पूर्ण रूप से मान ली गई थी कि बिना मुर्शिद (गुरू) के आध्यात्मिक जीवन के रहस्य नहीं मालूम हो सकते।

इस काल में सूफी सिद्धांतों का विकास हुआ। अनेक सैद्धान्तिक पुस्तकों का प्रणयन हुआ। सूफियों में जिस प्रेम का प्रचार तेजी से हो रहा था उसकी तीन कोटियाँ निर्धारित की गईं—निकृष्ट, मध्यम और उत्तम। परमसत्ता के स्वरूप के विषय में दो विचारधारायें प्रचलित हुईं १—परमसत्ता प्रकाश स्वरूप है और २—परमसत्ता विचार स्वरूप है। इन भावनाओं के विकास में इब्न सीना, इब्न अरबी और इब्न जीली का प्रमुख हाथ था। इब्न सीना के अनुसार **"परमसत्ता का स्वरूप शाश्वत सौन्दर्य भरा है। आत्म-अभिव्यक्ति उसकी विशेषता एवं प्रकृति है। वह अपना स्वरूप सृष्टि में प्रतिबिम्बित कर देखती है। आत्म-अभि-व्यक्ति ही उसका प्रेम है जो सारे संसार में व्याप्त है। प्रेम सौंदर्य का आस्वादन है और सौंदर्यपूर्ण होने के कारण प्रेम भी पूर्ण है। इस प्रकार प्रेम संसार की जीवन शक्ति है। प्रेम के द्वारा ही मानवात्मा परमात्मा से एकत्व की अनुभूति करती है।"**—इसी तरह इब्न अरबी और इब्न जीली ने भी अपने सैद्धांतिक विचार व्यक्त किए। इब्न जीली हिन्दू धर्म से पूर्ण परिचित था।

सूफी धर्म के विकास में इस काल के अनेक कवियों का योग भी महत्वपूर्ण रहा है। ईश्वर तथा उसके प्रेम, जीवन और जगत की विवेचना इन कवियों के काव्यों में हमें मिलती है; साथ ही सैद्धान्तिक चर्चा भी।

अस्तु उपर्युक्त बातों के साथ डा० कमलकुलश्रेष्ठ के शब्दों में हम कहेंगे कि "इस काल में सूफी-धर्म एक सुनियमित सम्प्रदाय बन गया। सूफी प्रवृत्तियों एवं धर्म नियमों का शास्त्रीय विवेचन किया गया। इससे धर्म की रूपरेखा अति स्पष्ट हो गई। पार्थिव संघर्षों से भागकर तापसी जीवन का अवलम्बन लेने वाले थोड़े से सन्त इस समय बहुसंख्यक हो गये थे और उनका प्रभाव नागरिकों पर बढ़ता जा रहा था। इस समय के सूफी सिद्धान्त निर्माताओं को राज्याश्रय भी प्राप्त था। शास्त्रीय विवेचन के लिए एक पारिभाषिक शब्दावली का भी निर्माण किया गया।"

अब सूफीधर्म इस्लाम की एक नवीन व्याख्या देने लगा था जिसका आधार दर्शन था। गुरुओं के नामों पर विभिन्न सम्प्रदाय बन-बनकर अपना प्रचार मार्ग निश्चित कर रहे थे।

सुसंगठित सम्प्रदाय—यह काल संप्रदायों का काल था। अनेक प्रतिष्ठित सन्तों ने स्वकीय मतानुसार आध्यात्मिक शिक्षा के प्रचारार्थ इनकी स्थापना की। ए० एम० ए० शुष्टरी ने लिखा है कि "इनकी संख्या १७५ से भी अधिक थी किन्तु सभी गण्य नहीं हैं। उनमें से कादरी, तेफुरी, जुनेदी, नक्शबेदी, शाधिली, शत्तारी, मौलवी और चिश्ती अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।"

"इन सम्प्रदायों में स्त्री-पुरुष समान रूप से प्रवेश पाते थे। अनेक स्थलों पर मठ बने हुए थे जिनमें मुरीदों (शिष्यों) को शेख (गुरू) के समक्ष कर्तव्यशील एवं आज्ञापालक रहने की शपथ लेकर कुछ वर्ष अध्ययन करना पड़ता था। कुछ सम्प्रदायों में अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ समझा जाता था परन्तु अधिकांशतः इस विचार को मान्यता प्राप्त न हुई। सम्प्रदायों में विभिन्नता होते हुए भी मूल सिद्धान्तों की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं था। केवल कालानुसार व्याख्या के अन्तर से अन्तर आ गया है। इनमें अपने कुछ अभ्यास होते थे जिन्हें वे कठोरता से पालन करते थे। एकान्तवास, मौन, स्वाध्याय, जप एवं ध्यान को बड़ा महत्व दिया जाता था। जुनेद ने अपने सूफीमत को आत्म-समर्पण, उदारता, धैर्य, मौन, विरक्ति, ऊनी वस्त्र, यात्रा एवं निर्धनता रूप उन श्रेष्ठ गुणों पर आश्रित किया था जिनका आदर्श इस्साक, अब्राहम, अयूब, जकरिया, मूसा,

ईसा, यही और मुहम्मद साहब में विद्यमान था। सालिक (नव शिक्षित) को इनमें एक को अपनाना पड़ता था, जिसके द्वारा वह लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ़ता था। प्राय: सभी सम्प्रदाय इन्हीं या ऐसे ही गुणों का आचरण परमावश्यक समझते थे।"—डा० विमलकुमार जैन।

इस सम्प्रदाय काल में कोई सैद्धान्तिक उन्नति नहीं हुई। कुछ ग्रंथ लिखे अवश्य गए पर उनका कोई महत्व विशेष नहीं। इस काल में प्रचार कार्य के साथ-साथ दिखावे की प्रवृत्ति वढ़ी और करामातों का प्रदर्शन भी। प्रत्येक सन्त करामाती बनता था और उसके शिष्य उसकी करामातों का प्रचार करते थे। अन्ध-विश्वासी और भोली-भाली जनता सहज ही इन करामातों के चक्कर में आ जाती थी और पीरों को ब्रह्म के सदृश ही पूजने लगती थी। यही सूफी-धर्म के पतन का कारण हुआ।

पतन काल—यह काल अपने नाम से ही अपने कार्यों का विवरण दे रहा है। करामाती सूफी संत जब अपनी पवित्रता खो बैठे, सिद्धान्तों से गिर गए, केवल दिखावा और प्रदर्शन ही उनका एकमात्र सहारा रह गया, तो ऐसे समय में इस धर्म का पतन हो ही जाना चाहिए। सम्प्रदायों की संख्या इतनी बढ़ चली कि उनका निज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। प्रत्येक सूफी अपना-अपना सम्प्रदाय चलाने के चक्कर में पड़ने लगा। लेकिन भीतर से खोखला होने के नाते उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिल सकी। शिष्य गुरुओं की गरिमा और असलियत से परिचित हो गए। ये आडम्बरपूर्ण करामाती-करिश्मे अधिक दिन तक अपने अस्तित्व की रक्षा न कर सके। विश्व की राजनैतिक परिस्थितियों में भी विविध परिवर्तन हुए। धर्म से लोगों की आस्था हटने लगी। वैज्ञानिक प्रकाश में धार्मिक विचार चकाचौंध से अपना रास्ता भूल गए। जनता में भी जागृति आई। नवयुग की लहर सबके मानस से टकरा-टकरा कर सब को जगाने लगी। ऐसी दशा में सूफीमत के ये खोखले धर्माध्यक्ष कहाँ तक उसकी रक्षा कर पाते। उनके आडम्बरों का पर्दाफाश हो गया और जनता का विश्वास उनसे उठ चला। सूफी-धर्म विश्व के धार्मिक गगन के एक कोने में मन्द प्रकाश से लघु नक्षत्र के रूप में टिमटिमा रहा है जिसका होना या न होना

इस विश्व के लिए कोई महत्व नहीं रखता। आज भी कुछ सूफी मिल जाते हैं किन्तु उनको समाज में कोई स्थान नहीं।

भारत में प्रवेश और साहित्य पर प्रभाव—यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता कि सूफी धर्म भारतवर्ष में कब और किसके द्वारा आया। वैसे इस्लाम तो उत्तरी भारत में सातवीं-आठवीं शताब्दी में ही आ गया था परन्तु उसी समय सूफी सम्प्रदाय भी भारत में आ गया हो, यह आवश्यक नहीं और न उसके आने का कोई प्रवल प्रमाण ही मिलता है। कुछ लोग अनुमान लगाते हैं कि आठवीं शताब्दी में सूफियों का प्रवेश भारत में हो गया था। पर उनके कथन में कहाँ तक तथ्य है कुछ ठीक रूप से नहीं कहा जा सकता। सामान्यतया अधिकांश विद्वान इस पक्ष में हैं कि सूफी ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में भारत में आये और तभी से अपना प्रचार धीरे-धीरे बढ़ाने लगे। सर्वप्रथम पंजाब और सिन्ध ही इनके शरणास्थल रहे जहाँ काफी दिनों तक अपना प्रसार करते रहे। वहीं पर ये वेदान्त, गोरखनाथी हठयोग, हीनयानी बौद्ध (सिद्ध) मत आदि के सम्पर्क में भी आये और परस्पर विचार-विनिमय हुआ। इस समय भारत में भक्ति-आन्दोलन चल रहा था। सम्पूर्ण देश एक विचित्र भावना से आप्लावित था। धीरे-धीरे समय बीतता गया, राजनैतिक वातावरण शांत होता गया और हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर मेल-जोल की भावना बढ़ती गई जिसकी पृष्ठभूमि पर यह सूफीमत भारत में विकसित होता गया। इस मत को भारत में फैलाने में निम्न चार प्रमुख सम्प्रदायों का नाम लिया जाता है :

१—**चिश्ती सम्प्रदाय**—बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में।

२—**सुहरावर्दी सम्प्रदाय**—तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में।

३—**कादरी सम्प्रदाय**—पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में।

४—**नक्शबन्दी सम्प्रदाय**—सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में।

ये सम्प्रदाय भारत में तुर्किस्तान, ईरान और अफगानिस्तान से विविध संतों द्वारा भारत में प्रचारित हुए। ये सम्प्रदाय राज्याश्रय प्राप्त करके भारत में नहीं आये, इनका कोई संगठन भी नहीं था। इन सम्प्रदायों के सन्त अपनी

प्रेरणाओं के फलस्वरूप भारत में आये। इन सन्तों की साधना से जनता प्रभावित होती थी और राजाओं पर भी उनका प्रभाव पड़ता था। आचरण की पवित्रता और सात्विकता ही इनका बल था तथा इनके मत प्रचार का साधन था। ये सरल तथा सहिष्णु व्यक्ति थे। हिन्दू धर्म के निष्ठामान धार्मिक सन्तोंका सत्संग करते थे और उनके गुणों को ग्रहण करने की भावना इनमें रहती थी। ये कट्टरपंथी नहीं थे। उदारता और हृदय की विशालता इनमें कूट-कूट कर भरी थी। अनुभव संचय के लिये ये विविध स्थानों का भ्रमण करते थे और विद्वानों से भेंट करते थे। बात सदा मीठी ही करते थे। दूसरों की भवनाओं को ठेस पहुँचाने वाली स्पष्टवादी कबीर प्रवृत्ति इनमें नहीं थी। सूफी धर्म का प्रसार भारत में पूर्ण तथा शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों पर चल कर हुआ। यह इस्लाम का वह रूप नहीं था जो तलवार की धार पर चलकर या रक्त की सरिता में वह कर भारत भूमि पर आया हो। प्रेम, आत्मीयता, सरलता और सच्चरित्रता के सहारे यह विचार धारा भारत में फैली और इससे इस्लाम के प्रसार में योग मिला। यह स्थायी योग था जिसने जनता के दिलों में घर किया। किसी भय या आन्तक के कारण इसका प्रसार नहीं हुआ। —(श्री यज्ञदत्त शर्मा)।

जहाँ तक भारतीय साहित्य पर इस धर्म के प्रभाव का प्रश्न है वह स्पष्ट है। कबीर आदि सन्तों द्वारा जो कार्य पूरा नहीं हुआ वह इन सूफी साधकों ने कर दिखाया। हिन्दी काव्य और भक्ति में एक प्रेमाश्रयी शाखा ही चल निकली जिसमें सर्वाधिक योग इन मुसलमान सूफी कवियों का ही था। इसमें सन्देह नहीं कि इन सूफी कवियों ने अपने काव्य में अपना मुख्य उद्देश्य सूफी मत का प्रचार ही रखा है किन्तु फिर भी उनके द्वारा भाषा का उपकार हुआ। तत्कालीन वातावरण को देखते हुए हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य भावना में योग मिला। दो संस्कृतियों का एक दूसरे से अत्यधिक निकट का सम्बन्ध हुआ, परस्पर आदान-प्रदान हुआ और प्रेम की महत्ता का सर्व साधारण में व्यापक प्रसार हुआ। इन सूफि कवियों ने प्रेम के जिस एकान्तिक रूप का चित्रण किया है वह भारतीय साहित्य में विलकुल नई चीज है। भारतीय काव्य साधना में प्रेम

की ऐसी उत्कट तन्मयता दुर्लभ थी। विरह का वर्णन करने में ये कवि कमाल करते हैं। ये कथा-कथा के लिये नहीं कहते, इनका लक्ष्य (अपने धर्म के आधार पर) भगवत्प्राप्ति रहता है। इसीलिए, भगवान के विरह में जीवात्मा की तड़पन का ये बड़ी सजीवता के साथ वर्णन करते हैं। जायसी का पद्मावत इस परम्परा का सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्य के प्रबन्ध काव्यों में रामचरित मानस के बाद सभी दृष्टियों से इसी का स्थान है। हिन्दी का वह एक प्रभावान रत्न है जिसकी कान्ति अनन्तकाल तक बनी रहेगी और उसके प्रकाश में मानव अपने हृदय का प्रतिबिम्ब देखता रहेगा।

प्रश्न २—जायसी का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुए उनके कवि के उद्भव और विकास में उसका योग बताइए।

भारत के महापुरुष और महाकवि स्वभावतः बड़े संकोची तथा विनयशील रहे हैं। उनके संकोच और विनयशीलता ने प्रायः उन्हें अपने सम्बन्ध में, अहमन्यता प्रदर्शन के भय से, कुछ भी न लिखने के लिए ही प्रेरित किया। चन्द, कबीर, सूर तथा तुलसी आदि अनेक महाकवियों का जीवन वृत्त अतीत के गर्भ में सोया पड़ा है। दूसरी बात यह भी है कि भारतीय प्रकृति इतिहास लिखने के अनुकूल नहीं रही है। वे सदैव इस लोक से परे की सोचते रहे हैं। हाँ, मुस्लिम इतिहासकारों ने अपने समय के इतिहास अवश्य प्रस्तुत किए हैं जिनमें अपने आश्रयदाताओं का कीर्तिगान उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि निष्पक्ष ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव कलाकारों के जीवनवृत्त का साक्षात्कार कराने में जिज्ञासुओं के लिये सबसे बड़ा विघ्न सिद्ध हुआ है। ऐसी दशा में बाह्य साक्ष्य का आधार तथा जनश्रुतियों और किंवदंतियों का आश्रय लेना पड़ता है।

सौभाग्यवश जायसी का अंतः-साक्ष्य भी इस दिशा में हमारा सहायक है क्योंकि फ़ारसी मसनवियों के अनुकरण पर उन्होंने अपनी कृतियों में अपने विषय में कुछ विवरण दिये हैं जिन्हें प्रमाण रूप में हमें ग्रहण करना चाहिये। बाह्य साधनों में डाक्टर जयदेव ने अपने प्रसिद्ध शोध ग्रंथ 'सूफी महाकवि जायसी' में निम्न पाँच संकेत किए हैं :—

१—तत्कालीन ग्रंथों में जायसी विषयक संकेत।
२—सूफियों की परम्परा में जायसी का वर्णन।
३—जायस नगर के इतिहास में उनका विवरण।
४—असेठी राज्य के इतिहास में उनका विवरण।
५—पीछे के व्यक्तियों की खोज का उनके विषय में निर्णय।

अंत: साक्ष्य में जायसी के तीनों ग्रंथ 'पद्मावत' 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आते हैं। अब हम इस अंत:साक्ष्य-वहिसाक्ष्य तथा जनश्रुतियों और किंवदंतियों आदि सभी प्राप्त साधनों के वैज्ञानिक आधार पर कविवर जायसी का जीवन वृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

जन्म तिथि तथा स्थान—जायसी विरचित 'आखिरी कलाम' में एक अर्द्धाली इस प्रकार है :—

भा मोर नव सदी।
तीस बरिस ऊपर कवि बदी।

इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य तो नहीं खुलता, फिर भी यदि पाठ 'नव सदी' ही माना जाय तो जायसी का जन्म काल सन् ९०० हि० (१४९२ ई० के लगभग) ठहरता है। दूसरी पंक्ति 'तीस बरिस ऊपर कवि बदी' का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म के ३० वर्ष उपरांत जायसी अच्छी कविता करने लगे। 'आखिरी कलाम' में ही आगे जायसी ने एक बड़े भूकंप तथा सूर्य ग्रहण का अतिरंजित शब्दों में वर्णन किया है। स्थल दर्शनीय है :—

आवत उद्यत चार विधि ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना॥
धरती दीन्ह चक्र विधि भाई। फिरै अकास रहट की नाईं॥
गिरि पहाड़ मेदिनि तस हाला। जस चाला चलनी भर चाला॥
मिरित लोक ज्यों रचा हिंडोला। सरग-पताल पवन खट डोला॥
गिरि पहाड़ पर्वत हिलि गए। सात समुन्द्र बीच मिलि गये॥

× × ×

सूरज सेवक ताकर अहै। आठौं पहर फिरत जो रहै ॥
सो अस बपुरै गहनै लीन्हा। औ धरि बाँध चँडालै दीन्हा ॥

× × ×

किन्तु तत्कालीन तथा पीछे के ऐतिहासिक ग्रंथों में इस भूकंप का कोई वर्णन नहीं मिलता। डा० ईश्वरीप्रसाद ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ A Short History of Muslim Rule in India के पृष्ठ २३२ पर सन् ९११ हिजरी (१५०५ ई०) में आगरे में आने वाले एक भयंकर भूकम्प की चर्चा की है—

"Next year (911 A. H.=1505 A. D.) a violent earth quake occurred at Agra which shook the earth to its foundations and levelled many beautiful buildings and houses to the ground.

इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ९-१० वर्षीय बालक जायसी ने उसे प्रत्यक्ष देखा होगा और अपने इस अनुभव को जन्म के सुने साधारण भूकम्प से (सम्भव है कोई आया ही रहा हो) सम्बन्धित कर दिया होगा।

'पद्मावत' कवि का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है, उसमें कवि ने एक स्थान पर लिखा है—

"जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।"

इस अर्द्धाली के 'तहाँ आइ' शब्दों ने विद्वानों को अधिक भ्रम में डाल रखा है। इनके आधार पर डा० ग्रियर्सन तथा पण्डित सुधाकर का अनुमान है कि 'मलिक मुहम्मद' किसी और स्थान के रहने वाले थे; जायस में आकर उन्होंने काव्य का सृजन किया। परन्तु यह अनुमान अन्य अधिकारी विद्वानों द्वारा पुष्टि नहीं प्राप्त करता। इसके मान्य न होने के दो कारण हैं—एक तो यह कि जायस नगर वाले इसे स्वीकार नहीं कर सकते। उनके कथनानुसार 'मलिक मुहम्मद' जायस के ही रहने वाले थे। उनके घर का स्थान अभी तक वहाँ के कंचाने मुहल्ले में बताया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस मकान को लोग मलिक मुहम्मद का मकान बताते हैं वह अत्यन्त ही प्राचीन तथा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। उस घर की प्राचीनता को देख यह सहज ही अनुमान

हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है कि वह जायसी का ही रहा होगा। दूसरी बात यह है कि जायसी ने, 'पद्मावत' में अपने जिन चार घनिष्ट मित्रों का वर्णन किया है वे चारों जायसी के ही थे। 'यूसुफ मलिक', 'सालार कादिम' सलोने मियाँ और बड़े शेख—यही चारों व्यक्ति उनके घनिष्टतम मित्र थे। 'सलोने मियाँ' के सम्बन्ध में तो जायस में अभी तक यह जनश्रुति चली आती है कि वे बड़े बलवान थे। एक बार हाथी से लड़ गए थे। इन चारों दोस्तों में से दो के खानदान अभी तक विद्यमान हैं। 'जायसी' का वंश नहीं चला ; पर उनके भाई के खानदान में एक साहब मौजूद हैं जिनके पास वंश वृक्ष भी है। यद्यपि वह वंश वृक्ष पूर्णतः ठीक नहीं है तथापि उससे हमारे अनुमान को बल तो मिलता ही है।

'जायस नगर धरम अस्थानू' में **'धरम अस्थानू'** पर जोर देते हुए डा० विमलकुमार जैन का कहना है कि किसी भी व्यक्ति का धर्म स्थान वही हो सकता है जो उसके लिए सर्वाधिक प्रिय और पवित्र हो। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' से यह प्रमाणित है किसी भी मनुष्य के लिए उसकी जन्म भूमि से प्रिय तथा पवित्र स्थान और कोई नहीं हो सकता। डा० जैन 'धरम-अस्थानू' का अर्थ-विशेष लेते हैं जिसे सामान्य तीर्थ स्थानों की श्रेणी में नहीं खींचा जा सकता। अस्तु निश्चय ही जायस, मलिक मुहम्मद का स्थान रहा होगा अन्यथा उसे वे 'धरम-अस्थानू' न लिखते।

पता नहीं किस आधार पर डा० रामरतन भटनागर यह अनुमान करते हैं कि "वे (अर्थात् जायसी) जायस में पहले-पहल दस दिन के लिये पाहुने के रूप में आये थे। यहीं उन्हें वैराग्य हो गया और वे यहीं रहने लगे। इस नगर का आदि नाम उन्होंने उद्यान (उद्यान + नगर या उदयनगर) बताया है। इस नगर की कुछ धार्मिक महता भी उस समय रही होगी। इसी से जायसी ने उसे 'धर्म-स्थान' कहा है।" इस प्रसंग को और भी स्पष्ट करने के लिए मैं पाठकों का ध्यान जायसी के ग्रंथ 'आखिरी कलाम' की निम्न पंक्ति की ओर आकर्षित करना चाहूँगा :—

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नाँव आदि उदयानू ॥

इन पंक्तियों में **'मोर अस्थानू'** शब्द कवि की, स्थान के प्रति, दृढ़ता व्यक्त कर रहे हैं। वह एक प्रकार से स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि जायस ही मेरा स्थान है। 'नगर क नाँव आदि उदयानू' का अर्थ रायबरेली प्रान्त के गजेटियर पृष्ठ १८१ से स्पष्ट हो जाता है कि जायस का नाम **'उदयनगर'** था। मुसलमानों ने इसका नाम जायस रखा जो फारसी 'जैश' पड़ाव से निकला है। कवि ने अपनी पूर्व पंक्ति की घोषणा को दृढ़तर बनाने के लिये ही द्वितीय पंक्ति में नगर के प्राचीन नाम की ओर भी संकेत कर दिया है।

इन सभी तर्कों के अतिरिक्त कवि के जायस के होने का सबसे बड़ा और सीधा-सादा प्रमाण यह है कि उसके नाम 'मलिक मुहम्मद' के साथ 'जायसी' जुड़ा हुआ है। जायसी वही हो सकता है जो जायस का रहने वाला हो। बंगाल के रहने वाले व्यक्ति को हम पंजाबी या मद्रासी नहीं कह सकते; और यदि कहेंगे भी तो साहित्य तथा समाज का समर्थन नहीं प्राप्त हो सकता।

अन्त में एक वाक्य में मैं यह कहना चाहूँगा कि जायसी का जन्मकाल ९०० हि० तथा स्थान जायस है।

बाल्यकाल तथा रूप—जायसी के पूर्वज सम्भवतः अरब थे। सैयद कल्ब मुस्तफा के ग्रंथ 'मलिक मुहम्मद जायसी' पृष्ठ २० के अनुसार इनके पिता का नाम मुमरेज था। इनका ननिहाल मानिकपुर में था। शेख अहलदाद इनके नाना थे।

ऐसी किंवदन्ती है कि जायसी के माता पिता अत्यन्त ही गरीब थे, परन्तु अपने धर्म तथा पीरों और फकीरों में उनका गहरा विश्वास था। बाल्यावस्था में ही एक बार बालक जायसी पर शीतला का असाधारण प्रकोप हुआ। बचने की कोई आशा न रही। बालक की यह दशा देख माँ बड़ी विह्वल हुई। उसने प्रसिद्ध सूफी फकीर शाहमदार की मनौती की। माता की प्रार्थना सफल हुई। बच्चा बच गया; किन्तु उसकी एक आँख जाती रही।

"एक नयन कवि मुहम्मद गुनी।" (पद्मावत) विधाता को इतने से ही संतोष नहीं हुआ, एक कान की श्रवण शक्ति भी नष्ट हो गई :—

'मुहम्मद बाईं दिशि तजा इक स्रवन इक आँखि।' सम्भवतः ये दोनों बाम अंग के ही थे।

सैय्यद मुस्ताफा के अनुसार वे लूले और कुबड़े भी थे किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता और न उनके चित्रों से ही ऐसा प्रकट होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि जायसी का व्यक्तित्व शारीरिक रूप में उतना महान् व सुन्दर नहीं था जितना कि चारित्रिक, आभ्यांतरिक और कवि रूप में। जो भी हो जायसी की कुरूपता जगत-प्रसिद्ध है। उनकी कुरूपता के सम्बन्ध में ही एक किंवदन्ती और है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गये शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हँस पड़ा। इस पर जायसी ने अत्यन्त ही शान्त भाव से बादशाह से पूछा **'मोहि का हँसेसि कि कोहरहिं'**। अर्थात् तू मुझ पर हँस रहा है या उस कुम्हार (गढ़ने वाले ईश्वर) पर ? कहा जाता है कि विद्वान जायसी के इन गम्भीर शब्दों को सुनकर बादशाह बहुत लज्जित हुआ। और उसने उनसे क्षमा माँगी।

बालक जायसी के पिता का स्वर्गवास उसकी अल्पाति-अल्प आयु ही में हो गया था। कुछ कालोपराँत स्नेहमयी माता का भी निधन हो गया। इस प्रकार बालक जायसी अपनी बाल्यावस्था में हो अनाथ हो गया। अब पालन पोषण तथा शिक्षा का अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

आध्यात्म की ओर—अनाथ बालक जायसी कुछ दिनों तक तो अपने नाना शेख अलहदाद के पास मानिकपुर रहा किन्तु शीघ्र ही निर्मम विधाता ने उसका वह सहारा भी छीन लिया। बालक एकदम निराश्रय हो गया। ऐसी अवस्था में जीवन और जगत के प्रति उसके मन में गहरी विरक्ति भर आई। इसी बीच उसका सम्पर्क कुछ साधुओं और फकीरों से हुआ। उन्होंने अपने सदुपदेशों और प्रेमपूर्ण व्यवहारों द्वारा कुशाग्रबुद्धि बालक जायसी के नैराश्य-गगन का अंधकार दूर करना आरम्भ किया। जायसी का आकर्षण उधर बढ़ता गया। बाल्यकाल की दीन-हीनावस्था से उत्पन्न विरक्ति और इन साधु-फकीरों के सम्पर्क ने जायसी के किशोर मन को आध्यात्मिक दिशा प्रदान की। धीरे-धीरे यह

आध्यात्मिक पिपासा बढ़ती गई। अन्त में एक दिन जिज्ञासु जायसी को उसकी इस प्यास ने गुरु के चरणों में ला उपस्थित किया।

जायसी की आध्यात्मिक रुझान के सम्बन्ध में एक कहानी और प्रचलित है कि जायसी की बाल्यकालीन परिस्थितियों ने उन्हें ईश्वर भक्त बना दिया था। अपनी अनाथावस्था में वे कुछ दिनों तक साधुओं और फकीरों के साथ इधर-उधर भटकते और घूमते रहे। जब वयस्क हुए तो वे अपनी जन्मभूमि जायस को पुनः लौट आये और वहाँ एक गृहस्थ का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, किन्तु इससे उनकी ईश्वर भक्ति में किसी प्रकार की कमी न आई अपितु उसका रूप उज्ज्वलतर ही होता गया। तात्पर्य यह कि उनका जीवन एक ईश्वर भक्त गृहस्थ का जीवन बना। जायसी का यह नियम था कि जब वे खेती में होते तो अपना भोजन वहीं मँगा लिया करते थे, पर उनके साथ विशेषता यह थी कि वे अपना भोजन कभी अकेले नहीं करते थे। जो भी आस-पास दिखाई पड़ जाता उसे बुला लेते और फिर उसके साथ-साथ भोजन करते। इसी क्रम में शायद किसी दिन एक कोढ़ी के साथ उन्होंने भोजन किया था। ऐसा बताया जाता है कि उसी दिन से उनकी भक्ति दृढ़तर हो गई और उस परम सत्ता के रंग में ऐसे डूबे कि फिर उससे उबर न सके। 'अखरावट' के निम्न दोहे से सम्भवतः इसी घटना की ओर संकेत है :—

बुंदहि समुद समान, यह अचरज कासो कहौं।
जो हेरा सो हेरान, मुहम्मद आपुहि आपु मँह॥

साधु फकीरों के साथ भ्रमण करने के उपरान्त पुनः जायस में लौट गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के घटना-अनुमान को हमें कवि की इन पंक्तियों से भी बल मिलता है :—

जायस नगर मोर अस्थानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥

'तहाँ आई' में सम्भवतः उक्त भ्रमण से ही वापस लौट आने की ओर संकेत है। ऐसा अनुमान होता है कि शायद इसी घटना के आधार पर पूर्ण सूचना के

अभाव में कुछ विद्वानों ने जायसी का जायस का न होकर अन्य स्थान का मान लिया। यहाँ हमें इस प्रसंग पर अधिक जोर नहीं देना है, इसकी चर्चा तो पिछले पृष्ठों में हो ही चुकी है। इस उल्लेख से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि भगवद् भक्त जायसी का जीवन क्रम ही कुछ ऐसा हुआ कि उनकी आध्यात्मिक वृत्ति दृढ़तर होती गई।

सन्तान—मृत्यु के समय जायसी को सन्तानहीन बताया जाता है, किन्तु किसी भी समय उनके सन्तति थी या नहीं, इस सम्बन्ध में सभी विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि उनके सात पुत्र थे। जायसी की मोदप्रियता और उनके मौजी स्वभाव की प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी। एक दिन कवि जायसी ने 'पोस्ती नामा' शीर्षक पद्य की रचना की और उसे सुनाने के लिए गुरु जी के पास पहुँचे। इनके गुरुदेव वैद्यों के आदेश एवं अनुरोध से पोस्त का पानी प्रयोग करते थे जिससे क्षुधा और निद्राधिक का निवारण हो सके। जायसी की मार्मिक व्यंगोक्ति को सुनकर सहसा वे बोल उठे **"अरे निपूते, तुझे ज्ञात नहीं कि तेरा गुरु निपोस्ती है।"** कहा जाता है कि इधर गुरु के मुख से यह वाक्य निकला और उधर दूसरी ओर एक व्यक्ति ने आकर जायसी को यह सूचना दी कि उनके सातों पुत्र एक साथ खाना खा रहे थे कि सहसा उनके ऊपर छत गिर गई और वे सब उसके नीचे दब कर मर गए। गुरु का साधारण क्रोध जायसी के लिए अभिशाप बन गया। इस दुर्घटना से उनके हृदय को कितना बड़ा दुःख पहुँचा होगा यह कोई भुक्तभोगी ही बता सकता है। हाँ, इतना अवश्य पता चलता है कि इससे उनके गुरु का हृदय भी विचलित हो उठा और उनके दृगों में शोकाश्रु छलक आये। इसके उपरान्त जायसी पूर्ण वैरागी हो गये और फकीर का जीवन अपना लिया। वास्तविकता क्या थी, इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण न उपलब्ध होने के कारण कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

जायसी और अमेठी—जायसी का अमेठी राज्य से गहरा सम्बन्ध बताया जाता है। उनके अमेठी पहुँचने के सम्बन्ध में दो कथायें प्रचलित हैं। पहली कथा इस प्रकार है—

मुरीदी करते-करते जब बहुत दिन व्यतीत हो गए तो जायसी और उनके एक साथी हजरत मुहम्मद निजामुद्दीन बन्दगी की यह उत्कृष्ट अभिलाषा हुई कि हम लोग भी अपनी गद्दी स्थापित कर अब शिष्य बनावें। इस अभिलाषा को दोनों गुरु भाइयों ने अपने गुरु से व्यक्त किया। उनके गुरु शाह बोदले ने उनकी इस प्रार्थना पर विचार कर उन्हें यह आदेश दिया कि अमेठी चले जावो। बन्दगी मियाँ ने लखनऊ वाली अमेठी में गद्दी स्थापित कर अपूर्व ख्याति प्राप्त की और जायसी खास अमेठी चले गये। अमेठी के समीप एक जंगल में उन्होंने अपना स्थान निश्चित किया। इस घटना का उल्लेख सैयद कल्ब मुस्तफा ने अपनी पुस्तक मलिक मुहम्मद जायसी के पृष्ठ ३८ पर किया है।

दूसरी कथा—अपनी प्रतिभा और चिन्तन के बल पर जायसी एक बड़े सिद्ध पुरुष विख्यात हुए। अनेक व्यक्ति उनके शिष्य बने। वे सब जायसी के अमर ग्रंथ 'पद्मावत्' से पद्य गा-गा कर भिक्षा माँगा करते थे। एक दिन ऐसा ही एक चेला अमेठी में नागमती का बारहमासा गाता फिर रहा था। पद्मावत के निम्न दोहे को उसके मधुर कण्ठ से जब अमेठी-नरेश ने सुना तो वे उस पर मुग्ध हो गए :—

कम्वल जो विगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
सखि बेलि पुनि पलुहैं, जो पिउ सींचै आइ॥

राजा ने पूछा, "शाह जी! यह किसका दोहा है?" शिष्य ने अपने विद्वान् गुरु जायसी का नाम बता दिया। फिर राजा जायसी के पास गए और आदरपूर्वक जायसी को अमेठी ले आये। तदुपरि जायसी मृत्यु पर्यन्त वहीं रहे। इस कथा का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने भी किया है।

जनश्रुति है कि अमेठी-नरेश के कोई सन्तान न थी। जायसी की दुआ से उनको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उस समय से जायसी का सम्मान और भी बढ़ गया।

जायसी की मृत्यु—उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में मुस्तफा साहब ने एक घटना का उल्लेख किया है। अमेठी नरेश जब जायसी की सेवा में उपस्थित होते थे

तो उनका एक बहेलिया (तुफंगची) भी उनके साथ जाता था। जायसी उसका विशेष सत्कार करते थे। जब लोगों ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि 'यह मेरा कातिल है।' इस पर सब आश्चर्य चकित हो गए। बहेलिये ने प्रार्थना की कि इस पाप कर्म को करने से पूर्व मुझे कत्ल करा दिया जाय। इस प्रकार मैं एक गुरुतम पाप से बच जाऊँगा। राजा ने भी इसे उचित समझा, परन्तु जायसी ने अपने कातिल को आग्रह पूर्वक कत्ल होने से बचा दिया। राजा ने आज्ञा घोषित कर दी कि उस समय से उस बहेलिए को कोई बन्दूक, तलवार आदि न दी जावे।

परन्तु विधि का विधान कदापि टाले नहीं टलता है। एक अँधेरी रात को जब बहेलिया राजभवन से अपने गाँव जाने लगा तो दारोगा से कहा 'समय तंग हो गया है और मेरी राह जंगल में होकर है। इसलिए रात भर के लिये एक बन्दूक दे दो। प्रातःकाल ही लौटा दूंगा।' दारोगा ने इसमें कोई आपत्ति न की और एक बन्दूक उस बहेलिये को दे दी। जब बहेलिया जंगल में होकर जाने लगा तो उसे शेर के गुर्राने का सा शब्द सुनाई दिया। शेर को पास जान कर बहेलिये ने शब्द की दिशा में गोली छोड़ दी शब्द बन्द हो गया। उसने सोचा शायद शेर मर गया और फिर वह बिना रुके आगे चला गया। उसी समय राजा ने स्वप्न देखा कि कोई कहँ रहा है "आप सो रहे हैं और आपके बहेलिये ने मलिक साहब को मार डाला।" राजा यह सुनकर चौंक पड़ा और नंगे पैरों जायसी के स्थान पर पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह क्या देखता है कि जायसी का निर्जीव शरीर धरती पर पड़ा है, मस्तक में गोली का निशान है। इस दुर्घटना से राजभवन तथा नगर में शोक उमड़ पड़ा। जायसी की लाश गढ़ के समीप ही दफना दी गई। इस सम्बन्ध में डा० जयदेव ने अपने शोध ग्रंथ 'सूफी महा कवि जायसी' के पृष्ठ ३६ पर यह भी उल्लेख किया है कि "सूफियों के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी बोली में उसी परम प्रियतम का स्मरण करता है। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर वे किसी भी पक्षी या अन्य प्राणी की बोली का अनुकरण करते हैं और वही उनके लिये प्रियतम का प्यारा नाम बन जाता

है । इस प्रकार रात्रि की निस्तब्धता में उनका जप (स्मरण, ज़िक्र) का अभ्यास चलता रहता है । कुछ सूफी 'मोर-मोर' अथवा 'पिउ-पिउ' का जप करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी 'जिक्र असदी' (शेर की ध्वनि के अनुकरण) का अभ्यास करते थे । इसीलिये बहेलिये को शेर की आवाज सुनाई दी और उसने गोली छोड़ दी ।"

सैय्यद कल्ब मुस्तफा ने जायसी की मृत्यु १०४९ हिजरी लिखा है । परन्तु इस तिथि को मान लेने में कुछ आपत्तियाँ हैं । पहली बात तो यह कि १०४९ हि० मृत्यु सं० होने से जायसी की आयु १४९ वर्ष की ठहरती है जो असम्भव न होते हुए असाधारण घटना तो अवश्य ही है । ऐसा लगता है उनके किसी शिष्य या प्रशंसक ने दीर्घायु होने की यह बात लिख दी होगी जिसे पढ़ गुलाम सरवर लाहौरी तथा शेख अब्दुल कादिर को विश्वास हो गया होगा और उसके आधार पर मुस्तफा साहब भी जायसी का मृत्यु-काल १०४९ हिजरी मान बैठे होंगे ।

दूसरी बात यह है कि जायसी के १०४९ हिजरी तक जीवित रहने का अर्थ है कि वे शाहजहाँ के प्रारम्भिक शासन में भी वर्तमान थे । परन्तु शेर-शाह के पुत्र सलीमशाह सूर के समय के प्रसिद्ध कवि और दार्शनिक व्यक्तियों में भी उनका नाम नहीं है, यद्यपि उन्होंने शेरशाह के राज्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सलीमशाह सूर के सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व ही जायसी इस संसार से विदा हो चुके थे ।

तीसरी बात यह कि यदि वे १०४९ हिजरी तक वर्तमान थे और ९४७ हिजरी में ही पद्मावत की रचना कर चुके थे तो शेष १०० वर्ष के लम्बे अवकाश में 'अखरावट' के अतिरिक्त उन्होंने अन्य किसी ग्रंथ का प्रणयन क्यों नहीं किया । उन जैसे क्रियाशील-सूफी के लिये यह असम्भव प्रतीत होता है ।

इस तरह हम देखते हैं कि १०४९ हिजरी उनका मृत्युकाल नहीं हो सकता ।

दूसरा आधार हमारे पास नसीरुद्दीन हुसेन जायसी का है । उन्होंने मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्यु-काल ४, रजब, ९४९ हिजरी कहा है । इस काल की

सत्यता के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। आचार्य शुक्ल कुछ अंश में इसी ओर झुके जान पड़ते हैं।

प्रबल ऐतिहासिक तथ्यों तथा अन्य पुष्ट प्रमाणों के अभाव में विवशतावश ९४९ हिजरी को (सन् १५४२ ई० के लगभग) ही जायसी का मृत्यु-काल मानना अधिक समीचीन जान पड़ता है। मलिक साहब का ९४८ हिजरी में अमेठी राज्य की ओर से आमान्त्रित होना प्रसिद्ध है। वे अमेठी आये और साल भर वहाँ रहने के उपरांत ९४९ हिजरी में किसी दूर्घटना के शिकार हो गए।

गुरु-परम्परा—मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में से थे। इस परम्परा की दो शाखायें थीं। अपने 'पद्मावत' और 'अखरावट' दोनों ग्रंथों में जायसी ने गुरु परम्परा का उल्लेख बड़े विस्तार के साथ किया है। इस आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन शेख मोहिदी को इनका दीक्षा गुरु मानते हैं। पद्मावत में दो पीरों का उल्लेख किया है :—

सैयद अशरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा॥

इसी प्रकार अखरावट में भी दोनों का उल्लेख है :—

कही सरीअत चिस्ती पीरू। उघरी असरफ औ जँहगीरू।
या पाँयऊ गुरु मोहिदी दीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा॥

'आखिरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ जहाँगीर का ही उल्लेख है, ।पीर शब्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद अशरफ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का बन्दा कहा है। इससे आचार्य शुक्ल यह अनुमान लगाते हैं कि उनके दीक्षा गुरु तो थे—सैयद अशरफ—परन्तु पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की भी सेवा करके उनसे ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त कर ली थी। डा० जयदेव ने जायसी की गुरु परम्परा का सिलसिला निम्न प्रकार से बताया है—

नोट—(पुष्पांकित नाम शुक्ल जी ने नहीं दिये हैं)

डाक्टर साहब का कहना है कि "जायसी ने अपनी रचनाओं को मसनवी साँचे में ढाला है। अतः उनमें गुरुस्तुति भी है। 'आखिरी कलाम' में एक गुरु की वन्दना है, शेष दो काव्यों (पद्मावत और अखरावट) में दो गुरु परम्पराओं का वर्णन है। ....एक पुस्तक में केवल एक परम्परा का वर्णन करना तथा अन्य दो पुस्तकों में दो गुरु परम्पराओं का वर्णन करना प्रमाणित करता है कि आरम्भ में एक गुरु से दीक्षा प्राप्त की, तत्पश्चात् दूसरे गुरु से भी लाभ उठाया।

मलिक साहब जायस के रहने वाले थे। वहाँ पर सैयद अशफर जहाँगीर की ख्याति थी। उनकी दरगाह जायस में अब तक विद्यमान है। इधर-उधर भटकते हुए सूफी सन्तों के सत्संग से लाभ उठाते हुए तथा अपनी शक्तियों के विकसित होने पर जब मलिक साहब जायस लौटे, तो प्रायः शेख मुबारक की सेवा में जिज्ञासु की भांति उपस्थित होते रहे। क्षेत्र तैयार था, सूफी मत की ओर रुझान भी थी। प्रियतम के दीदार की तीव्र उत्कण्ठा जागरित हो चुकी थी। शेख साहब ने जिज्ञासु की परीक्षा की। उसको अधिकारी समझकर दीक्षा दे दी। जायसी कृत-कृत्य हो गये। जायसी ने अशरफी घराने के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रकट की है:—

जहाँगीर वे चिस्ती निहकलंक जस चाँद।
वै मखदूम जगत के, हौं ओहि घर कै बांद॥

—पद्मावत स्तुतिखण्ड पृ० ७।

अतः इस विवेचन से यह तो निश्चय ही है कि जायसी का गुरुद्वारा जायस था और उनके दीक्षा गुरु 'मखदूम' साहब की गद्दी के उत्तराधिकारी शेख मुबारक थे (शुक्ल जी ने सैयद अशरफ को उनका दीक्षा गुरू माना है परन्तु उनकी मृत्यु जायसी के जन्म से बहुत पूर्व सन् ८०८ हिजरी में हो चुकी थी। अतः वे दीक्षा-गुरु नहीं हो सकते, वरन् उनके उत्तराधिकारी शाह मुबारक बोदले जो मुहीउद्दीन के समकालीन थे, जायसी के गुरू थे) जिन्होंने जायसी को अपना खलीफा नियत करके सूफीमत के प्रचार की आज्ञा प्रदान की थी।

आगे चलकर डा० साहब पुनः लिखते हैं कि "जब प्रौढ़ावस्था में सूफी-मत में दीक्षित जायसी सेख मुहीउद्दीन से मिले तब मलिक साहब की वृत्ति, उत्कण्ठा एवं आचरण पर मुग्ध होकर उन्होंने ऐसे सुयोग्य अधिकारी को अपनी साधना के कुछ रहस्य बतला दिए। जायसी की कृतज्ञता ने इस अनुकम्पा का ऋण स्वीकार किया और शेख मुहीउद्दीन को भी गुरू माना। परन्तु जायसी ने गुरु मेंहदी की परम्परा को सदैव द्वितीय स्थान ही दिया है तथा अशरफी परम्परा के प्रति जो कृतज्ञता एवं भक्ति प्रकट की वह शेख मुहीउद्दीन के प्रति नहीं।"

सारांश यह है कि जायसी के दीक्षा गुरु अशरफी परम्परा के शाह मुबारक बोदले (शेख मुबारक) थे और उन्होंने अधिक समय इन्हीं गुरु की सेवा में व्यतीत किया तथा इन्हीं की अनुकंपा से जायसी को अपनी साधना में साफल्य प्राप्त हुआ। साथ ही शेख मुहीउद्दीन से भी जायसी को कुछ गुह्य बातों का उपदेश मिला था। अतः वे विनय शील जायसी की दृष्टि में गुरु के समकक्ष सम्मानीय हुए। इस प्रकार उनके दो गुरू प्रसिद्ध हुए।

ज्ञानार्जन—यह तो मैं लिख ही चुका हूँ कि बालक जायसी आरम्भ में ही अनाथ हो गया। ऐसी अवस्था में वह इधर-उधर मारा-मारा फिरा—साधु सन्तों तथा पीरों और फकीरों की संगति की। फिर यह कहाँ सम्भव था कि किसी पाठशाला, में विधिवत अध्ययन करता। "उसकी पाठशाला, प्रकृति का व्यापक क्षेत्र था, उसके शिक्षक सांसारिक घटनाएँ और व्यापार थे, सहपाठी ज्ञानेन्द्रियाँ और सतसंग थे तथा पुस्तक निर्मल हृदय था जिसमें अनुभूत व्यापारों का पारायण होता रहा था। इस प्रकार मननशील जायसी युवावस्था तक शिक्षा प्राप्त कर संसार के समक्ष आया।"

विविध विषयों तथा धर्मादि की जानकारी—जायसी मुसलमान माता पिता के घर पैदा हुए थे इसलिए कम से कम 'इस्लाम धर्म' की मुख्य-मुख्य बातों का जानना बिल्कुल ही स्वाभाविक था। परन्तु वास्तविकता यह है कि उनका इस्लाम सम्बन्धी ज्ञान भी गम्भीर नहीं कहा जा सकता। स्थान-स्थान

पर उन्होंने अपने ग्रंथ में हिन्दू धर्म की रीतियों तथा कथाओं आदि का भी प्रयोग किया है जिससे पता चलता है कि उन्हें हिन्दू धर्म की भी कुछ जानकारी थी, यद्यपि इस दिशा में उन्होंने कहीं-कहीं भयंकर भूलें भी की हैं। जायसी प्रतिभा सम्पन्न तथा कुशाग्र बुद्धि थे, सूफी फकीरों के साथ साथ उन्होंने हिन्दू साधु-सन्तों की भी संगति की थी, और सबसे बड़ी बात यह है कि वह युग ही धार्मिक हलचल का था। ऐसी दशा में उन्हें हिन्दू धर्म की भी कुछ जानकारी हो जाना कोई असम्भव बात नहीं थी।

हठयोग, रसायन तथा वेदान्त आदि अनेक बातों का सन्निवेश जायसी की रचना में मिलता है। हठयोग में मानी हुई इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की ही चर्चा उन्होंने नहीं की है बल्कि सुषुम्ना नाड़ी में नाभिचक्र (कुन्डलिनी) हृत्कमल और दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) का भी बार-बार उल्लेख किया है। इसी प्रकार पद्मावत में भी रसायनियों की भी कई बातें आई हैं। गोरख पंथियों की तो जायसी ने अनेक बातें रखी हैं। सिंहलदीप में पद्मिनी स्त्रियों का होना और योगियों का सिद्ध होने के लिये वहाँ जाना उन्हीं की कथाओं के अनुसार है। इन सब बातों से पता चलता है कि जायसी साधारण मुसलमान फकीरों की भाँति नहीं थे। वे सच्चे जिज्ञासु थे और हर एक मत के साधु-सन्तों तथा महात्माओं से वे मिलते जुलते रहते थे और उनकी बातों से सारतत्व ग्रहण करते रहते थे।

जायसी एक भावुक, सहृदय, संवेदनशील और भगवद्भक्त व्यक्ति थे। वे अपने समय के पहुँचे हुए एक सिद्ध और फकीर माने जाते थे। सभी धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखना उनकी विशेषता थी। देखिए ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों को वे कितनी उदारता पूर्वक स्वीकार करते हैं—

विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन रोवाँ जेते॥

लेकिन यह सब होने पर भी मोहम्मद साहब में उनकी गहरी आस्था है—

तिन मँह पंथ कहौं अलगाई। जेहि दूनो जग छाज बड़ाई॥
से बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलाश बसेरा॥

उन्हें अहंकार छू नहीं गया था। विनम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। कबीरदास की भाँति एक नया पंथ निकालने की उन्हें कभी नहीं सूझी, और न उनकी तरह 'ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया' कहने का साहस ही वे कर सके। क्योंकि वे यह जानते थे कि सब कुछ हो जाने पर भी मैं एक मनुष्य हूँ। इसलिये मुझमें अपूर्णता भी बनी रहेगी। कबीर की भाँति उन्होंने किसी की निन्दा नहीं की और न कटु हुए। उनमें प्रत्येक प्रकार का महत्व स्वीकार करने की अपूर्व क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सब के उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला उन्हें हृदय प्राप्त था। समाज के प्रति अपने विशेष कर्तव्यों के पालन के साथ साथ वे सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुयाई थे। वे बहुविज्ञ होते हुए भी अपने ज्ञान को पंडितों द्वारा दिया गया प्रसाद मानते थे।

हौं पंडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥

कबीर के विरोधी प्रकृति के होते हुए भी उनको एक महान साधक के रूप में उन्होंने स्वीकार किया है—

ना नारद तब रोई पुकारा। एक जोलाहे सौ मैं हारा॥

पेंम तंतु नित ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई॥

जायसी ने अपनी कृतियों में ज्योतिष, ऋतु, त्योहार आदि का भी अच्छा परिचय दिया है। इतिहास, भूगोल तथा राजनीति आदि के सफल और अधिकारपूर्ण प्रयोग उन्होंने किए हैं। व्यवहार ज्ञान तो उनका बहुत ही उच्चकोटि का था। हिन्दू परिवार की प्रत्येक गति विधि का सम्यक अध्ययन उन्होंने किया था, ऐसा उनके पद्मावत से प्रकट होता है। एक का दूसरे के प्रति व्यवहार कब कैसा होता है, यह वे भली भाँति जानते थे। बानगी के रूप में दो-एक स्थल लीजिए—

(१) हिन्दू परिवार में सास-ननद के मध्य नवागता वधू की स्थिति।

सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेंही। दारुन ससुर न विसरै देंही॥

× × ×

सासु ननद के भौंह सिकोरे। रहब सँकोचि दुऔ कर जोरे॥

(२) सपत्नियों में प्रेम का न होना जगत प्रसिद्ध है। वे एक ही आसन पर बैठकर परस्पर मीठी-मीठी बातें करती हैं किन्तु उनके हृदय विरोधपूर्ण रहते हैं। इस सत्य को जायसी ने कितनी सरल भाषा में प्रकट किया है—

दुऔ सवति मिलि पाट बईठी। हिय विरोध, मुख बातें मीठी॥

इसी प्रकार अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अंत में हम निष्कर्ष रूप में डाक्टर जयदेव के शब्दों में कहेंगे कि **"जायसी अध्ययनशील व्यक्ति तो न थे किन्तु बहुश्रुत थे। उनकी धारणा और मर्मवेक्षणा-शक्ति विलक्षण थी। इनकी सहायता से वे अपने अनुभव को, जो उन्होंने सत्संग में, पर्यटन में, व्यवहारादि में प्राप्त किया था, अपने काव्यों में इस युक्ति से उपयोगी बनाकर सज्जित किया है कि उनके अक्षय ज्ञानागार को देख कर चकित होना पड़ता है। निस्सन्देह उनका साहित्यिक तथा धार्मिक ज्ञान साधारण, इतिहास तथा भूगोल का विशेष और व्यवहार पटुता तथा अनुभव शक्ति उच्चकोटि की थी।"**

जायसी का कवि और सामान्य दोनों रूप हमारे लिए आदर्श हैं। उनका व्यक्तित्व महान तथा अत्यन्त ही गम्भीर और शांत था। वे बड़े ही विनम्र और कृपालु स्वभाव के थे। ईश्वर ने उन्हें शारीरिक-सौंदर्य नहीं प्रदान किया था किन्तु उनका हृदय सौंदर्य के चरम उत्कर्ष पर था। उतना सुन्दर, कोमल तथा भावुक और प्रेम की पीर से भरा हृदय शायद ही किसी को मिला हो। 'पद्मावत' उनके इस हृदय का सच्चा परिचय देने वाला अमर ग्रंथ है। उसमें उन्होंने लोक पक्ष और भगवदपक्ष दोनों की गूढ़ता तथा गम्भीरता का निरूपण किया है। उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'अखरावट' है जिसमें वर्णमाला के एक-एक अक्षर पर सिद्धांत सम्बन्धी कुछ बातों का विवेचन है। 'आखिरी कलाम' में मृत्यु के बाद जीव की दशा तथा कयामत के अंतिम न्याय का वर्णन है।

'पद्मावत' ऐसे उच्चकोटि के ग्रंथ के महाप्रणेता के रूप में जायसी अमर रहेंगे। उनका भावुक सुकोमल और प्रेम की पीर से भरा हृदय प्रेम पथ के पथिकों का सदैव मार्ग दर्शन करेगा और उनके लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन

में नई ज्योति भरता रहेगा। हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के महान समन्वयकारी, उच्चातिउच्च कोटि के कवि और आदर्श मानव के रूप में जायसी भारतीय साहित्य तथा समाज में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

प्रश्न ३—जायसी के ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके जीवन और साहित्य दोनों को हिन्दी जगत ने आदर्श एवं महान के रूप में ग्रहण किया है; परन्तु दुःख इस बात का है कि तत्कालीन अन्य कवियों तथा संतों की भाँति इनके जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में भी भ्रांतियाँ कम नहीं हैं। जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर जायसी का जीवन वृत्त, रचनाकाल तथा कृतियों आदि का मूल्यांकन एवं परीक्षण किया जाता है। यहाँ हम उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

जायसी कृत रचनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। सभी अनिश्चित संख्या में बात करते हैं। सामान्यतया उनके नाम से निम्न ग्रंथ बताये जाते हैं—

१. पद्मावत	११. खुर्वानामा
२. अखरावट	१२. मोराई नामा
३. आखिरी कलाम	१३. मुकहरानामा
४. सखरावत	१४. मुहरानामा
५. चंपावत	१५. कहारनामा
६. इतरावत	१६. मेखरावट नामा
७. मटकावत	१७. धनावते
८. चित्रावत	१८. सोरठ
९. नैनावत	१९. परमार्थ जपजी
१०. पोस्ती नामा	२०. स्फुट छंद

२१. मुखरानामा

इन ग्रंथों में पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम से हिन्दी के सभी पाठक परिचित हैं, शेष के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भविष्य ही इन पर प्रकाश डालेगा। आइये अब क्रमशः एक-एक का मूल्यांकन एवं परीक्षण किया जाय।

पद्मावत

इस ग्रंथ के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विवाद जो उठता है, वह है इसके रचना-काल का। विद्वानों के दो दल हो गये हैं। एक दल इसका रचना-काल ९२७ हिजरी मानता है और दूसरा ९४७ हिजरी। ऐसा लिपि की त्रुटि के कारण हुआ है। जायसी के समय फारसी राजभाषा थी। इस नाते फारसी लिपि का प्रयोग मुसलमानों के अतिरिक्त अनेक हिन्दू परिवार भी करते थे। सूफियों के सभी ग्रंथ इसी लिपि में लिखे गये। जायसी के काव्यों की लिपि भी फारसी ही थी। इस लिपि में स्वर व्यंजनों की न्यूनता होती है जिससे सब शब्द ठीक-ठीक व्यक्त नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त इस लिपि के लेखक प्रायः घसीट के अभ्यस्त होते हैं जिसके परिणाम स्वरूप नुक्ता (बिन्दी) तथा जबर जेर-पेश (मूलस्वर अ, ई, उ के सूचक चिन्ह) छूट जाया करता है। यही कारण है कि कभी-कभी ये लेखक अपनी लिखी वस्तु को स्वयं नहीं पढ़ पाते। लेखकों की इस घसीट मनोवृत्ति का शिकार पद्मावत को भी होना पड़ा; और उसकी रचना काल सम्बन्धी पंक्ति के दो पाट हो गये—

सन नौ सै सत्ताइस अहा।
तथा
सन नौ सै सैंतालिस अहा॥

मूल पद्मावत की प्रतिलिपि तैयार करने में लेखकों की इस साधारण असावधानी से हिन्दी जगत को इतनी माथा-पच्ची करनी पड़ रही है।

९४७ हिजरी मानने वालों का यह कहना है कि कवि ने अपनी साहित्यिक-परम्परानुसार तत्कालीन राजा शेरशाह की वंदना की है। कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग चार (१९३७) के पृष्ठ ५१ के अनुसार शेरशाह २६ जून १५३९

को गद्दी पर बैठा था। कुछ विद्वानों का विचार है कि उसका सिक्का इससे पूर्व ही चल गया था। ९४७ हिजरी ८ मई १५४५ से प्रारम्भ होता है। इससे पता चलता है कि ग्रंथ का रचना काल ९४७ हिजरी से पूर्व का नहीं है।

इस तर्क के प्रत्युत्तर में ९२७ हिजरी मानने वालों का यह कथन है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् १५२० ई० के आस-पास अर्थात् ९२७ हिजरी में ही बनाये, परन्तु ग्रंथ को शेरशाह के समय में पूरा किया। इसलिये कवि ने भूतकालिक क्रिया 'कहा' और 'अहा' का प्रयोग किया है।

सन नव सै सत्ताइस अहा।
कथा अरंभ बैन कवि कहा॥

डा० कमलकुल श्रेष्ठ, इस मत, के अर्थात् ९२७ हि० मानने वालो के समर्थन में अपना एक तर्क और जोड़ते हैं, वह यह कि—"मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना अन्तिम ग्रंथ 'आखिरी कलाम' १५२९ ई० अर्थात् ९३६ हि० में लिखा था। वह अन्तसक्षिय से प्रमाणित एवं निर्विवाद है—

सन नव सै छत्तीस जब भये।
तब एहि कथा के आखर कहे॥

जब कि कवि का 'आखिरी कलाम' अर्थात् कवि की अन्तिम रचना ९३६ हिजरी की है तो पद्मावत निश्चयरूप से उससे पूर्व की होगी।

डा० विमल कुमार जैन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा श्री यज्ञदत्त शर्मा आदि ९२७ हिजरी के पक्ष में हैं; किन्तु डा० रामकुमार वर्मा व श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित तथा डा० जयदेव आदि ९४७ हिजरी का समर्थन करते हैं। डाक्टर जयदेव अपनी बात के प्रमाण में जो तर्क उपस्थित करते हैं उनका सारांश इस प्रकार है—

१—**'आखिरी कलाम'** कवि की अन्तिम रचना नहीं है। इस लिये उसके आधार पर 'पद्मावत' को उससे पहले अर्थात् ९३६ हिजरी से पूर्व का मान लेना मुझे स्वीकार नहीं, 'आखिरी कलाम' कवि की पहली रचना है।

२—'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में सिंहल द्वीप का वर्णन है जिसमें कवि सामयिक परिस्थितियों का निर्देश कर सकता है, जैसा कि निम्न पंक्तियों से ध्वनित होता है—

फरै आम अति सघन सुहाये। औ जस फरै अधिक सिर नाये॥
× × ×
पैग पैग पर कुवाँ बावरी। साजी बैठक और पाँवरी॥
× × ×
राव रंक जावत सब जाती। सब कै चाह लेहि दिन राती॥
पंथी परदेसी जत आवहिं। रख कै चाह दूत पहुँचावहिं॥
× × ×

यह वर्णन शेरशाह के काल पर लागू होता है। डाक्टर चन्द्रवली पाण्डेय ने भी लिखा है "उन्होंने पद्मावत में जिन रजवाड़ों का वर्णन किया है उनकी संगति प्रायः शेरशाह के समय में ही ठीक-ठीक बैठती है।" डा० कमलकुल श्रेष्ठ का, इस सम्बन्ध का, यह कथन उन्हें मांन्य नहीं कि "कथा के आरम्भिक वचन कवि ने ९२७ हिजरी में कहे थे। बाद में सारा ग्रंथ लिख डाला गया। शेरशाह के समय में कवि ने उसकी भूमिका (स्तुति खण्ड) लिखी। उसमें भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करते हुए प्रारम्भिक काल दिया और सामयिक राजा के रूप में शेरशाह की वंदना की।" इस पर आक्षेप करते हुए वे कहते हैं—"कहने की आवश्यकता नहीं कि डाक्टर महोदय स्तुति खण्ड को ग्रंथ की समाप्ति के उपरान्त की रचना मानते हैं और कथा की प्रथम पंक्ति "सिंहल दीप कथा अब गावौं" के "अब" शब्द से दृष्टि चुरा लेते हैं।"

३—'अखरावट' की रचना ९२५ हिजरी में नहीं हुई यदि इसकी रचना ९२५ हिजरी में मान ली जाय तो निम्न पंक्तियाँ व्यर्थ हो जाती हैं—

"भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरिस ऊपर कवि वदी।"

दूसरी बात यह भी कि 'आखिरी कलाम' ९३६ हिजरी में रच लेने के उपरान्त जीवन के शेष १२-१३ वर्षों में कवि का मौन रहना असम्भव नहीं तो असंगत अवश्य है। अस्तु!

४—**'पद्मावत'** शेरशाह के समय में ही रचा गया। यह मानना कि स्तुति खण्ड (सम्पूर्ण अथवा उसका केवल शेरशाह सम्बन्धित स्पष्ट अंश) शेरशाह के जमाने में लिखा गया, बिल्कुल ही भ्रामक और असंगत है।

५—बंगला अनुवाद प्राचीनतम नहीं कहा जा सकता और न उसकी शुद्धता ही सर्वथा विश्वनीय है। आलो उजालो की इस पंक्ति "शेख मुहम्मद जाति जीवन रचित ग्रंथ संख्या सप्तविंशनवसत" के अनुसार निश्चय ही ग्रंथ ९२७ हिजरी में पूरा हो गया था। पर इसे प्रमाण कोटि में नहीं रखा जा सकता।

इसी प्रकार अन्य विद्वान भी अपने-अपने मत के समर्थन में अपना-अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत कृति के लेखक का विनम्र निवेदन यह है कि 'पद्मावत' जायसी की समस्त कृतियों में सभी दृष्टियों से प्रौढ़तम रचना है। कवि का जन्म ९०० हिजरी उसके अन्तर्साक्ष्य से पूर्णतया प्रमाणित है।

"भा अवतार मोर नव सदी"

यदि इस ग्रंथ का रचनाकाल ९२७ हिजरी मान लिया जाय तो उस समय कवि की अवस्था केवल २७ वर्ष ठहरती है। २७ वर्ष की अल्पायु में इतने बड़े 'महाकाव्य' का प्रणयन यदि मैं असम्भव न मानूँ तो असंगत तथा अति कठिन अवश्य कहना पड़ेगा। दूसरी बात यह कि यदि कवि २७ वर्ष की अल्पायु में ही पद्मावत ऐसा महाकाव्य लिख सकता था तो वह अपने जीवन के शेष २०-२२ वर्षों में किसी अन्य तथा अपेक्षाकृत प्रौढ़तर महाकाव्य की रचना क्यों नहीं कर सका ? और छोटी-छोटी कृतियों के निर्माण में उन बहुमूल्य तथा अनुभवी वर्षों को व्यय कर डाला। सहृदय तथा भावुक कविजन जायसी के स्थान पर स्वयं को बिठाकर सोचें कि वे 'पद्मावत' ऐसे महाकाव्य के निर्माण के बाद जीवन के शेष २०-२२ वर्षों में केवल एक **'अखरावट'** अथवा उसी प्रकार की अन्य छोटी-छोटी रचनाओं के सृजन में ही क्या वे संतोष प्राप्त कर लेते ? शायद नहीं—

जायसी की मृत्यु ९४९ हिजरी सब प्रकार से प्रमाणित हो चुकी है। जो लोग 'आखिरी कलाम' को कवि की अन्तिम कृति मानते हैं तथा उसका रचना-

काल ६३६ हिजरी बताते हैं उनसे अब मेरा एक प्रश्न है और वह यह कि—'आखिरी कलाम' की रचना ६३६ में कर लेने के उपरान्त जायसी ने क्या कवि कर्म से मुक्ति ले ली थी ? यदि नहीं, तो जीवन के शेष १२-१३ वर्षों में उन्होंने अन्य कौन सी रचना की ?

उत्तर में कहा जा सकता है कि यह कोई आवश्यक नहीं कि कवि जीवन के अन्तिम दिनों तक लिखता ही रहा हो। सम्भव है वह जीवन की अन्य परिस्थितियों तथा कठोर आवश्यकताओं में उलझा रहा हो और काव्य-सृजन का अवकाश न पा सका हो।

तर्क अपने में ठीक है और मैं इसे असम्भव भी नहीं मानता; पर इतना अवश्य कहूँगा कि १२-१३ वर्षों के लम्बे अन्तराय में कवि का एकदम मौन रहना असंगत सा जान पड़ता है। कवि चाहे जितनी विषम परिस्थितियों से क्यों न घिरा हो, उसकी वीणा के तार मौन नहीं रह सकते। सुख की मादक घड़ियों में यदि वे झंकृत होने के लिये विवश हैं तो दुख और वेदना के सघनतम क्षणों में हाहाकार करने को मजबूर भी। कवि की हृद्‌तंत्री सुख और दुःख दोनों के आघातों से झंकृत होती है, केवल एक के आघातों से ही नहीं।

यदि यह कहा जाय कि 'आखिरी कलाम' कवि की अन्तिम रचना नहीं है, उसके बाद भी कवि ने रचनायें की होंगी, पर वे अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं; तो हमें यह भी कहना पड़ेगा कि निश्चय ही वे रचनायें अपेक्षाकृत पद्‌मावत आदि से श्रेष्ठतर रही होंगी और उन्हें लोकप्रियता भी खूब मिली होगी। किन्तु कहीं से भी और किसी भी रूप में इस दिशा में कोई संकेत नहीं मिलता। सम्भव है भविष्य की खोजों में वे प्राप्त हों और उनका रूप वस्तुतः पद्‌मावत आदि से सभी दृष्टियों से श्रेष्ठतर भी हो, परन्तु जब तक वे प्राप्त नहीं होती तब तक **'पद्‌मावत'** ही कवि की श्रेष्ठतम रचना कही जायगी और वह २७ वर्ष की अल्पायु (६२७ हिजरी) में नहीं लिखी जा सकती।

अस्तु ! अब मैं निर्विवाद और अधिकार पूर्ण शब्दों में यह कहूँगा कि पद्‌मावत' निश्चय ही ६४७ हिजरी में पूर्ण हुआ। यह और बात है कि कवि उसे

पिछले कई वर्षों से लिखता चला आया हो। आरम्भ की वह तिथि ६२७ हिजरी हो सकती है अथवा ६२७ हिजरी से ६४७ हिजरी के बीच की अन्य कोई भी तिथि। पद्मावत में प्राप्त शाहेवक्त की बन्दना तथा अन्य प्रशंसात्मक अंश पुकार पुकार कर उसे शेरशाह के समय की कृति बताते हैं; फिर भी उसका रचनाकाल ६२७ हिजरी मानना एक दुराग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जायगा।

पद्मावत का साहित्यिक मूल्यांकन—'पद्मावत' का साहित्यिक मूल्यांकन करने के लिए सर्वप्रथम हमें यह देखना होगा कि वह किस कोटि का ग्रंथ है। सामान्यतया आचार्यों ने काव्य में दो भेद किए हैं—

१. **मुक्तक**—जिसमें प्रत्येक छन्द स्वतः सम्पूर्ण और स्वतन्त्र है। पद्मावत इसमें नहीं आता।

२. **प्रबन्ध काव्य**—जिसमें कथावस्तु का रहना नितान्त आवश्यक है और प्रत्येक छन्द पूर्वापर की अपेक्षा रखता है। प्रबन्ध काव्य में कथा वस्तु को अपने उद्देश्य की ओर अबाधरूप से प्रवाहित होना चाहिये। उसमें न तो किसी अनावश्यक प्रसंग अथवा कथा को लाना चाहिए और न आवश्यक को छोड़ना ही चाहिए। उसका कोई अंग ऐसा न होना चाहिए जो मुख्य उद्देश्य की पूर्ति न करता हो। साथ ही संगठन की दृष्टि से प्रत्येक प्रसंग को उचित विस्तार एवं संकोच प्रदान करना चाहिये। इत्तवृत्तात्मकता एवं रसात्मक स्थलों में उचित सामंजस्य होना चाहिये। रसात्मक स्थलों में मनुष्य के हृदय की वृत्तियाँ लीन होती हैं और इतिवृत्तात्मकता से उसकी जिज्ञासा वृत्ति की तृप्ति होती है। प्रबन्ध काव्य में भावों की सुन्दरता के अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि भाव परिस्थिति के अनुकूल हैं या नहीं?

इस दृष्टिकोण से यदि हम पद्मावत को देखें तो इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उसमें अनावश्यक प्रसंगों का समावेश अवश्य है किन्तु अनावश्यक बातों का समावेश नहीं हुआ है। कथानक में सम्बन्ध-विच्छेद भी पाया जाता है पर जो प्रसंग बीच में लाये गये हैं उनका मुख्य कथा से सामञ्जस्य स्थापित कर दिया है। जैसे समुद्र में पाँच रत्नों की प्राप्ति और उनका अलाउद्दीन को दिया जाना तथा देवपाल की शत्रुता और दूती का भेजा जाना, और राजा का

उससे मृत्यु को प्राप्त होना। इसमें घटनाचक्रों के भीतर जीवन दशाओं और पारस्परिक सम्बन्धों की वह अनेकरूपता तो नहीं है जो तुलसीदास के रामचरित मानस में है तथापि यह मानना पड़ता है कि रसात्मकता के संचार के लिए प्रबन्धकाव्य का जैसा घटनाचक्र होना चाहिए पद्मावत का वैसा ही है। —(डा० सुधीन्द्र)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में हम कहेंगे कि "प्रबन्धकाव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले—उसमें नाना भावों को रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इस दृष्टि से देखा जाय तो पद्मावत में कहीं तो जायसी को घटना का संकोच करना पड़ा है और कहीं विस्तार। पद्मावत में भाव परिस्थिति के अनुरूप हैं।"

इस प्रकार अब यह स्पष्ट हो गया कि पद्मावत में प्रबन्ध काव्य के लिए अपेक्षित प्रायः सभी गुणों का समावेश है। प्रेमाख्यायन काव्यों में उसकी समानता का अन्य कोई ग्रन्थ नहीं। वह अवधी भाषा का एक श्रेष्ठतर और रहस्यात्मक ग्रन्थ है जिसकी रचना मनसविया के ढंग पर हुई है। उसमें सात अर्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है। प्रारम्भ में ईश्वर, मुहम्मद साहब, खलीफाओं, शाहेवक्त तथा गुरु की क्रमानुसार स्तुति की है। तदुपरि कथारम्भ हुआ है।

पद्मावत हिन्दू और मुस्लिम विचारों का सम्मिलन प्रस्तुत करता है। वह दो संस्कृतियों का केन्द्र-बिन्दु है जहाँ वे परस्पर मिलती हैं। तत्कालीन वातावरण और अभिन्न विषमतम परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यदि पद्मावत का मूल्यांकन किया जाय तो हमें उसकी महानता एवं सफलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जायसी मुसलमान थे, हिन्दू घरानों की कहानी से उन्होंने जिस सफल काव्य का निर्माण किया और उसके द्वारा पावन प्रेम का जो अमर सन्देश दिया वह सर्वथा सराहनीय है। इससे पारस्परिक मतभेद को दूर करने

में उन्हें काफी सफलता मिली और लोगों ने अपने जीवन के वास्तविक स्वरूप एवं लक्ष्य को पहचाना और वे उसकी ओर गतिशील हुए।

पद्मावत का उद्देश्य था मानव को उद्विग्नता रहित चिरशांति का आभास कराना। कवि ने (ब्रह्म स्वरूप) पद्मावती को सती करा संसार की असारता की ओर ही संकेत किया है। देखिये उस समय वह कितना शाँत वातावरण प्रस्तुत करता है। जीवात्मा और आत्मा का महासम्मेलन कितना शान्तिप्रद होता है—

> राती पिउ के नेह गई, सरग भयउ रतनार।
> जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार॥

पद्मावत एक सफल महाकाव्य है। उसमें महाकाव्यत्व के पर्याप्त लक्षण विद्यमान हैं जो थोड़ी बहुत कमियाँ हैं वे उसके महान सन्देश में तिरोहित हो जाती हैं।

उसकी कथा का निर्माण कल्पना और इतिहास दोनों के सहयोग से किया गया है। पूर्वार्द्ध कल्पित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार रखता है; पर उसमें भी कवि की अपनी स्वतन्त्र दृष्टि है। इस सम्बन्ध में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कवि एक उत्कृष्ट काव्य का प्रणयन कर रहा था, ऐतिहासिक विवरण नहीं प्रस्तुत कर रहा था। सौन्दर्य और पवित्र प्रेम के पुजारी कवि ने पद्मावत में काव्य-कला का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है।

प्रेम-काव्य होने के कारण पद्मावत का प्रधान रस शृङ्गार ही है। शृङ्गार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का इसमें बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। मसनवियों के ढंग पर लिखे गये इस काव्य में जायसी ने अपनी मौलिकता सुरक्षित रखी है जो भारतीय रँग से संपृक्त है। इसे यों कहिये कि दोनों का सार चुनकर जायसी ने इस प्रेम मन्दिर का निर्माण किया है जो सर्वथा प्रशंसनीय और आदर्श कहा जायगा। काव्य की उत्कृष्टता के साथ अध्यात्म की गहनतम ऊँचाई भी उसमें प्राप्त है। काव्य के भाव और कलापक्ष दोनों का सुन्दर समन्वय इस ग्रंथ में हुआ है।

कवि की वर्णनशैली तथा चरित्र-चित्रण आदि सभी अनुपम हैं। हाँ, कहीं कहीं पुनरुक्ति दोष उसमें अवश्य आ गया है और कहीं-कहीं पर कवि अपनी विविध-विषयक, जानकारी प्रस्तुत करने के लिये वर्णन में नीरसता उत्पन्न कर देता है जहाँ पाठकों का मन ऊबने लगता है। पर ऐसे स्थल थोड़े ही हैं।

अन्य दोषों में आरोचक ओर अनपेक्षित प्रसंगों का सन्निवेश, अनुचितार्थत्व तथा एकाध स्थल न्यून पदत्व आदि में गिनाये जा सकते हैं।

पद्मावत में लौकिक प्रेम-पथ के त्याग, कष्ट सहिष्णुता तथा विघ्न-बाधाओं का चित्रण करके कवि ने भगवत्प्रेम की उस साधना का स्वरूप दिखाया है जो मनुष्य की वृत्तियों को विश्व का पालन और रंजन करने वाली उस परमवृत्ति में लीन कर सकती है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रेम की अत्यन्त व्यापक और गूढ़-भावना तथा मर्मस्पर्शिनी भाव-व्यंजना का निदर्शन है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सुन्दर समन्वय और ठेठ अवधी भाषा का माधुर्य तो देखते ही बनता है। भाषा माधुर्य का एक स्थल लीजिए—

पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा नित बोलै पिउ-पीऊ॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरी लेइ सुवा गएउ पिउ नामा॥
विरह बाग तस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि गइ चोली॥
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे-हरे प्रान तजहि सब नारी॥
खन एक आव पेट मँह सांसा। खनहि जाइ जिउ होइ निरासा॥
प्रान पयान होत को राखा। को सुनाव पीतम कै भाखा॥

पद्मावत के विशाल सौन्दर्य और साहित्यिक गरिमा पर मुग्ध हो डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "पद्मावत का सबसे बड़ा सौन्दर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है। नागमती का विरह वर्णन उसकी उन्माद दशा पशु-पक्षियों का उससे सहानुभूति प्रकट करना, पक्षी द्वारा सन्देश आदि सभी स्वाभाविकता के साथ विदग्धतापूर्ण भाषा में वर्णित है। बारहमासा में वेदना का कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का मर्मस्पर्शी माधुर्य और प्रकृति की सजीव अभिव्यक्तियों में हृदय की मनोहर अनुभूति है। इसी मनोवैज्ञानिक चित्रण में रसों का सफल प्रदर्शन हुआ है।"

जहाँ रत्नसेन-पद्मावती मिलन में संयोग और नागमती के विरह वर्णन में वियोग शृङ्गार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वहाँ गोरा बादल के उत्साह में वीर रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अन्तिम भाग में मारे जाने पर करुण रस की बड़ी सरस अभिव्यक्ति है। इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं 'पद्मावत' प्रेम काव्य का एक चिर स्मरणीय रत्न रहेगा।

हिन्दी का प्रथम सफल महाकाव्य, और प्रेम-काव्य-जगत का अनूठा एवं जगमगाता रत्न 'पद्मावत' जायसी की काव्य-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में तुलसीकृत रामचरित मानस के बाद उसकी समकक्षता में और कोई भी काव्य नहीं ठहरता। साहित्यिक और रहस्यवादी एवं दार्शनिक सौंदर्य से परिपुष्ट जायसी की यह रचना उनकी कीर्ति को युग-युग तक अमर रखेगी, इसमें सन्देह नहीं।

आखिरी-कलाम

कवि की नवीनतम प्राप्त कृति है। इसमें ६० दोहे और ४२० चौपाइयाँ (अर्द्धालियाँ) हैं।

रचनाकाल स्वरूप—अन्तः साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य दोनों के प्राप्त प्रमाणों से परीक्षित इसका रचना-काल ९३६ हिजरी है। इसमें सन्देह की गुंजायश नहीं।

यह एक मसनवी काव्य है। इसे हम भारतीय खण्ड काव्य की परिभाषा के अन्तर्गत ले सकते हैं।

नाम—इस ग्रंथ के नाम के सम्बन्ध में हिन्दी जगत में बड़ी भ्रान्तियाँ हैं। 'आखिरी-कलाम' में 'आखिरी' शब्द को देखकर कुछ विद्वान इसे कवि की अन्तिम रचना बताते हैं।

कलाम का शाब्दिक अर्थ वक्तृता, साहित्यिक कृति एवं आपत्ति है। इसके साथ विशेषण जोड़ देने से यथा कलाम-पाक, कलामुल्ला, कलाम-मजीद आदि का विशिष्ट अर्थ कुरआन होता है जिसको आखिरी कलाम भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि उसमें अन्तिम रसूल के उपदेशामृत संग्रहीत हैं।

प्रस्तुत जायसी कृत काव्य आखिरी-कलाम में सृष्टि के अन्तिम दृश्य का वर्णन है। कवि ने इसमें मुहम्मद साहब के दैन्य तथा अपने अनुयायियों के उद्धार के लिए उनकी तीव्र लालसा एवं व्याकुलता के वर्णन के साथ-साथ उनके सर्वोपरि महत्व-स्थापन का प्रयत्न किया है।

सम्भव है इन्हीं बातों के कारण काव्य का नाम आखिरी कलाम पड़ा हो।

कुछ लोग इसका नाम आखिरीनामा भी बताते हैं (और यह उनके नाम से प्रसिद्ध अन्य ग्रंथों के नाम से मेल भी खाता है। यथा—पोस्ती नामा, खुर्वा नामा, मोराई नामा, मुकहरा नामा, मुहरा नामा, कहार नामा, आदि); परन्तु वस्तुतः काव्य का जायसी ने क्या नाम रखा था प्रबल और पुष्ट प्रमाणों के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। वास्तविक नाम जो कुछ भी रहा हो, हिन्दी जगत उसे 'आखिरी कलाम' नाम से ही जानता है।

केवल नाम के आधार पर इस काव्य को जायसी का अन्तिम काव्य नहीं कहा जा सकता। वर्ण्य-विषय के आधार पर ग्रंथ का नाम 'आखिरी कलाम' ठीक है। कथा वस्तु—

डा० जयदेव ने अपने शोध ग्रंथ "सूफी महाकवि जायसी" में 'आखिरी कलाम' की कथा वस्तु निम्न प्रकार से दी है—

कवि ने सर्व प्रथम ईश-स्तुति करके अपने जन्मकाल के भूकम्प का वर्णन किया है। तत्पश्चात् रसूल-स्तुति करके बाबर शाह की प्रशंसा की है। इसके बाद गुरु वन्दना,[१] जायस वर्णन[२] माया वर्णन करके काव्य का रचनाकाल दिया है। (१ से १३)

प्रलयकाल का वर्णन करते हुए पृथ्वी का द्रव्य उगलना, तथा बिलाई के

१—इस काव्य में केवल एक 'गुरु' की वंदना की गई है।

२—जायस-नगर मोर अस्थानू। नगर के नाम आदि उदयानू॥

जायस का प्राचीनतम नाम 'उदयनगर' था। मुसलमानों ने इसका नाम जायस रखा जो फारसी 'जैश' पड़ाव से निकला है।

 रायबरेली प्रांत का गजेटियर पृष्ठ १८१

सूँघने से मृत्यु का वर्णन किया है, तत्पश्चात् मिकाइल फरिश्ते द्वारा चालीस दिन तक अग्नि-उपल वर्षण से समस्त सृष्टि के विनाश का वर्णन किया है। जिबराइल फरिश्ता आकर यह दृश्य देखता है और ईश्वर से निवेदन करता है कि संसार में कोई जीवित नहीं रहा है। (१८ तक)

मिकाइल आज्ञा पाकर चालीस दिन तक जल बरसा कर समस्त संसार को जलमग्न कर देता है। तत्पश्चात् इसराफील 'सूर' बजाते हैं जिससे पृथ्वी समतल हो जाती है। (१६ तक)

ईश्वर की आज्ञा पाकर जिबराइल अपने साथी फरिश्तों को एक-एक कर मार डालता है और स्वयं ईश्वर द्वारा मारा जाता है। (२१ तक)

अब ईश्वर चालीस वर्ष तक अकेला रहा और विचार किया कि सबको पुनः जीवित करके पुले-सरात पर चलाना चाहिए और कौसर—स्नान कराना चाहिये। (२२ तक)

यह विचार आते ही पहिले चारों फरिश्ते जीवित किए गए। जिबराइल पृथ्वी पर आये और मुहम्मद साहब को पुकारा। उत्तर में लाखों स्वर सुनाई पड़े। फिर जिबराइल ने उनकी खोज की। वे अपनी उम्मत समेत उठ खड़े हुए। वे सब नंगे थे और उनके नेत्र तालू में थे। (२५ तक)

मुहम्मद साहब की उम्मत का पुले-सरात को पार करना वर्णन किया है। धर्मी लोग तो शीघ्र पार कर गये, अन्य लोग अपने कर्मों के अनुसार धीरे-धीरे पार कर गए किन्तु पापी पीव के समुद्र में पुल से नीचे गिर गए। (२८ तक)

तत्पश्चात् आज्ञा पाकर सूर्य छः मास तक तपता रहा। पापियों को धूप और प्यास सहनी पड़ी। किन्तु धर्मियों के सिर पर छाँह थी। रसूल छाया में नहीं बैठे, क्योंकि उनको अपने अनुयायियों की बड़ी चिन्ता थी। अन्य सवा लाख पैगम्बर भी उपस्थित थे। वे छाँह में बैठे थे। (३० तक)

जब मुहम्मद साहब की उम्मत बुलाई गई, तो उन्होंने आदम, इब्राहीम, नूह आदि के पास अलग-अलग जाकर प्रार्थना की कि मेरी कुछ परमात्मा से सिफारिश कर दो। किन्तु सबने अपने-अपने दुःखों का पचड़ा गाकर कोरा टरका दिया। (३६ तक)

तब रसूल ने अपनी उम्मीद का सारा कष्ट अपने ऊपर लेकर परमात्मा से विनती की। खुदा ने कुपित होकर फातिमा की खोज कराई। जब सबने आँखें बन्द कर लीं, तब बीबी फातिमा हसन-हुसेन को लेकर खुदा के पास पहुँची और न्याय की याचना की—कि यदि मेरा न्याय न किया तो शाप दे दूँगी। फातिमा के क्रोध को देखकर ईश्वर ने रसूल को धौंस दी कि यदि वे अपनी पुत्री को शान्त न कर देंगे, तो उनके समस्त अनुयायी नरक में डाल दिये जावेंगे। रसूल ने फातिमा को समझाया, सारी स्थिति उसके समक्ष रखी। फातिमा को अपने पिता पर दया आ गई। उन्होंने क्रोध छोड़ दिया। ईश्वर भी मुहम्मद साहब पर प्रसन्न हो गए और मजीद (हसन-हुसेन) को नरक में डाल दिया। (४२ तक)

तत्पश्चात् रसूल के अनुयायी बुलाये गये। उनका न्याय किया गया। मुहम्मद साहब ने सब को क्षमा कर दिया, कौसर-स्नान हुआ। उम्मत सहित रसूल का निमन्त्रण हुआ। भोजन की विशेषता का वर्णन कर कवि ने शराब और पानों का वर्णन किया है। रसूल की प्रार्थना पर ईश्वर ने सबको दर्शन दिया। (५१ तक)

दर्शन पाकर सब दो दिन तक बेहोश रहे। तीसरे दिन जिबराइल ने आकर जगाया, वस्त्र पहनाये और स्वर्ग को ले गए। यहाँ पर सबको बहुत सी हूरें और अप्सरायें प्राप्त हुईं। (५५ तक)

अन्त में स्वर्ग और वहाँ के रहन-सहन का वर्णन कर जायसी ने अपने काव्य को समाप्त कर दिया है—

नित पिरीत नित नव-नव नेहू। नित उठि चौगुन होइ सनेहू ।।
नित्तइ नित्त ओ बारि बिया है। बीसौ बीस अधिक ओहि चाहै ।।
तहाँ न मीचु, न नींद दुख, रह न देइ महँ रोग।
सदा अनन्द मुहम्मद; सब दुख मानै भोग ।।

प्रबन्ध काव्य के रूप में—कथावस्तु को जान लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'आखिरी कलाम' एक प्रबन्ध-काव्य है। इस काव्य को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम भाग में काव्य का वह अंश आता है जो धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित है; तथा कयामत का होना, प्राणियों का उठना, पुले-सरात को पार करना, पमात्मा के सम्मुख उपस्थित होना। रसूल के अनुयायियों को ईश्वर द्वारा क्षमा प्रदान करना तथा अन्त में शाश्वत-स्वर्ग-विहार आदि है।

द्वितीय भाग में काव्य का वह अंश आता है जिसका आधार कवि-कल्पना है। इसमें ४० दिन अग्नि-उपल वर्षण, ४० दिन जल वर्षण, ४० वर्ष तक ईश्वर का एकांतवास और विचार, प्राणियों का नंगे बदन होना, तालू में आँखें होना, रसूल का अन्य पैगम्बरों के पास जाकर दैन्य-प्रदर्शन, फातिमा की खोज, फातिमा का क्रोध, खुदा का रसूल पर धौंस गालिब करना, रसूल का फातिमा को समझाना, अतिरंजित रूप से दावत का वर्णन, ईश्वर दर्शन, दो दिन तक सब का बेहोश पड़े रहना आदि।

काव्य का उक्त कथित प्रथम अंश तो अपनी जगह पर ठीक है परन्तु द्वितीयांश जो कवि-कल्पना प्रसूत है काव्य को आवश्यकता से अधिक कमजोर बना देता है। अनेक स्थल तो ऐसे हैं जहाँ प्रणेता द्वारा कवि कर्म की भी रक्षा नहीं हो पाई है। सभी बातें बेसिर-पैर की मालूम होती हैं जिनका काव्य के साथ कोई मेल नहीं बैठता। ये कल्पना-प्रसूत वर्णन बड़े विचित्र और उपहासास्पद हैं। इन स्थलों से काव्य की प्रबन्धात्मकता को बड़ा धक्का पहुँचा है। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि में अभी तक वह क्षमता न आ सकी थी जो एक सफल प्रबन्धकार में होनी चाहिए।

ग्रंथ में यत्र-तत्र इस्लामी विचारों का भी समावेश है जिससे कवि की धर्म सम्बन्धी मोटी-मोटी बातों की जानकारी ज्ञात होती है। काव्य में विरह की अभिव्यक्ति, गुरु महिमा का श्रद्धा और विश्वासपूर्ण वर्णन, उसके सूफीमत की ओर झुकाव का संकेत है। नाथ पंथियों और योगियों का भी प्रभाव आंशिक रूप में परिलक्षित होता है। इस दिशा में अभी उसे अच्छी गति नहीं प्राप्त हो सकी थी।

सबसे प्रमुख और उल्लेखनीय बात जो इस ग्रंथ में है वह हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में मेल कराने का कवि का प्रयास है। कवि की यह प्रवृत्ति उस युग

की देन है। देखिये कवि 'अजराइल' को 'यम' की संज्ञा देकर किस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम भावनाओं में ऐक्य का सम्पादन कर रहा है—

पुनि पूछब यम ! सब जिउ लीन्हा। एकौ रहा वांचि जौ दीन्हा ।।

अल्लाह का संहारक रूप रौद्र (शंकर) की संज्ञा से अभिहित होता हुआ देखिए—

जो जम आन जिउ लेत है। शंकर तिनहू कर जीव लेउ।
सो अब तरैं मुहम्मद, देखु तहूँ जिउ देव ।।

नीचे की पंक्तियों में कवि ने 'इबलीस' को शैतान और चंचलवृत्ति नारद को झगड़ालू के रूप में चित्रित कर दोनों को एकरूपता प्रदान करने की कोशिश की है—

धूत एक मारत घन गुना। कपर रूप नारद करि चुना ।।

हिन्दुओं की आरती प्रथा को भी कवि ने किस सुन्दरता के साथ अपनाया है, नीचे देखिये—

आरति करि सब आगे ऐहैं। नन्द सरोदन सब मिलि गैहैं ।।

कवि के रचना-क्रम के रूप में—कुछ विद्वान इसके नाम के आधार पर इसे कवि की आखिरी रचना मानने का दुराग्रह करते हैं जिसका संकेत पिछले पृष्ठों में मैं कर चुका हूँ। कुछ लोगों का यह कथन है कि यह कवि की अन्तिम कृति नहीं हो सकती क्योंकि इसमें अन्तिम कृति के अपेक्षित सम्भावित गुण नहीं पाये जाते। ऐसी दशा में इसकी वस्तुस्थिति की जाँच करना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

किसी भी कवि की अन्तिम रचना भले ही उसकी समस्त कृतियों में श्रेष्ठतम न हो परन्तु प्रौढ़तर अवश्य होती है। इस दृष्टि से 'आखिरी कलाम' की साहित्यिकता पर जब हम विचार करते हैं तो हमें बहुत निराशा होती है। इसमें अनेक काव्यगत त्रुटियाँ हैं जिनमें से कुछ का संकेत मैं नीचे कर रहा हूँ—

१—अनेक शब्दों का विकृत रूप प्रयोग किया गया है।

२—कहीं-कहीं शब्दों के वास्तविक अर्थ को छोड़ मनमाने अर्थ के लिए उनका प्रयोग किया गया है।

३—क्रियाओं के रूप प्रायः अशुद्ध हैं।

४—मुहाविरा सूचक शब्दों का प्रयोग भी अनुचित और असंगत रूप में किया गया है।

५—छन्दों में पर्याप्त शैथिल्य है। मात्राओं के न्यूनाधिक होने के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

६—शब्द योजना प्रायः अशक्त और अनुपयुक्त है।

७—निम्नकोटि के अलंकारों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण भद्दे, अरुचिकर तथा बेमेल हैं।

८—अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य है।

ये सभी त्रुटियाँ काव्य के कलापक्ष के अन्तर्गत आती हैं, अब भावपक्ष की भी कुछ त्रुटियाँ देखिए—

१—सम्पूर्ण काव्य में किसी भी स्थल पर कोई भी रस पूर्णता प्राप्त नहीं कर सका जो कवि की काव्य-साधना के प्रथम चरण का द्योतक है।

२—कवि अपनी कथावस्तु को उचित ढंग से प्रस्तुत करने में भी असफल है। कहीं भी पाठक की उत्सुकता को वह जागृत नहीं कर पाता।

३—काव्य में नीरस और अनावश्यक स्थल बहुत हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक पृष्ठ पर ऐसे दो-दो, तीन-तीन पद पाये जाते हैं। यह कवित्व का भारी दोष है। इससे पता चलता है कि इस समय तक कवि की काव्य-कला अत्यन्त ही अविकसित अवस्था में थी।

४—काव्य में अपेक्षित सौष्ठव एवं सौंदर्य का इसमें सर्वथा अभाव है।

ऐसी दशा में निश्चय ही कवि की प्रारम्भिक कृति है। किसी भी प्रकार अन्तिम कृति नहीं कही जा सकती।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कहना है कि 'आखिरी कलाम' की शैली पद्मावत की शैली से अधिक प्रौढ़ है। इस कथन की वास्तविकता की जाँच करने के लिए दोनों काव्यों की कतिपय पंक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना अधिक समीचीन होगा—

सर्व प्रथम हम दोनों ग्रंथों की प्रथम पंक्ति को ही लेते हैं—

पहिले नाँव दैव कर लीन्हा। जेइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा ॥

—आखिरी-कलाम

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह, कीन्ह संसारू ॥

—पद्मावत

इन पंक्तियों में भाव समान होते हुए भी पद्मावत का सौंदर्य निश्चय ही अधिक है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

मरम पाँव कै तेहि पै दीठा। होइ अपाय भुईं चलै बईठा ॥

—आखिरी-कलाम

दीन्हेसि चरन अनूप चलाहीं। सो जानइ जेइ दीन्हेसि नाहीं ॥

—पद्मावत

दूसरी पंक्ति में सौंदर्य छलका पड़ रहा है जब कि पहली पंक्ति (अर्थात् 'आखिरी कलाम' वाली) शिथिलता से भरी हुई है।

इसी प्रकार अनेक स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिससे पता चलता है कि इस ग्रंथ के रचना काल तक कवि की अभिव्यंजना-शक्ति में अभी पूर्ण प्रौढ़ता नहीं आ पाई थी।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की इस रचना में उसकी कला के उज्ज्वलतर रूप प्रस्तुत करने वाले तथा उसे अमर बनाने वाले वे तत्व नहीं उपलब्ध हैं जिनके आधार पर हम इसे उसकी अन्तिम कृति कह सकें। अस्तु मेरी राय में 'आखिरी कलाम' कवि की प्रारम्भिक कृतियों में से है। हाँ, यह आवश्यक नहीं कि वह कवि की प्रथम कृति हो।

अखरावट

जायसी के प्रसिद्ध तीन-काव्य ग्रंथों में यह तीसरा काव्य-ग्रंथ है। इसमें कुल ४७६ पंक्तियाँ हैं जिसके अन्तर्गत ५४ दोहे, ५४ सोरठे और ३७१ चौपाइयाँ (अर्द्धालियाँ) हैं। यह जायसी का सिद्धान्त-ग्रंथ कहा जाता है।

रचनाकाल—सम्पूर्ण ग्रंथ में कहीं भी रचनाकल का स्पष्ट संकेत नहीं है। मसनवी-काव्य न होने के कारण इसमें शाहेवक्त की चर्चा भी नहीं है। ऐसी दशा में इसके रचना-काल का निश्चय करने में अन्य बातों का ही सहारा लेना पड़ता है।

काफी छान-बीन के उपरान्त काव्य के अन्तरंग की दो बातों से हमें अपने इस प्रयत्न में थोड़ी सहायता मिलती है। प्रथम बात कवि द्वारा गुरु परम्परा का उल्लेख है। जायसी ने अपने प्रारम्भिक काव्य-ग्रंथ 'आखिरी कलाम' में केवल एक गुरु-परम्परा की चर्चा की है। शेष दो ग्रन्थों 'पद्मावत' और 'अखरावट' में दो-दो परम्पराओं का उल्लेख है इससे यह पता चलता है कि जायसी का सम्बन्ध प्रारम्भ में केवल एक गुरु परम्परा से था, किन्तु कुछ कालोपरान्त दूसरी गुरु परम्परा से भी हो गया। 'अखरावट' में दो गुरु परम्पराओं का उल्लेख इस बात का संकेत है कि वह 'आखिरी कलाम' से बाद की रचना है।

अब 'पद्मावत' और 'अखरावट' में से किसे पहले की रचना मानी जाय और किसे बाद की, यह प्रश्न उठता है। इस दिशा में 'अखरावट' की एक पंक्ति बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करती है। यह पंक्ति ४५-सवें दोहे की पहली चौपाई में है—

"कहा मुहम्मद प्रेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भये धियानी।"

निश्चय ही ज्ञानी लोगों को प्रेम में ध्यानावस्थित कराने वाली वह प्रेम-कहानी 'पद्मावत' ही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है 'अखरावट', 'पद्मावत' के बाद की रचना है।

सैयद कल्बे मुस्तफा अपनी पुस्तक 'मलिक मुहम्मद जायसी' के १६० वें पृष्ठ पर लिखते हैं—

"अल्फाज का इन्तखाब जुबान की रवानिगी, बन्दिश की चुश्ती पता देती है कि यह नज्म शायर जायसी के दौर आखिर का नतीजा है। इसके वह करायन हैं कि अखरावट पद्मावत के बाद तसनीफ हुई है।" डाक्टर जयदेव भी सैय्यद मुस्तफा के स्वर में स्वर मिलाते हुए अपनी पुस्तक "सूफी महाकवि जायसी" के पृष्ठ १३५ पर लिखते हैं कि **"हम भी मुस्तफा साहब के निर्णय से**

पूर्णतया सहमत हैं। इस काव्य में छन्दगत दोष न्यूनतम हैं। दोहे चौपाइयों में माधुर्य भी अधिक है और भाषा भी अधिक सुस्थिर तथ व्यवस्थित है। कवि ने एक नवीन छन्द सोरठे का भी सफल प्रयोग किया है।"

जनश्रुति के अनुसार 'अखरावट' की रचना अमेठी के राजा के कहने पर हुई थी। यहाँ पाठकों को याद रखना चाहिये कि अमेठी के राजा का जायसी से परिचय 'पद्मावत' के ही माध्यम से हुआ था। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'अखरावट' पद्मावत के बाद की ही रचना है।

जनश्रुति, शैली की प्रौढ़ता और विशदता, तथा कवि की आध्यात्मिकता की गहराई 'अखरावट' की 'पद्मावत' के बाद की रचना मानने को विवश करती है। पिछले पृष्ठों में मैं यह प्रमाणित कर चुका हूँ कि 'पद्मावत' ९४७ हिजरी में पूर्ण हुआ था। ऐसी दशा में यह निश्चित होता है कि 'अखरावट' की रचना ९४८-४९ हिजरी के बीच ही हुई। जायसी की मृत्यु ९४९ हिजरी सर्व सिद्ध है।

शैली—'अखरावट' न प्रबन्ध काव्य है न मुक्तक, वर्न यह तो एक सिद्धान्त-काव्य के रूप में है। उस समय में प्रचलित सिद्धान्त-काव्य की अशास्त्रीय पद्धति के अन्तर्गत 'ककरहा-पद्धति' में इसकी रचना हुई है जिसका विषयानुकूल विभाजन नहीं हो सकता। हाँ, वर्णमाला के अक्षर-क्रम से इसका विभाजन किया जा सकता है परन्तु उसका मूल्य नगरायवत है।

इस ग्रंथ का आरम्भ दोहे से किया गया है और उसमें मुहम्मद साहब के नूर के सर्वप्रथम निर्माण किये जाने की घोषणा की गई है। एक दोहे के पश्चात् एक सोरठा है और फिर सात अर्द्धालियाँ हैं। इसी प्रकार दोहे, सोरठे और अर्द्धालियों का चक्र घूमा करता है।

वर्ण्य-विषय और उसका साहित्यिक मूल्याँकन—'अखरावट' कवि के सिद्धान्तों और दार्शनिक विचारों का ग्रंथ है। इसमें कवि ने सृष्टि के मूल प्रयोजन और प्रकारों आदि का वर्णन किया है। कवि ने योग, उपनिषद, अद्वैत-वाद, भक्ति और इस्लामी एकेश्वरवाद आदि से महत्वपूर्ण सामग्री ग्रहण कर अपने ग्रंथ के वर्ण्य-विषय का निर्माण किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार आरम्भ

में आदि ब्रह्म था। उसने अपने मनोरंजन और आनन्द के लिए आनन्द की सृष्टि की। सृजन के क्रम में सर्वप्रथम चार फरिश्तों का निर्माण हुआ और इन चारों ने वायु, जल, अग्नि और मिट्टी इन चार तत्वों को मिलाकर पाँच भूतों से युक्त दस द्वार वाला एक पुतला रचा जो आदम कहलाया। फिर "हौआ" की रचना की गई और इन दोनों को स्वर्ग में विहार करने भेज दिया गया। वहाँ नारद के बहकाने से इन दोनों ने वर्जित फल 'गेहूँ' खा लिया। परिणाम-स्वरूप इन्हें अल्लाह का कोप भाजन बनकर एक लम्बे काल तक वियोग का कष्ट उठाना पड़ा। अन्त में भगवान की ही कृपा से उनका पुनर्मिलन हुआ और फिर उन दोनों से समस्त मानव-सृष्टि की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुरक दोनों उन्हीं की संतान हैं। शरीर में ही कवि ने स्वर्ग-नरक, सूर्य-चन्द्र, ऋतु तथा पुले सरात आदि सबकी कल्पना की है। साथ ही पांच ठग भी बताये हैं और उनसे अधिकाधिक सचेष्ट रहने को कहा है।

इसी प्रकार अन्य अनेक बातों का वर्णन करते हुआ अन्त में कवि ने चेला-गुरू सम्वाद के रूप में सिद्धान्त विवेचन किया है; और बताया है कि मनुष्य को उस परम शक्ति के प्राप्त करने के साधनों में लग जाना चाहिए। प्रेम गाथाओं का वर्णन करना चाहिए क्योंकि अन्य सभी चीजें मिट जाँयगी। इस संसार में केवल एक प्रेम कहानी ही अमर रहेगी।

'अखरावट' की विशेषता उसके आध्यात्मिक विचारों में ही है। ब्रह्मवाद, हठयोग, चक्रभेद और आनन्दवाद तथा सूफी इस्लामी सिद्धान्तों का समन्वयात्मक एकीकरण इस ग्रन्थ की विशिष्टता है। ग्रन्थ में वर्णित आध्यात्मिक विचारों को संक्षेप में डाक्टर रामरतन भटनागर ने इस प्रकार दिया है—

१—आदि में एक चित्सत्ता ही की स्थिति थी, उसे चाहे आदि गोसाईं कहो, या नूर कहो, या अल्लाह, या सुन्न (शून्य)। कालाँतर में इसी अस्तित्व से द्विधायुत जग का निर्माण हुआ। आकाश-पाताल, पाप-पुण्य, सुख-दुख।

२—नारद या शैतान के भुलावे में आकर जीव की अभेद स्थिति जाती रही। आदम स्वर्ग से निकाला गया। जीव अल्लाह के जमाल और जलाल से वंचित हुआ।

३—जीव में इसी वियोग की तड़पन है वह एक बार फिर इसी अल्लाह के जमाल और जलाल को प्राप्त करना चाहता है। यह उसी समय सम्भव है जब पहली अभेद स्थिति को वह प्राप्त हो सके जब जीव, ब्रह्म हो जावे।

४—इसके लिए प्रधान साधन है मन का परिष्कार।

५—परन्तु केवल मन के परिष्कार से ही कुछ नहीं होता। साधक को कुछ विशिष्ट साधनाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। जायसी का सूफी पंथ पर विशष आग्रह है, यद्यपि वह प्रत्येक पंथ को उपादेय मानते हैं।

६—जायसी का सूफी पंथ उनकी अपनी खोज है वह न शास्त्रीय सूफी पंथ है, न केवल भावनात्मक रहस्यवादिता। उनके अंग हैं—

(क) नमाज, तरीकत, मारफत, हकीकत और शरीअत ये इस्लामी विधि विधान हैं परन्तु जायसी ने इनकी नई व्याख्या की है, यद्यपि इनके सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक उन्होंने नहीं लिखा।

(ख) उसमें योग की भाँति कायानिष्ठ ब्रह्म की भावना है। इस पिंड (शरीर) में ही अल्लाह समाया है। 'त्रिकुटि' 'चक्रभेद' इत्यादि यौगिक साधनाओं द्वारा उसे प्राप्त करना सम्भव है।

(ग) नैतिक आचरण और हृदय-मन की शुद्धता।

(घ) 'प्रेम की पीर' की साधना।

७—यह निश्चय है कि जायसी ने अन्तिम अंग पर अधिक बल दिया है। सूफी तो एक मात्र प्रेम को जानता है। 'पद्मावत' में इस अंग को ही काव्य का विषय बनाया गया है। 'पद्मावत' की कहानी 'प्रेम की पीर' की ही कहानी तो है। इसी से जायसी अखरावट में प्रेम की साधना को विस्तार पूर्वक नहीं समझाते। यह समझाने की बात भी नहीं है। इसे तो हृदय ही समझ सकता है। फिर इस साधना के आनन्द का आभास गुरु-मुख होने से मिलता है। जायसी स्पष्ट कहते हैं—

"भा फल मीठ जो गुरु हुँत पावै।"

परन्तु गुरु भी साधक को कितनी दूर बढ़ा सकता है। इस सँकरे पथ पर तो अकेला ही चलना होगा। कवि कहता है—

कठिन खेल औ मारग सँकरा। बहुतन्ह खाइ फिरे सिर टकरा॥
मरन-खेल देखा सो हँसा। होइ पतंग दीपक मँह धँसा॥
तन पतंग भिंरिग कै नाईं। सिद्ध होइ सो युग-युग नाईं॥
बिनु जिउ दिये न पावै कोई। जा मर जिया अमर भा सोई॥

इस कठिन प्रेम पंथ के साधक का यह एक चित्र कितना सजग है—

प्रेम तंतु तस लाग रहु, करहु ध्यान चित बाँधि।
पारघ जैस अहरे कहँ, लाग रहे सर साधि॥

यह प्रेम की एक लक्ष्य साधना ही एक रूपक में रतनसेन की पद्मावती प्राप्ति की कहानी बन गई है।

८—आध्यात्म दर्शन के रूप में जायसी औपनैषदिक ब्रह्मवाद से भी आगे जाते हैं। वह कहते हैं—

जो किछु है सो है सब, ओहि बिनु नाहिन कोइ।
जो मन चाहा सो किया, जो चाहै सो होइ॥

वह जीव, ब्रह्म और प्रकृति को तत्वतः एक मानते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं जहाँ वे प्रकृति को उसकी छाया कहते हैं, वहाँ प्रतिबिंबवाद की झलक आ जाती है। जो अन्तर है, वह माया के कारण नहीं है, शैतान की करनी है। शैतान के भुलावे में आकर जीव अपने जमाल और जलाल को भूल गया है। इसी से उसके, अल्लाह के और प्रकृति के बीच में परदा पड़ गया है। परन्तु जब सब अल्लाह ही अल्लाह है तो यह दुःख-सुख, पाप-पुण्य इत्यादि द्वैध स्थिति क्यों है? जायसी ने इसका भी उत्तर दे दिया है। जैसे जीवात्मा शुद्ध आनन्द स्वरूप है पर शरीर के संयोग में दुःख आदि से युक्त दिखाई पड़ता है, वैसे ही शुद्ध ब्रह्म संसार के व्यावहारिक क्षेत्र में भला-बुरा आदि कई रूपों में दिखाई पड़ता है—

सुनु चेला! जस सब संसारू। ओहि भाँति तुम कया विचारू॥
जो जिउ कया तौ दुःख सौ भीजा। पाप के ओट पुन्नि सब छीजा॥
जस सूरज उअ देख अकासू। सब जस पुन्नि उहै परगासू॥
भल औ मंद जहाँ लगि दोई। सब पर धूप रहै पुनि सोई॥

मंदे पर वह दिस्टि जो परई। ताकर मैलि नैन सों ढरई ॥
अस वह निरमल धरति अकासा। जैसे मिली फूल मँह वासा ॥
सबै ठाँव औ सब परकारा। ना वह मिला न रहै निनारा ॥
ओहि जोति परछाहीं, नवौ खंड उजियार।
सूरज चाँद कै जोती, उदित अहै संसार।

इस प्रकार केवल अद्वैतवाद के आधार पर ही जायसी अपने आध्यात्म जगत का निर्माण करने में सफल हो जाते हैं। 'अखरावट' में एक स्थान पर 'माया' का उल्लेख अवश्य है, परन्तु शंकराद्वैत के अर्थों में नहीं। जायसी जीव-ब्रह्म के बीच में माया की स्थिति नहीं मानते। —डा० भटनागर

सूफियों के एक प्रधान वर्ग का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है। यह अनेकत्व जो दिखलाई पड़ता है वह उसी का ही भिन्न रूपों में आभास है। यह नाम रूपात्मक दृश्य जगत उसी एक सत् की वाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का बोध इन्हीं नामों और गुणों के द्वारा हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर जायसी ने कहा है—

दीन्ह रतन विधि चार, नैन, बैन, सरवन्न, मुख।
पुनि जब मेंटिहिं मार, मुहमद तब पछिताब मैं।

—अखरावट

इस परमात्मा के दो स्वरूप हैं—नित्यत्व और अनंतत्व। दो गुण हैं—जनकत्व और जन्यत्व। शुद्ध सत्ता में तो न नाम हैं, न गुण। जब वह निर्विशेषत्व या निर्गुणत्व से क्रमशः अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आती है तब उस पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं। इन्हीं नाम रूपों और गुणों की समष्टि का नाम जगत है। सत्ता और गुण दोनों मूल में जाकर एक ही हैं। दृश्य जगत भ्रम नहीं है, उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या ऊपर रूप में उसका अस्तित्व है। वेदान्त की भाषा में वह ब्रह्म का ही 'कनिष्ठ स्वरूप' है। हल्लाज के मत की अपेक्षा यह मत वेदान्त के अद्वैतवाद के अधिक निकट है। (जायसी ग्रंथावली की भूमिका, पृष्ठ १४४-४५)।

जायसी मूल अद्वैत स्थिति तक पहुँचने के बीच में अहंकार को सबसे बड़ा विघ्न मानते हैं। इस सम्बन्ध का उनका उपदेश देखिये—

'हौं-हाँ' कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई।
आपुहि गुरु सा आपुहि चेला। आपुहि सब औ, आपु अकेला।।
'सोऽहं-सोऽहं' बसि जो करई। जो बूझै, सौं धीरज धरई।
जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन जिउ, जीवन सब सोई।।
'हौं-हौं कहत धोख इतराही। जब भा सिद्ध कहाँ परछाँही।

कबीर ने भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की है—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं 'मैं' नाहिं।

जायसी की चित्त और अचित्त की एकता शांकर के वेदान्त से मिलती हुई भी पर्याप्त मतभेद रखती है शाँकर-वेदान्त विवृतिवाद के अधिक निकट है—यह जगत ब्रह्म का विवर्त्त (कल्पित कार्य) है। मूल सत्य द्रव्य ब्रह्म ही है जिस पर अनेक असत्य अर्थात् सदा बदलते रहने वाले दृश्यों का अध्यारोप होता है। जो नाम रूपात्मक दृश्य हम देखते हैं वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न ब्रह्म का कार्य, या परिणाम ही है। वह है केवल अध्यास या भ्रांति ज्ञान। उसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। नित्य तत्व एक ब्रह्म ही है।" (जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ १४७)

जायसी 'माया' के स्थान पर प्रकृति में प्रतिबिम्बवाद की जो प्रतिष्ठा करते हैं वह और कुछ नहीं, अद्वैतवाद के महत्व का प्रतिपादन ही है—

आपुहि आपु जो देखै चहा। आपनि प्रभुता आपुसौं कहा।
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहिं दरपन, आपुहिं देखा।।
आपुहिं बन, औ आपु पखेरू। आपुहिं सौजा, आपु अहेरू।
आपुहिं पुहुप फूलि बन फूलै। आपुहिं भँवर बास-रस भूलैं।।
आपुहिं घट, घट मँह मुख चाहै। आपुहिं आपन रूप सराहै।
दरपन बालक हाथ, मुख देखै दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साधु, मुहमद एकै जानिये।।

इन पंक्तियों की आचार्य शुक्ल ने जो व्याख्या की है वह भी पठनीय है—"**आपुहि दरपन, आपुहि देखा ।**" इस वाक्य से दृष्य और दृष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है । इसी अर्थ को लेकर वेदान्त में यह कहा जाता है कि ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नहीं उपादान कारण भी है । 'आपुहि आप जो देखै चहा' का मतलब यह है कि अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार जब देखना चाहा । शक्ति या माया ब्रह्म ही की है, ब्रह्म से प्रथक् उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं । 'आपुहि घट-घट महँ मुख चौहे'—प्रत्येक शरीर में जो कुछ सौंदर्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है । किस प्रकार एक ही अखण्ड सत्ता के अलग-अलग बहुत से प्रतिबिम्व दिखाई पड़ते हैं यह बताने के लिए जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं—

> **"गहरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै ।**
> **सूरुज दिपै अकास, मुहमद सब मंह देखिये ।।"**

(जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ १४८)

जायसी भारत में जन्मे थे, भारत की मिट्टी से उनका पालन पोषण हुआ था; फिर यह कैसे सम्भव था कि वे भारतीय जीवन दर्शन से प्रभावित न होते । यही कारण है कि 'अखरावट' में हम एक साथ वेदान्ती अद्वैतवाद और सूफी प्रेमवाद (इश्क) का समन्वय पाते हैं ।

जायसी का यह ग्रंथ उनकी काव्या-कला और दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विचारों का एक प्रौढ़तर स्तम्भ है । जिस सीधी-सादी और बोधगम्य भाषा-शैली में धार्मिक एवं अध्यात्मिक गूढ़ भावों को कवि ने व्यक्त किया है वह भारतीय साधना और साहित्य में सब प्रकार से प्रशंसनीय है—'अखरावट' अपनी श्रेष्ठता और गम्भीरता के लिए हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट और सम्मानपूर्ण स्थान रखता है ।

प्रश्न ४—हिन्दी में प्रेम गाथा काव्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए उसमें ज़ायसी का योग दान बताइये ।

हिन्दी में प्रेम गाथा काव्य का इतिहास जानने से पूर्व हमें उन समस्त परिस्थितियों से अवगत होना अनिवार्य है जिनके बीच सूफी धर्म ने भारत में

प्रवेश किया और पनपा क्योंकि सूफी धर्म ही प्रेमगाथा काव्यों का मूलाधार है।

मुसलमानों की शासन सत्ता के साथ धर्म के प्रचार की आँधी आई। तलवार के जोर से इस्लाम फैलने लगा। कायर और असमर्थ हिन्दू प्राण रक्षा के लिए धर्म परिवर्तन करने लगे। मुसलमानों की धर्मान्धता का यह वेग ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, दोनों जातियों के बीच त्यों-त्यों वैर-विरोध की खाई भी चौड़ी होती गई। लोक जीवन में उसका अनिष्टकर प्रभाव फैलने लगा। इस समय कोई ऐसी आध्यात्मिक प्रतिभा अथवा शक्ति वाला व्यक्ति नहीं था जो विच्छिन्न और युयुत्सु जातियों को किसी आंतरिक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करता। राजनैतिक हलचल ने देश, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में एक गहरी निराशा उत्पन्न कर दी थी। इस समय सर्वत्र एक शांति, सुव्यवस्था और सहानुभूति की उपेक्षा की।

ग्यारहवीं शताब्दी तक प्राय: सम्पूर्ण उत्तरी भारत में इस्लाम फैल चुका था और अब वह दक्षिण की यात्रा पर था। ठीक इसी समय बारहवीं शताब्दी में दक्षिणी भारत में रामानुजाचार्य तथा माधवाचार्य आदि कई धर्माधिकारियों ने अवतरण ले मृत प्राय: हिन्दू धर्म को पुनर्जीवन प्रदान किया। इस्लाम राज धर्म था और हिन्दू धर्म लोक धर्म। यद्यपि विशाल हिन्दू धर्म के सम्मुख इस्लाम धर्म की कोई सत्ता नहीं थी किन्तु राज धर्म होने के नाते वह हिन्दू धर्म से अपने को घट कर नहीं समझता था। दोनों में घोर प्रतिद्वन्द्विता थी और एक दूसरे से श्रेष्ठ बनने का थोथा अहंकार भी। हिन्दू धर्म यद्यपि बड़ा ही उदार धर्म रहा है तथापि मुसलमानों की संकीर्णता के नाते उनके इस्लाम से मेल नहीं स्थापित कर सका। दूसरे, दोनों में व्यावहारिक विरोधी तत्व भी पर्याप्त मात्रा में रहते आये हैं।

बारहवीं शताब्दी में ही सूफियों के भी भारत में प्रवेश करने का अनुमान किया जाता है। वैसे कुछ लोगों का यह भी विचार है कि मुसलमानी सूफी सन्तों का आगमन विदेशी आक्रमण से भी पहले हो गया था, परन्तु राजसत्ता स्थापित होने से पूर्व वे विशेष-प्रकाश में नहीं आये थे। शुरू-शुरू में सूफी साधक सिन्ध और पंजाब में आकर बसे; और फिर वहीं से धीरे-धीरे सारे देश

में फैल सूफी मत का प्रचार करने लगे। ये साधक अन्यान्य मुसलमानों के समान कट्टर और विरोधी नहीं थे, इसलिये भारतीय जनता ने विश्वासपूर्वक इनकी साधना के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। मुइनउद्दीन (११४२ ई०), कुतबुद्दीन काकी, फरीद शकरगंज (१२०० ई०), शेख चिस्ती (१२९१ ई०), निज़ामुद्दीन औलिया (१२३५ ई०), सलीम चिश्ती (१५१२ ई०) तथा मुबारक नागोरी आदि सूफी साधकों ने समान भाव से हिन्दू और मुसलमान दोनों का आदर और विश्वास प्राप्त किया था। बहुतों की समाधि पर आज भी हजारों की संख्या में श्रद्धालु हिन्दू और मुसलमान जनता अपनी भक्ति निवेदन करने प्रति वर्ष जाती है। यह बात कुछ बड़ी विचित्र तथा विरोधाभास सी लगती है कि उन दिनों जब कि हिन्दुओं और मुसलमानों में काफी बैर-विरोध बढ़ा हुआ था ऐसा मिलन किस प्रकार सम्भव हो सका। इस क्रम में आचार्य डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि "मध्ययुग बहुत कुछ करामातों का युग था। उस युग के प्रत्येक साधु सन्त के नाम पर दो-चार करामाती किस्से मिल ही जाते हैं। इन करामातों और उनकी ख्याति से लोग परस्पर एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते थे। दोनों ज्यों-ज्यों निकट आते गये त्यों-त्यों अधिकाधिक अनुभव करते गये कि दोनों में तात्विक मतभेद बहुत कम है। कबीर आदि सन्तों ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया। इन्होंने हिन्दुत्व और मुसलमानत्व के वाह्य उपकरण को हटाकर उनका असली रहस्य पहचानने की चेष्टा की। मुसलमानों की ओर से यह काम प्रेम-कहानियाँ लिखकर सूफी सन्तों ने किया।" कबीर आदि झाड़फटकार के द्वारा चिढ़ाने वाले सिद्ध हुए सन्तों के साथ उनकी तुलना करते हुए आचार्य शुक्ल ने बताया है कि कबीर आदि का प्रयत्न हृदय-स्पर्श करने वाला नहीं हुआ। "मनुष्य मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है वह उनके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदय का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है, उसकी अभिव्यञ्जना उनसे न हुई। कुतुवन जायसी आदि इन प्रेम-कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्यमात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू और मुसलमान हृदय को आमने-सामने करके अजनबीपन

मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।" इन साधकों ने हिन्दी में एक विशेष प्रकार के साहित्य को लुप्त होने से बचा लिया। आचार्य डा० हजारी-प्रसाद के शब्दों में "कबीरदास के निर्गुण भजन, सूरदास के लीलागान और तुलसीदास के रामचरितमानस अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गये और हिन्दू जनता का सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। परन्तु जन-साधारण का एक और विभाग, जिसमें धर्म का स्थान नहीं था, जो अपभ्रंश साहित्य के पश्चिमी आकार से सीधे चला आ रहा था, जो गाँवों की बैठकों में कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था, उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक-प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।"

ऐसा बताया जाता है कि हजरत मुहम्मद की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त से जब खलीफाओं की धार्मिक भावना पर राज्य विस्तार तथा ईश्वर प्राप्ति की भावना ने अपना अधिकार जमा लिया तो इस्लाम धर्म में भी आडंबर और साम्प्रदायिकता का समावेश होने लगा। इस्लाम से इसे दूर करने अथवा यों कहिए कि इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही सूफीमत का आविर्भाव हुआ था। भारत में यह सूफीधर्म प्रधानतः चार सम्प्रदायों के रूप में प्रविष्ट हुआ और इन्हीं चारों सम्प्रदायों की धार्मिक प्रवृत्ति के रूप में उसका यहाँ विकास हुआ। वे चारों सम्प्रदाय इस प्रकार हैं—

(१) चिश्ती सम्प्रदाय (२) सोहरावर्दी सम्प्रदाय (३) कादरी सम्प्रदाय और (४) नक्शबंदी सम्प्रदाय।

ये सम्प्रदाय बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक बने रहे। इनके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये न किसी नृपति के आश्रय में पल्लवित हुए और न किसी के द्वारा इनका संगठन ही किया गया। इन सम्प्रदायों के सूफी संत अपनी व्यक्तिगत महत्ता और साधना के आधार पर जनता तथा राज्य में श्रद्धा व आदर प्राप्त करते थे। ये संत अपने धार्मिक जीवन में अत्यंत सरल और सहिष्णु थे। इनमें उदारता और विशालता थी। ये धार्मिक स्थानों का परिभ्रमण कर अपना अनुभव जन्य उपदेश जनता

को देते थे। उन्होंने अपने ज्ञान रूपी प्रकाश के स्तम्भों से अपने उपदेशों का आलोक दूर-दूर तक जन-धरा पर बिखेरा। अपने आकर्षण और प्रेम के माध्यम से अन्य मतावलंबियों को व्यक्तिगत सात्विक प्रभाव में लाकर सूफी संतों के अनुयायियों में परिवृद्धि की। ये चारों सम्प्रदाय अपने मूल सिद्धान्तों में समान थे। वाह्य रूप से उनमें वही भेद मालूम होता था जो किन्हीं भी दो व्यक्तियों के व्यक्तित्वों व सिद्धान्तों में हो सकता है। उनके धार्मिक विचारों और व्यवहारों में पर्याप्त उदारता थी। मुसलमानों के एकेश्वरवाद की अपेक्षा उन पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव अधिक गहरा पड़ा था। उनकी प्रवृत्ति बड़ी ही सात्विक थी और यही सात्विकता उनकी महत्ता का प्रमुख आकर्षण। ईश्वर को प्राप्त करने की उनकी प्रेम-मयी साधना ही सूफी-धर्म की प्राण शक्ति कही जायगी। हिन्दी प्रेम गाथा काव्यों के मूल में सूफियों की यही ईश्वरोन्मुख प्रेम-मयी वृत्ति काम करती है।

हिन्दी साहित्य में सूफी साधना दो भाषाओं में व्यक्त हुई। प्रथम, हिन्दी या खड़ी बोली में (ब्रज, पंजाबी, दकनी और अन्य प्रान्तीय बोलियों से मिश्रित) और द्वितीय अवधी में खड़ी बोली में सूफी साहित्य फुटकर पदों, दोहों और गजलों आदि के रूप में रचा गया। पश्चिमी और दक्षिणी भारत में इस प्रकार की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हुईं। पूर्वी हिन्दी प्रदेश में अवधी के माध्यम द्वारा यह प्रकाश में आई। दोनों भाषाओं में **"मसनवी"** (कथात्मक) साहित्य की रचना हुई। परन्तु खड़ी बोली की मसनवियाँ **"दकनी"** (फारसी और ब्रज-भाषा मिश्रित खड़ी बोली) में हैं और उन पर भारतीय कथा पद्धति और काव्य का उतना प्रभाव नहीं है जितनी पूर्वी साधकों की अवधी कथाओं में जान पड़ता है। जो कथायें इन साधकों ने पद्य बद्ध कीं, वे मौलिक रूप से भारतीय थीं और जन साधारण में लोक कथाओं के रूप में चली आ रही थीं। उन्होंने उनके प्रभाव को समझा और उन्हें अपने भावों के प्रचार का माध्यम बनाया। वस्तुतः अवधी का सूफी काव्य ही हिन्दी में प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें प्रेम कथायें लिखी हुई हैं।

इनके इतिहास पर दृष्टिपात करने से इन प्रेम कथात्मक काव्यों का परिचय

हमें चारण काल से ही मिलने लगता है। मुल्ला दाउद के 'चन्दावत' को लोग इस परम्परा का प्रथम प्रसिद्ध काव्य बताते हैं, इस नाते उसका ऐतिहासिक महत्व विशेष है। इस काव्य में नूरक और चन्दा की प्रेम कथा का वर्णन है। इसका रचनाकाल १३१८ ई० है। यह समय अलाउद्दीन खिलजी के शासन का था। इसके पश्चात् कुतुबन से पूर्व हमें कोई ऐसा काव्य नहीं उपलब्ध होता। सम्भव है और भी प्रेम कथायें लिखी गई हों जो इस समय प्राप्त नहीं हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने पदुमावती (पद्मावती) नामक ग्रंथ में कुछ प्रेम कथाओं का इस प्रकार संकेत किया है—

विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कँह जोगी भयऊ॥
साथ कुंवर खंडावत जोगू। मधुमालति कँह कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कँह सुरसर साधा। ऊषा लगि अनिरुध वर बाँधा॥

इससे प्रतीत होता है कि जायसी (सन १४९५ ई०) से पूर्व सपनावती, मुगधावती, मृगावती, तथा मधुमालती और प्रेमावती प्रेम काव्य लिखे जा चुके थे। इनमें से मृगावती और मधुमालती तो खंडित रूप में उपलब्ध हैं परन्तु शेष का पता नहीं। जायसी द्वारा सांकेतिक कथाओं में विक्रमादित्य एवं उषा अनिरुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। शेष लोक प्रचलित कथाओं का आश्रय लेकर लिखी हुई जान पड़ती हैं।

'मृगावती' की रचना शेख कुतुवन द्वारा हुई है जिसका रचनाकाल १५६० है। मृगावती में, मृगावती और चन्द्रगिरि के राजकुमार की प्रेम कथा का वर्णन पाया जाता है। कथा का वर्णन दोहा चौपाई तथा सोरठा और अरिल्ल छंदों में हुआ है। इसमें शामी परंपरा का प्रभाव पूर्ण रूपेण परिलक्षित होता है। साथ ही भारतीय परंपरा का भी इस पर प्रभाव है। राजकुमार की मृत्यु के उपरांत उसकी दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं और तब कवि कह उठता है—

बाहर वह भीतर वह होई,
घर बाहर को रहै न जोई।

विधि कर चरित न जानै ग्रानू,
जो सिरजा सो जाहि नियानू ।।

'मधुमालती' के रचयिता मंझन हैं। ग्रनुमानतः इसका रचनाकाल १५७५ से १५८५ के बीच में कहा जा सकता है। इसकी कथा तथा वर्णन शैली ग्रपने पूर्ववर्ती ग्रंथों की ग्रपेक्षा ग्रधिक जटिल, प्राँजल व कोमल है। इसमें कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस की राजकुमारी मधुमालती की प्रेमकथा के साथ ही साथ उपनायक ताराचन्द तथा उपनायिका प्रेमा की कथा का भी वर्णन हुग्रा है। जायसी ने मधुमालती का नायक खंडावत लिखा है, परन्तु उसमान कृत चित्रावली में इसके स्थान पर मनोहर का उल्लेख है—

मधुमालति होई रूप देखावा।
प्रेम मनोहर होई तहँ ग्रावा ।।

इस काव्य में प्रेम के सिद्धान्त तथा कथा का संगठन और विरह का बड़ा मनोहारी चित्रण हुग्रा है। यह काव्य वर्णन प्रधान है। कहा जाता है कि इसे ग्रपने समय में सर्वाधिक ख्याति मिली थी। कवि ने ग्रपनी कोमल भावनाग्रों को मनहर कथा सूत्र में बड़ी सावधानी से पिरोया है। इस काव्य के ग्रत्यधिक प्रभावशाली होने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इसके कवि ने प्रेम भाव को प्रत्यक्ष दर्शन के ग्राधार पर जाग्रत कराया है।

'मृगावती' और **'मधुमालती'** के बाद जायसी के 'पदमावती' का ही नाम ग्राता है क्योंकि जायसी के पश्चात् हुए उसमान कवि ने भी 'मृगावती' 'मधु मालती' और 'पद्मावती' का उल्लेख किया है।

मृगावती मुख रूप बसेरा।
राजकुँवर भयो प्रेम ग्रहेरा ।।
सिंहल पदुमावति सो रूपा।
प्रेम कियो है चितउर भूपा ।।
मधुमालति होइ रूप देखावा।
प्रेम मनोहर होई तहँ ग्रावा ।।

—चित्रावली पृष्ठ १३

पद्मावती हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है। जिसकी ज्योति कभी क्षीण होने वाली नहीं। इसके प्रेमाख्यान का प्रभाव इतना पड़ा कि उसके बाद प्रेमाख्यानक काव्यों की एक परम्परा सी चल पड़ी और वह उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही। पद्मावत के बाद लिखे गये प्रमुख प्रेम काव्यों की तालिका डा० विमलकुमार जैन ने अपने शोधग्रंथ **'सूफीमत और हिन्दी साहित्य'** के पृष्ठ ११३ पर इस प्रकार दी है—

काव्य	कवि	काल	
१. चित्रावली	उसमान	सन् १०२२ हिजरी	सन् १६१३ ई०
२. ज्ञानदीप	शेख नबी	लगभग सं० १६७६	सन् १६१६ ई०
३. हंस जवाहर	कासिमशाह	लगभग सं० १७८८	सन् १७३१ ई०
४. इन्द्रावती	नूर मुहम्मद	हिजरी सन् ११५७	सन् १७४४ ई०
५. अनुराग बाँसुरी	"	हिजरी सन् ११७८	सन् १७६४ ई०
६. प्रमरतन	फाज़िलशाह		सन् १८४८ ई०

इसी क्रम में वे दो काव्यों का उल्लेख करते हैं उनके नाम हैं, ७. माधवानल ८. युसुफ जुलेखा। 'माधवानल' के रचयिता आलम हैं और उसका रचनाकाल हिजरी ९९१ (सन् १५८३ ई०) है। 'युसुफ जुलेखा' के रचने वाले शेख निशार हैं। इसका रचनाकाल हिजरी सन् १२०५ (१७९० ई०) है। परन्तु इन ग्रंथों का प्रेम गाथा काव्य परम्परा में कोई विशेष महत्व नहीं। डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने पुहुपावती नाम के एक और ग्रन्थ की चर्चा की वह निश्चय ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

'चित्रावली' का स्थान अपनी परम्परा में बड़े गौरव का है। इसका प्रणयन बहुत कुछ पदमावत के अनुकरण पर हुआ है। प्रमुख अन्तर यही है कि इसकी कथा पदमावत की भाँति ऐतिहासिक न होकर कल्पना प्रसूत है। इसमें कवि ने स्थान-स्थान पर वेदाँत और अद्वैतवाद की झलक दिखाई है—

सब वही भीतर वह सब माँही, सबै आपु दूसर कोउ नाहीं।
दूसर जगत नाम जिन पावा, जैसे लहरी उदधि कहावा॥

कथा में घटनाओं की शृङ्खला बहुत लम्बी और कौतूहलपूर्ण है। उसमें अनेक अलौकिक बातों का भी समावेश है। कथा को विस्तृत करने की कल्पना की गई है। इसमें नेपाल के राजकुमार सुजान, रूपनगर की राजकुमारी 'चित्रावली' और सागर की राजकुमारी कमलावती की प्रेम कथा है। दोनों राजकुमारियों से विवाह करने से पूर्व जितनी कठिनाइयाँ आती हैं उनका विस्तृत-विवेचन इस काव्य में किया गया है। कवि ने कल्पना के साथ आध्यात्म की बड़ी मनहर व्यंजना की है। चित्रावली को लेकर काव्य में अनेक स्थानों पर ईश्वर और जीव का रूपक बाँधा गया है। वह जब जल में छिप जाती है तो सखियाँ उसे ढूँढ़ती रहती हैं। सखियों का यह ढूँढना आत्मा की जिज्ञासा वृत्ति का द्योतक है; और चित्रावली का जल में छिपना ईश्वर के अमूर्त होने से साम्य रखता है। देखिये चित्रावली के जल में छिप जाने पर कवि ने सखियों से कैसे अलौकिक और गूढ़ वचन कहलवाए हैं—

> गुपुत तोंहि पावहिं का जानी, परगट मँह जो रहहि द्वयानी।
> चतुरानन पढ़ि चारौ वेदू, रहा खोज पै पाव न भेदू॥
> संकर पुनि हारे कै सेवा, ताहि न मिलिज आर को देवा।
> हम अंधी जेहि आपु न सूझा, भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा॥
> कौन सो ठाँउ जहाँ तुम नाहीं, हम चषु जोति न देखहिं काहीं।
> पावै खोज तुम्हार सो, जेहि देखलावहु पंथ।
> कहा होइ जोगी भये, औ पुनि पढ़े गरंथ॥
>
> —चित्रावली पृष्ठ ४७-४८

बहुज्ञ उसमान ने अपनी लोकोक्तियों द्वारा काव्य में एक विचित्र प्रभावोत्पादकता ला दी है। यथा स्थान कवि का भूगोलादि का ज्ञान भी परिव्यक्त हुआ है।

'ज्ञानदीप' में राजा ज्ञानदीप और देवजानी की कथा वर्णित है। इसके कवि शेख नबी जौनपुर जिले में मऊ के निवासी थे। कहना न होगा इस काव्य में भी परम्परागत गुणों और यथेष्ट सरसता का समावेश है।

'हंस-जवाहर' में राजा हंस और रानी जवाहर की प्रेम कहानी है। इसके रचयिता कासिम शाह दरियाबाद (बाराबंकी) में उत्पन्न हुए थे। ये अपनी जाति में निम्नवर्ग से सम्बन्धित थे। **'हंस-जवाहर'** की कथा इस तरह है कि बलखनगर के सुलतान बुरहान के घर एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ और चीनाधिपत्य आलमशाह के घर जवाहर नाम की एक सुन्दरी कन्या ने जन्म लिया। बड़े होकर इन दोनों के हृदय में प्रेम का बीजारोपण हुआ। हंस, जवाहर के लिए घर से योगी होकर निकला और अनेक कष्टों के पश्चात् उसे प्राप्त कर घर लौटा। यह काव्य भी अपनी परम्परा के अन्य काव्यों की भाँति आध्यात्मपरक ही है।

'इन्द्रावती' और **'अनुराग-बाँसुरी'** के रचयिता नूर मोहम्मद हैं। ये जौनपुर जिले में सबरहद नामक स्थान के रहने वाले थे। बाद में आजमगढ़ में अपने ससुर समसुद्दीन के यहाँ रहने लगे। इनका समय १७४० के आस पास का है क्योंकि **'इन्द्रावती'** में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह की प्रशंसा की गई है। 'इन्द्रावती' का रचनाकाल ११५७ हिजरी (सन् १७४४ ई० के लगभग) और 'अनुराग बाँसुरी' सन् ११७८ हिजरी (सन् १७६४ ई० के लगभग) है। डा० विमलकुमार जैन के शब्दों में **"अनुराग बाँसुरी तो तत्वज्ञान की मंजूषिका ही है। ईश्वर जीव के मध्य मनोवृत्ति के सहारे प्रेम कथा का ऐसा सुन्दर चित्रण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।"** नूर मुहम्मद का उपनाम 'कामयाब' था।

नूर मुहम्मद के बाद फाजिलशाह ने 'प्रेम-रतन' लिखा जिसमें नूरशाह और माहेमुनीर की प्रेम कथा है, परन्तु इसका अपनी परम्परा में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं। इसमें भी वही सब बातें सधारण स्तर पर दुहराई गई हैं। इसी प्रकार 'नलदमन' नाम का भी एक काव्य मिला है जो १६५६ ई० का है। इसके लेखक कोई सूरदास हैं पर यह भी महत्वहीन काव्य है।

पुहुपावती का रचनाकाल १६६९ ई० है। इसके रचयिता दुखहरनदास है। इसमें राजपुर के राजकुँवर और अनूप नगर के राजा अंबरसेन की पुत्री पुहुपावती और काशी के चित्रसेन की कन्या रूपावती की प्रणय कथा है। यह ग्रन्थ भी उच्चकोटि का आध्यात्मपरक सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है।

इस परम्परा के समस्त ग्रन्थों का अवलोकन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि इस धारा के कवियों की दृष्टि सूफी मत के प्रचार पर सर्वाधिक सम्पूर्णतः नहीं टिकी रही। हमारे कथन की पुष्टि इस बात से और भी होती है कि सभी ग्रन्थों में पारस्परिक समानताएँ हैं जिनसे यह प्रतिध्वनित होता है कि सभी एक ही लक्ष्य के पथिक हैं। वह लक्ष्य और कोई नहीं सूफीमत का प्रचार ही था। ये कवि बड़े ही उदार और सात्विक विचारों के थे (जैसा कि सूफीधर्म में दीक्षित प्रत्येक व्यक्ति हुआ करता है) और इनका हृदय प्रेम की पीर से भरा हुआ था। इन ग्रन्थों में पाई जाने वाली कुछ प्रमुख समानताएँ इस प्रकार हैं—

१. प्रायः सभी काव्य मुसलमानों द्वारा लिखे गए हैं। इनके लेखक अत्यन्त ही उदार और सात्विक वृत्ति वाले थे।

२. सभी प्रेमाख्यानक काव्यों के नाम नायिकाओं के ऊपर हैं। नायक और नायिका क्रमशः ब्रह्म और जीव के प्रतीक रूप में चित्रित किये गए हैं। परम सौन्दर्य और अखंड प्रेम भावना रूपी नायिकाओं की प्राप्ति ही नायकों की साधना का लक्ष्य है। इन्हीं के लिए नायक भटकते फिरे हैं।

३. प्रत्येक काव्य का नायक दो पत्नी धारी है एक पत्नी सांसारिक कार्य भार को वहन करती है और दूसरी परमात्मा की उज्ज्वल ज्योति रूप है। पदमावती में पद्मावती और नागमती, मृगावती में मृगावती और रुक्मनी दो दो पत्नियों के रूप में चित्रित हैं। मधुमालती के कवि ने स्थिति में थोड़ा-सा मोड़ देकर भारतीय जनता के मर्म को और समीप से स्पर्श किया है।

४. सभी सूफी कवियों ने हिन्दू राजाओं को, भले ही वह कल्पित ही क्यों न हों अपने काव्य का विषय बनाया।

५. सूफी कवियों द्वारा वर्णित कथाएँ ही हिन्दू समाज की लोकप्रिय प्रेम कथाएँ नहीं हैं, वरन् काव्यों में प्रयुक्त पृष्ठभूमि भी अपनी सम्पूर्ण रीति नीति में भारतीय हैं।

६. सभी कवियों ने नायिका (शक्ति) के माता-पिता द्वारा नायिका के विवाह का विरोध प्रदर्शित किया है।

७. सभी काव्यों में प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त ऐसे भी पात्रों की सृष्टि है जिनमें से कुछ व्यर्थ ही में दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, दूसरों की प्रगति पर कुढ़ते हैं और मौका पड़ने पर बुरा करने में भी नहीं चूकते। इसके विपरीत कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो हृदय के कोमल तथा उदार हैं और दूसरों की कार्य-साधना-सिद्धि में हाथ बँटाते हैं।

८. सभी काव्यों में (Love at first Sight) वाली बात ही चरितार्थ हुई है। साधक में कहीं रूप दर्शन के श्रवण से ही प्रेमोद्दीपन होता है तो कहीं रूप-सुन्दरी के चित्र-दर्शन मात्र से ही। हीरामन से पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की चर्चा सुनकर ही रत्नसेन के मन में प्रेम का अंकुर उग आता है। 'चित्रावली' काव्य में चित्रावली का चित्र देखकर ही राजकुमार उस पर मोहित हो जाता है। मोहवश वह अपना चित्र भी उस चित्र के समीप लगा देता है जिसे देखकर चित्रावली भी प्रेमविह्वल हो जाती है। मधुमालती मृगावती और पुहुपावती में भी प्रथम दर्शन ही प्रेम की महायात्रा का आरम्भ बिन्दु है। इन कवियों ने प्रेम की आग दोनों तरफ से प्रज्ज्वलित की है।

९. ये सभी काव्य फारसी की मसनवियों के ढङ्ग पर लिखे गए हैं। इनमें भारतीय सर्ग बद्ध काव्य शैली को नहीं अपनाया गया है। मसनवियों की शैली के अनुसार प्रथम स्तुतियाँ होती हैं जिनमें प्रायः क्रमानुसार ईश्वर, मुहम्मद साहब, खलीफा, गुरु एवं शाहेवक्त की स्तुति का प्राधान्य रहता है। इनमें भी इसी पद्धति का अनुकरण है, साथ ही भारतीय पद्धति का भी इन पर पर्याप्त प्रभाव है।

१०. प्रायः सभी सूफी कवियों ने ठेठ अवधी को अपनाया है और दोहे-चौपाई छन्दों में अपने ग्रन्थों की रचना की है। कुछ चौपाइयों के बाद एक दोहे का विधान है। मृगावती और मधुमालती में चौपाई की पाँच पंक्तियों के पश्चात् और चित्रावली में सात पंक्तियों के पश्चात् एक दोहे का क्रम रखा गया है। नूर मुहम्मद ने 'अनुराग-बांसुरी' में छः पंक्तियों के पश्चात् दोहा न रखकर एक बरवै रखा है।

११. सबकी वर्णन शैली, प्रतीक योजना, अलंकार योजना, समुद्र यात्रा लगभग समान है।

१२. सभी काव्य आध्यात्म भावना से ओत प्रोत हैं। लौकिक प्रेम-कथाओं में दिव्य-प्रेम की झांकी है जिससे रहस्यात्मकता की अखंड व्यापकता प्रदर्शित हुई है। जीवात्मा ईश्वरीय अंश और सम्पूर्ण विश्व उसी का प्रदर्शन माना गया है। इसी से जीवात्मा ईश्वर से मिलने को व्याकुल रहती है। गुरु की सहायता से ईश्वर की प्राप्ति होती है।

१३. सभी काव्यों में योग भावना का समावेश है सभी नायक योगी बने हैं। अनेक यौगिक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। गोरखनाथ, गोपीचन्द तथा भतृहरि आदि योगियों का उल्लेख भी आया है।

१४. हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के प्रति समन्वयात्मक प्रेम भावना सभी काव्यों में व्यक्त हुई है। निर्गुण और सगुण का अद्भुत मेल हुआ है जो भारतीय सूफी काव्यों की अपनी विशेषता है।

× × ×

उपर्युक्त पंक्तियों में अभी तक हमने हिन्दी प्रेम गाथा काव्यों का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय व विचार-वर्णन-साम्य आदि का ज्ञान प्राप्त किया है; अब हम इस परम्परा में कविवर जायसी के योगदान का मूल्यांकन करेंगे।

कहना न होगा कि जायसी का पद्मावत हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा का सर्वाधिक प्रकाशमान रत्न है। उसकी महानता और गुरुता अपनी परम्परा के समस्त काव्यों में सर्वाधिक है। इस काव्य को पढ़ने से ऐसा लगता है मानो कवि की आत्मा और वाणी दोनों प्रशान्त सागर की चंचल और स्निग्ध लहरियों के अन्तस्तल में डूब कर निकली हों। पदमावत का शब्द प्रेम और अध्यात्म की व्यंजना से परिपूर्ण है। राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की प्रणय कथा का जितना सरस, मार्मिक और गम्भीर वर्णन कवि ने पद्मावत में प्रस्तुत किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस परम्परा के ग्रंथ भी इसकी समकक्षता में देर तक नहीं ठहरते। नागमती का विरह-वर्णन तो हिन्दी कविता का प्राण

बिन्दु ही है। जायसी ने इतना बड़ा पद्मावत न लिखकर यदि केवल नागमती का विरह वर्णन ही लिखा होता तो भी वे काव्य-जगत में अमर पद के भागी होते। असुन्दर जायसी का मानस कितना सुन्दर था इसे पद्मावत की पंक्तियाँ ही बता सकती हैं।

ग्रंथ का पूर्वार्द्ध काल्पनिक और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। पूर्वार्द्ध में तोते के द्वारा पद्मावती के रूप की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन का सिंहलद्वीप तक जाना और शिवजी की कृपा से पद्मावती को प्राप्त करना वर्णित है। यह भाग लोक वार्ता पर आधारित है। उत्तरार्द्ध में राघव का अलाउद्दीन को लाना और रत्नसेन का देवपाल के हाथों द्वारा मारा जाना पूर्णतः ऐतिहासिक तो नहीं किन्तु ऐतिहासिक सम्भावनाओं से युक्त है। इस ग्रंथ पर नाथ पंथ का भी पर्याप्त प्रभाव है क्योंकि सिंहलद्वीप नाथ पंथियों की सिद्ध पीठ है। हठयोग की क्रियाओं का प्रभाव रत्नसेन पर स्पष्ट दिखाया गया है। ग्रंथ में स्थान-स्थान पर लौकिक प्रेम के सहारे आध्यात्मिक तत्वों की बड़ी सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत की गई है। काव्य मसनवी ढंग से रचा गया है। आरम्भ में ईश्वर, गुरु, रसूल और शाहेवक्त की बंदना हैं। सम्पूर्ण काव्य अवधी भाषा में दोहे और चौपाइयों की पद्धति पर लिखा गया है। ग्रंथ सर्गों में न विभाजित हो खंडों में विभाजित है। कवि को कथा निर्वाह में काफी सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त ऋतु वर्णन, प्रकृति चित्रण, विचारों की उदारता व उदात्तता, मर्मस्पर्शनी भाव व्यंजना, वर्णन की प्रचुरता, रसपरिपाक, सफल अलंकार योजना और सांस्कृतिक समन्वय की भावना तथा पवित्र प्रेम की व्यापक गूढ़ व्यंजना आदि बातों का समावेश कर कवि ने ग्रंथ को महाकाव्य की गरिमा से भर दिया है। वैसे ग्रंथ में कुछ दोष भी हैं जिसके लिए कवि को यद्यपि क्षमा नहीं किया जा सकता तथापि प्रेम की व्यापकता और अन्यान्य विशेषताओं के सम्मुख वे दोष नगण्य हो जाते हैं। भाषा भाव और शैली सभी दृष्टियों से ग्रंथ अनुपमेय बन पड़ा हैं। तत्कालीन परिस्थितियों और सांस्कृतिक माँग के अनुसार कवि की यह देन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। कवि ने इस ग्रंथ का प्रणयन करके

प्रेमाख्यानक हिन्दी काव्य परम्परा को अत्यन्त गौरव प्रदान किया है। इस दृष्टि से उसका स्थान अन्यतम है।

प्रश्न ५—पद्मावत का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य में उसका स्थान बताइये।

पद्मावत का सम्यक अध्ययन तथा निरूपण कर हिन्दी साहित्य में उसका स्थान निश्चित करने के लिए हम अपनी सुविधानुसार उसे निम्नलिखित बिन्दुओं से देखेंगे—

१—रचनाकाल

२—कथानक

३—कहानी कला (तत्वों के आधार पर)

४—काव्य-सौंदर्य (भाव पक्ष और कला पक्ष के आधार पर)

५—महाकाव्यत्व

६—दार्शनिकता

७—रहस्यवाद

८—हिन्दी साहित्य में स्थान (विशिष्टताएँ)।

रचनाकाल—इस ग्रंथ की रचना ९४७ हि० में हुई थी। वैसे इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है, जिसकी चर्चा विस्तार में हम जायसी की कृतियों वाले अध्याय में कर चुके हैं। मेरी अपनी मति में इसका रचनाकाल सन् ९४७ हिजरी ही अधिक समीचीन जान पड़ता है। अपने इस कथन के प्रमाण एवं समर्थन में मैं पिछले पृष्ठों में पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ। पद्मावत, जायसी की प्रौढ़तम कृति है, इसलिए इसका निर्माण काल हम जायसी की प्रौढ़ आयु में ही मानना अधिक युक्तिसंगत समझते हैं।

कथानक—डाक्टर कमलकुल श्रेष्ठ के शोध-प्रवन्ध हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के अनुसार पद्मावत या पद्मावती की कथा निम्न प्रकार से है—

सिंहलगढ़ के राजा गंधर्वसेन और रानी चंपावती के एक संतान हुई। इसका नाम पद्मावती रखा गया। पद्मावती अत्यन्त सुन्दर थी। पाँच वर्ष की

आयु प्राप्त करने पर उसने पढ़ना प्रारम्भ किया। पढ़ने में वह बहुत दक्ष थी। जब वह बारह बरस की हो गई तो सात खंड वाले महल में उसे अलग वास-स्थान दिया गया। उसकी अगणित सखियाँ थीं और उसके एक तोता था। तोते का नाम हीरामन था। वह महा पंडित था और वेदशास्त्र पढ़ा था। गन्धर्व सेन को अपने वैभव का बड़ा गर्व था। इस कारण वह पद्मावती का विवाह किसी से नहीं करता था। एक दिन मदन संतप्त होकर पद्मावती ने हीरामन से कहा—'हीरामन सुनो, दिन-दिन मुझको मदन अधिक सताता है। पिता मेरा विवाह नहीं करवाते और डर के मारे माँ भी कुछ नहीं कह सकतीं। देश-देश के वर मेरे लिये आते हैं; परन्तु पिता उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते।' हीरामन ने कहा—'यदि तुम्हारी आज्ञा है तो देश-देशांतर घूमकर मैं तुम्हारे योग्य वर खोजूंगा। जब तक मैं लौटकर नहीं आता, तब तक धैर्य धारण करो।' कोई दुर्जन इस बात को सुन रहा था। उसने राजा से सारी बात कह दी। राजा ने सुए को मार डालने की आज्ञा दी। परन्तु जब तक मारने वाला वहाँ आ सके, रानी ने उसे छिपा दिया। नौकर कह सुनकर लौट गए; परन्तु हीरामन ने कहा—'रानी, यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो अब 'वन' जाऊँ। जब राजा नाराज हो गये हैं तो यहाँ रहने में कुशल नहीं है।' रानी ने उसे उड़ जाने दिया।

हीरामन उड़ गया। वह जंगल में गया। वहाँ पर उसे बहुत से पक्षी मिले। उन्होंने उसका आदर किया। वह उनके साथ बड़े सुख से रहने लगा। एक दिन वहाँ एक व्याध आया। हीरामन उसके जाल में फँस गया। बहेलिए ने उसे झावे में रख लिया, और ले गया।

चित्तौड़ में चित्रसेन नामक राजा राज्य करता था। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रत्नसेन रखा गया। ज्योतिषियों ने उसके जन्म लेते ही उसे बतलाया कि यह बड़ा सौभाग्यवान है। यह पद्मावती से विवाह करेगा और सिंहलद्वीप में जाकर सिद्ध बनेगा।

चित्तौड़ का एक बनिया सिंहलद्वीप व्यापार करने के लिए गया। एक गरीब ब्राह्मण भी किसी से ऋण लेकर उस बनिये के साथ गया। सिंहलद्वीप

में जाकर उस ब्राह्मण ने देखा कि वहाँ बहुत बड़ा बाजार लगा हुआ है और सभी चीजें ऊँचे दामों की हैं। इस कारण वह बड़ा निराश हो उठा। इतने में वह व्याध हीरामन को ले आया। ब्राह्मण उसके सोने जैसे रंग को देखकर विमोहित हो गया। उसने तोते से पूछा—"तुझ में गुण भी है या तू निरगुण ही है।" हीरामन ने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मण और पण्डित दोनों हूँ। जब इस पिंजड़ के बाहर था तो मेरे पास सभी गुण थे; परन्तु जब बन्दी बना हुआ हूँ, तब तो कोई भी गुण नहीं है।" ब्राह्मण ने उसे खरीद लिया और चित्तौड़ ले आया।

चित्तौड के राजा चित्रसेन की मृत्यु हो चुकी थी और रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। उसके दरबार में एक दिन यह बात चली कि सिंहल से कुछ बनिये आये हैं, वे विचित्र-विचित्र वस्तुएँ लाए हैं, जिनमें एक ब्राह्मण एक अत्यन्त सुन्दर तोता लाया है। राजा ने अपने नौकरों को भेजकर पंडित को बुलवाया। दरबार में आकर हीरामन ने कहा मेरा नाम हीरामन है, मैं तुम्हारी भेंट पद्मावती से करवा दूँगा और वहीं पर तुम्हारी सेवा करूँगा। रत्नसेन ने यह सुनकर उसे मोल ले लिया।

थोड़े दिन बीतने पर एक दिन राजा शिकार खेलने गए हुए थे, नागमती, जो कि रत्नसेन की पटरानी थी, ने हीरामन से पूछा, 'मेरे स्वामी के प्रिय, यह बताओ कि क्या मुझसे अधिक सुन्दर भी कोई स्त्री तुमने इस संसार में देखी है? क्या तुम्हारे सिंहलद्वीप की पद्मिनी स्त्रियाँ मुझसे अधिक सुन्दर हैं?' पद्मावती के रूप का स्मरण कर हीरामन हँसा और बोला, 'वास्तव में सुन्दर वह है जिसे उसका प्रिय प्यार करे। और यदि वैसे पूछती हो तो सिंहल की पद्मिनियों और तुममें कोई भी तुलना नहीं है। तुममें और उनमें दिन और रात का अंतर है। वे सोने की बनी हैं और सुगन्ध से भरी हुई हैं!' नागमती ने जब यह उत्तर सुना तो उसे बड़ी चिन्ता यह हुई कि रत्नसेन से यह तोता अगर यह बात कह देगा तो वह उसे छोड़कर सिंहल की ओर उसे प्राप्त करने के लिए चल देगा। इस नाते उसने अपनी धाय को वह तोता मार डालने के लिए दे दिया। धाय

उसे ले गई, किन्तु यह सोचकर कि यह तोता राजा का प्यारा है और जिसे स्वामी चाहता हो उसे मारना नहीं चाहिए उसने उसे नहीं मारा और छिपा लिया। जब रत्नसेन शिकार खेलकर लौटे तो उन्होंने हीरामन की खोज की। नागमती ने सभी बात सच-सच बता दी। राजा को इस पर बड़ा क्रोध आया। नागमती धाय के पास दौड़ी हुई गई। धाय ने तोता दे दिया। रानी ने वह तोता राजा को लाकर दे दिया।

राजा ने तोते से सत्य बात पूछी। तोते ने सिंहल की बड़ी प्रशंसा करते हुए गन्धर्व सेन का परिचय दिया और कहा कि उसकी कन्या पद्मावती अत्यंत सुन्दर है। राजा ने ज्योंही यह सुना उसके मन में प्रेम जाग गया। उसने उसका नखशिख पूछा।

हीरामन ने कहा, राजा, उसका शृङ्गार क्या वर्णन करूँ ? वह उसी पर शोभा देता है। उसके बाल कस्तूरी रंग के घुंघराले हैं। माँग लाल रंग की है और ललाट द्वितीया के चाँद की तरह है। इसी प्रकार हीरामन ने उसका सारा नखशिख बताया।

राजा इस नखशिख को सुनते ही मुरझा गया। वह बेहोश हो गया। उसके मुख से बस त्राहि त्राहि का शब्द भर निकलता था। राजा के कुटुम्बी परिजन सभी आ गए। परन्तु किसी की भी समझ में कुछ नहीं आता था। जब राजा को होश आया तो वह रोने लगा। सबने उसे समझाया। परन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। हीरामन ने भी समझाया, 'राजा मन में धैर्य धरो और विचार करो। प्रीति करना अत्यन्त कठिन है। वह सिंहल का पथ अगम है। वहाँ जाना बड़ा कठिन है। वहाँ योगी सन्यासी ही जा पाते हैं। तुम भोगी व्यक्ति हो, तुम्हारा वहाँ जाना अत्यन्त कठिन है।' राजा ने ज्योंही यह बात सुनी, वह जाग सा पड़ा। उसने शीघ्र ही सिंहल यात्रा का निश्चय कर लिया।

राजा ने राज्य छोड़ दिया और वह योगी हो गया और चल दिया। रत्नसेन सात समुद्र पार करके सिंहलद्वीप पहुँच गया। हीरामन उसे एक जगह टिकाकर पद्मावती के पास गया। पद्मावती काम से तड़प रही थी।

इसी व्यथा के बीच हीरामन पहुँच गया। पद्मावती को ऐसा लगा मानो उसमें प्राण आ गए हों। रानी उसे गले लगाकर रोई और उससे कुशल पूछी। हीरामन बोला, 'रानी, तुम युग युगों तक जीती रहो। मैं यहाँ से वन में उड़ कर गया। वहाँ पर एक व्याध ने मुझे पकड़ लिया और एक ब्राह्मण के हाथों बेच दिया। ब्राह्मण मुझे जम्बू द्वीप ले गया। वहाँ चित्रसेन का पुत्र रत्नसेन चित्तौड़ में राज्य कर रहा था। वह देश बड़ा ही वैभववान एवं सुन्दर है। रत्नसेन में बत्तीसों शुभ लक्षण हैं। उसने मुझे ले लिया। उसे देखकर मेरी इच्छा हुई कि वह तुम्हारे योग्य है, इस कारण तुम्हारा वर्णन मैंने उससे किया। तुम्हारा वर्णन सुनते ही उसके अन्दर प्रेम की चिनगी पड़ गई। वह तुम्हारे लिए राज्य छोड़ कर भिखारी हो गया। वह सोलह हजार चेलों के साथ योगी बनकर आया है और महादेव की मढ़ी में है।' यह सुनकर पद्मावती के मन में अभिमान हुआ। योगी से प्रेम करने को वह अपमान समझती थी। हीरामन फिर बोला, 'रानी, तुम्हारे विरह में उसने अपनी कंचन जैसी काया जलाकर भस्म कर दी है।' यह सुनकर रानी के मन में दया उत्पन्न हुई और काम भी जागा। वह बोली, 'यदि वह योगी अब मर जायगा तो यह हत्या अब मुझे ही लगेगी। अब मैं बसन्त पूजा के बहाने वहाँ जाकर उससे मिलूँगी।' यह सुनकर हीरामन प्रसन्न वदन वहाँ से उड़कर रत्नसेन के पास गया और उसका सन्देश उसने उसे सुना दिया।

बसन्त की श्री पंचमी को पद्मावती महादेव की पूजा के लिए सखियों के साथ वहाँ गई। पद्मावती ने महादेव की पूजा करते हुए कहा 'देवता, मेरी सारी सखियों का विवाह हो गया है परंतु अभी तक मेरे लिए वर नहीं मिलता। मेरी इच्छा पूरी करो और मुझे एक वर मिला दो।' इसी समय एक सखी हँस कर बोली, 'रानी, यह तमाशा तो देखो। पूर्व द्वार पर बहुत से योगी आये हुए हैं। उनमें एक गुरु कहलाता है वह बत्तीस लक्षणयुक्त राजकुमार प्रतीत होता है।' यह सुनकर पद्मावती वहाँ गई। उसको देखते ही राजा बेहोश हो गया। पद्मावती ने उसके शरीर पर चन्दन लगाया। एक क्षण के लिए तो राजा अवश्य जागा परन्तु शीघ्र ही ठंडक पाकर और गहरी नींद में सो गया।

तब रानी पद्मावती ने उसके हृदय पर चन्दन से यह लिखा कि जोगी, तू भीख लेना नहीं सीखा है। जब घड़ी आई तब तू सो गया। यह लिखकर पद्मावती लौट गई। रात में उसने स्वप्न में देखा कि चन्द्रमा का उदय पूर्व से हुआ और सूर्य का पश्चिम से। फिर सूर्य चाँद के पास चला आया और चाँद और सूर्य दोनों का मिलन हो गया है और हनुमान ने लंका लूट ली। सखियों से जागने पर उसने सपने का अर्थ पूछा। सखियों ने कहा तुम्हें वर प्राप्त होने वाला है।

पद्मावती के चले जाने पर रत्नसेन जागा। वह पद्मावती को गया हुआ देखकर रोने लगा और जल मरने का निश्चय करने लगा।

उसी समय वहाँ पर महादेव एवं पार्वती पहुँच गए। उन्होंने चिंता देखकर रत्नसेन से आत्म-हत्या और योग नष्ट करने का कारण पूछा। राजा ने संक्षेप में अपनी व्यथा बतलायी। पार्वती के हृदय में उसे सुन कर दया आ गई। वह अप्सरा के समान सुन्दर रूप धारण कर बोली, 'राजकुमार मेरी बात सुनो। मुझ जैसी सुन्दर और कोई स्त्री नहीं है। इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेज दिया है। यदि पद्मावती गई तो जाने दो। तुम्हें अप्सरा मिल गई।' रत्नसेन ने कहा, 'मेरा प्रेम तो एक से है, दूसरी से मुझे कुछ भी मतलब नहीं है।' तब गौरी ने महेश से कहा, 'इसका प्रेम सचमुच बड़ा गहरा है। तुम इसकी रक्षा करो।' इतने में रत्नसेन को महादेव का वास्तविक रूप ज्ञात हो गया। वह रोने लगा। उसको ढाढ़स बँधाते हुए महादेव ने कहा, 'रोओ मत। जैसा तुम्हारा शरीर नौ पौरी का है उसी प्रकार यह गढ़ भी है। दसवें द्वार तक इसमें भी चढ़ना पड़ेगा। जो दृष्टि को उलट कर लगाता है, वही उसे देख पाता है। वहाँ वही जा सकता है।'

इस सिद्धि गुटका को पाकर राजा एकाएक महल में घुस पड़ा। गन्धर्वसेन को खबर मिली। उसने अपने नौकर भेजे। नौकर से रत्नसेन ने कहा कि मैं राजा की कन्या पद्मावती का भिखारी हूँ। यदि वह मुझे दे दी जाय तो मैं लौट जाऊँगा। नौकरों ने यह बात राजा गन्धर्वसेन से कही। गन्धर्वसेन को यह सुनकर बड़ा क्रोध हुआ।

रत्नसेन उत्तर की प्रतीक्षा में दिन बिताने लगा। उसने एक पत्र हीरामन के हाथ पद्मावती के पास भेजा। पद्मावती ने उत्तर के रूप में अपने प्रेम की दृढ़ता का सन्देश भेजा। पद्मावती का सन्देश सुनकर रत्नसेन प्रसन्न-सा हो उठा।

गन्धर्वसेन ने अपने मन्त्रियों की सलाह ली। सब ने रत्नसेन को बन्दी बनाने की सलाह दी। वह बन्दी बना लिया गया। इधर पद्मावती बड़ी दुखी थी। वह एक बार बेहोश हो गई। हीरामन सुआ वहाँ पर लाया गया। उसकी आवाज सुनकर उसे होश आया और पद्मावती ने एक सन्देश रत्नसेन के लिए भेजा।

रत्नसेन बन्दी बना कर गन्धर्वसेन के पास लाया गया। वहाँ पर गन्धर्व-सेन के पूछने पर उसने अपनी व्यथा सच-सच बतला दी। इसे सुनकर महादेव का आसन भी डोल उठा। महादेव और पार्वती भाट-भाटिन का रूप धर कर वहाँ आए। रत्नसेन आसन जमाए 'पद्मावती-पद्मावती' जप रहा था। इतने में सुए ने आकर पद्मावती का सन्देश सुनाया। महादेव भी आगे बढ़े। उन्होंने राजा को समझाया और रत्नसेन का सच्चा परिचय दिया। हीरामन ने भी साक्षी दी। तब विवाह का निश्चय कर रत्नसेन का तिलक किया गया और विवाह हो गया।

उधर नागमती के दिन रत्नसेन के विरह में बड़े दुख में बीत रहे थे। नाग-मती रोती फिर रही थी। एक दिन आधी रात के समय एक पक्षी को उस पर दया आ गई; उसने उसकी कथा सुनी। नागमती ने अपने विरह की कहानी उसे सुनाते हुए उससे रत्नसेन के पास तक उसका सन्देश ले जाने की प्रार्थना की। पक्षी ने उसे स्वीकार कर लिया।

पक्षी सन्देश को लेकर चला। सिंहल में बड़ी आग उठी। सब जगह आग लगी हुई देखकर सारे पक्षी तीर के एक वृक्ष पर आकर बैठ गए। उसी पेड़ के नीचे रत्नसेन जो कि वहाँ शिकार खेलने आए थे बैठ गए। यह पक्षी भी उसी पेड़ पर जाकर बैठा। उन पक्षियों में आपस में बातें होने लगीं। इस पक्षी ने

अपना परिचय दिया और नागमती की कथा पक्षियों को सुनाई। राजा नीचे बैठा सब कुछ सुन रहा था। उसने पक्षी से फिर सारी बात पूछी और कहा, 'पक्षी, मेरी आँख सदा नागमती की राह पर ही लगी रहती है परन्तु कोई भी आकर उसका सन्देश नहीं सुनाता।' पक्षी ने नागमती की विरह कथा फिर कह सुनाई और वह उड़कर चला गया। रत्नसेन उसे पुकारता रह गया परन्तु वह न लौटा। रत्नसेन को अब चित्तौड़ की याद आ गई। वह एक बरस तक चित्तौड़ को भूला हुआ था। वह उदास रहने लगा। गंधर्वसेन उसे उदास देखकर उसके पास आया और बोला, "तुम मेरे प्राणों के समान हो, तुम्हें मैंने अपनी आँखों में रहने को जगह दी है। यदि तुम उदास हो जाओगे तो यह महल किसका होकर रहेगा ?"

रत्नसेन ने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए कहा, "मैं काँच था, आप ही ने मुझे कंचन बना दिया है परन्तु आज मेरा परेवा पत्र लेकर आया है। मेरा राज्य मेरा भाई ले रहा है। उधर दिल्ली सुल्तान भी हमला करने वाला है। इस कारण मुझे विदा दी जाय।" गंधर्वसेन ने रत्नसेन की बात मानली। सुमुहूर्त में वहाँ से अगणित द्रव्य लेकर रत्नसेन पद्मावती के साथ चला।

समुद्र में जबकि आधा रास्ता भी तय नहीं हो पाया था, एक बड़ी जोर की आँधी उठी। इसमें राजा के जहाज अपना रास्ता भूल गए। विभीषण का एक केवट राक्षस मछलियों का शिकार करते-करते वहाँ आ गया था। राजा ने आफत में पड़कर उससे अपना जहाज ठीक रास्ते पर लगा देने की प्रार्थना की। राक्षस ने कपट रूप से उसकी विनय स्वीकार की और उसे एक अत्यन्त गहरे और भवरों से भरे सागर में ले गया। वहाँ राजा का जहाज डूब गया।

बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी वहाँ पर समुद्र की बेटी जिसका नाम लक्ष्मी था खेल रही थी। उसने पद्मावती को देखा और वह उसे होश में लाई। होश में आने पर पद्मावती ने पूछा कि वह कहाँ है और रत्नसेन कहाँ है ? लक्ष्मी ने कहा, मैं तुम्हारे प्रिय को नहीं जानती। मैंने तुम्हें तो किनारे पर ही पाया है।' पद्मावती यह सुनकर सती होने का यत्न करने लगी।

लक्ष्मी ने उसे समझाया और रत्नसेन को ढूँढ़ने का आश्वासन दिया। उसने अपने पिता से यह सब बात कही। पिता ने पुत्री को आश्वासन दिया। आश्वासन पाकर लक्ष्मी समुद्र तट पर जाकर बैठ गई। वहाँ पर रत्नसेन आया। उसने अपने को पद्मावती बतलाया परन्तु रत्नसेन ने उसे पहचान लिया, वह पद्मावती न थी। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती के पास ले गई, बिछुड़े हुए प्रेमी मिल गए। वहाँ से वे जगन्नाथपुरी होते हुए अपने देश की ओर बढ़े।

जब राजा चित्तौड़ के निकट पहुँच गया तो नागमती को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु पद्मावती को देखकर उसमें सपत्नी की ईर्ष्या जाग उठी। उसने उसे दूसरे महल में उतारा। दिन भर राजा दान-पुण्य करता रहा। रात में वह नागमती से मिला नागमती का जीवन फिर हरा-भरा हो उठा।

नागमती को प्रसन्न देखकर पद्मावती के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह एक दिन नागमती से लड़ गई। दोनों में हाथापाई होने लगी, जब रत्नसेन ने यह सुना तो वह वहाँ पहुँचा। उसने समझाया—तुम दोनों का प्रिय मैं हूँ। जिस प्रकार रात दिन दोनों बराबर होते हैं उसी प्रकार तुम मेरे लिए हो।' दोनों रानियाँ यह सुनकर सन्तुष्ट हो गईं।

नागमती के नागसेन और पद्मावती के पद्मसेन नाम के पुत्र हुए। ज्योतिषियों ने बतलाया कि दोनों बड़े भाग्यवान हैं।

रत्नसेन के दरबार में राघव चेतन नामक एक बड़ा पंडित था। उसे यक्षिणी इष्ट थी। एक दिन अमावश थी। राजा ने पूछा, 'दूज कब है ?' राघव के मुँह से निकला—'आज'। पंडितों ने कहा—'महाराज कल है।' इस पर विवाद उठ खड़ा हुआ। शाम को राघव ने यक्षिणी के बल से चाँद दिखला दिया। उस समय तो राजा ने बात मान ली। दूसरे दिन फिर द्वितीया का चाँद दिखलाई पड़ा। राजा को राघवचेतन पर बड़ा क्रोध आया। उसने राघवचेतन को अपने राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी।

जब पद्मावती ने यह सुना तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। ऐसा गुनी आदमी निकाला जा रहा था, यह उसे अच्छा नहीं लग रहा था। वह झरोखे पर आई।

उसी के नीचे से राघवचेतन जा रहा था। उसने पद्मावती की ओर देखा। पद्मावती ने अपना एक कंगन उतार कर उसकी ओर फेंका और मुस्करा दिया। राघवचेतन इसे देखकर बेहोश हो गया। सखियाँ उसे होश में लाईं। वह उस कंगन को लेकर चला गया।

वह दिल्ली गया। दुनिया रूपी दूध में दिल्ली मलाई की तरह थी। वहाँ वह अलाउद्दीन से मिला और उसने पद्मिनी के सौन्दर्य की चर्चा की। अलाउद्दीन ने कहा, 'ऐसी पद्मिनी स्त्रियाँ कहाँ मिलती हैं ?' उसने कहा, 'ये जम्बू द्वीप में नहीं मिलतीं। ये सिंहलद्वीप में मिलती हैं।'

फिर उसने रत्नसेन की पद्मावती का नखशिख वर्णन किया। उसे सुनकर शाह चेतना खो बैठा। जब उसे होश हुआ तो उसने पद्मावती को शीघ्र भेज देने के लिए रत्नसेन के पास एक पत्र अपने दूत द्वारा भेजा और राघवचेतन को धन एवं सम्मान दिया।

जब रत्नसेन ने वह पत्र पढ़ा तो अतिक्रोधित हुआ। उसने दूत को यों ही लौटा दिया। दूत लौटकर अलाउद्दीन के पास गया। दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ पूरी तरह से होने लगीं। अलाउद्दीन चित्तौड़ की ओर बढ़ा।

अलाउद्दीन चित्तौड़ पहुँचा। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सौ-सौ मन के गोले रत्नसेन के गढ़ पर गिरते थे परन्तु वह डटा हुआ था। उसने अपने भोगविलास को भी नहीं छोड़ा ? एक दिन एक वैश्या को अलाउद्दीन के पक्ष के एक व्यक्ति ने तीर मार दिया। वह मर गई। इससे राजपूतों को बड़ा क्रोध आया। वे जी जान से लड़ने लगे। कई वर्षों तक यह युद्ध चलता रहा। अलाउद्दीन को खबर मिली कि दिल्ली पर लोग हमला करने वाले हैं। उसने यह भी सोचा कि अगर वह इस समय चित्तौड़ जीतेगा तो पद्मावती जलकर सती हो जायेगी। इस बार संधि करना उसे उचित दिखाई पड़ा। अलाउद्दीन ने अपना दूत रत्नसेन के पास भेजा। शर्त यह रखी कि रत्नसेन पद्मावती न दे और साथ ही साथ चन्देरी भी ले ले परन्तु समुद्र ने उसे जो पाँच रत्न दिये थे, उन्हें दे दे। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन रत्नसेन के यहाँ अलाउद्दीन प्रीति भोज के लिए गया।

राजा ने बड़े अच्छे व्यंजन बनवाये थे। बादशाह ने भोजन किया और वह चित्तौड़ गढ़ देखने लगा। देखते-देखते वह रनिवास पहुँचा, वहाँ पर रत्नसेन की दासियाँ थीं। अलाउद्दीन ने उनको स्वरूपवान देखकर समझा कि इन्हीं में कोई पद्मावती है। उसने राघवचेतन से पूछा। राघव ने उसे बताया कि वे तो दासियाँ हैं, पद्मावती नहीं।

भोज के पश्चात् गोरा बादल ने रत्नसेन को समझाया कि अलाउद्दीन का विश्वास करना उचित नहीं। परन्तु रत्नसेन ने बात न मानी। एक जगह बैठकर वह अलाउद्दीन के साथ शतरंज खेलने लगा। वहाँ पर एक बड़ा दर्पण रखा था। दर्पण में एकाएक पद्मावती का प्रतिबिंब दिखाई पड़ा। अलाउद्दीन उसे देखते ही बेहोश हो गया।

जब अलाउद्दीन होश में आया तो राजा उसे अपने गढ़ के दरवाजे तक पहुँचाने आया। दरवाजे पर आते ही अलाउद्दीन ने उसे बाँध लिया और दिल्ली ले गया।

कुम्भलनेर का राजा देवपाल रत्नसेन का शत्रु था। जब उसने यह सुना, तो पद्मावती को फुसलाने के लिये अपनी, एक दूती भेजी। परन्तु पद्मावती का रत्नसेन से इतना दृढ़ प्रेम था कि उसने दूती को अपमानित कर निकाल दिया।

बादशाह अलाउद्दीन ने भी एक वेश्या को दूती बनाकर भेजा परन्तु वह भी पद्मावती को फुसलाने में असफल रही।

पद्मावती अपने चारों ओर यह जाल बिछा हुआ देखकर गोरा बादल के पास गई और उनसे अपनी कथा सुनायी। गोरा और बादल दोनों को दया आ गई। उन्होंने रत्नसेन को छुड़ा लाने का वचन दिया।

बादल का उसी दिन गौना आया था। माँ ने उसे जाने से रोका। परन्तु वह न माना। पत्नी ने भी रोका परन्तु उसने अनसुनी कर दी और चला गया।

सोलह सौ पालकियाँ सँवारी गईं। उनमें हथियारों से लैस राजपूत सरदार बैठाये गये। उनमें एक पालकी पद्मावती की भी बनी। उसमें एक लोहार बैठाया गया। इन पालकियों के साथ गोरा बादल यह कहते हुए चले कि पद्मावती अलाउद्दीन के पास जा रही है।

वे दिल्ली पहुँचे और अलाउद्दीन से प्रार्थना के स्वर में बोले कि पद्मावती कह रही है कि "मैं तो दिल्ली आ गई हूँ, परन्तु मेरे पास चित्तौड़ की कुन्जियाँ हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो उसे रतनसेन को सौंप दूँ।" अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार कर लिया। वह लोहार वाला विमान रतनसेन के पास गया। उस लोहार ने रतनसेन के बंधन काट दिये और बादल उसे लेकर चित्तौड़ की ओर भागा। गोरा और अलाउद्दीन की सेना में वहीं पर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में गोरा की मृत्यु हो गई।

रतनसेन चित्तौड़ आकर पद्मावती से मिला। पद्मावती ने बादल की भुजाओं की पूजा की। रात में पद्मावती ने देवपाल की बात रतनसेन से कही।

देवपाल की चाल सुनकर रतनसेन को बड़ा क्रोध आया। वह उससे लड़ने चल पड़ा। युद्ध में रतनसेन को देवपाल ने मार डाला।

रतनसेन की मृत्यु पर गढ़ बादल को सौंप दिया गया।

पद्मावती एवं नागमती भी राजा के साथ सती हो गईं। उनके सती होने के बाद अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर हमला किया। बादल लड़ा परन्तु हार गया। सारी स्त्रियाँ जौहर में जल गईं और पुरुष संग्राम में खेत रहे। चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। अलाउद्दीन पद्मावती को न पा सका।

कहानी-कला—कहानी-कला के विकास में निम्न बातों का अध्ययन आवश्यक होता है—

१. कथावस्तु
२. पात्र
३. चरित्र चित्रण
४. कथोपकथन
५. शैली
६. उद्देश्य

इस कसौटी पर पद्मावत की कहानी कला को कसने के पूर्व हमें यह जानना चाहिए कि मध्ययुग में, आधुनिक काल की भाँति, कहानी कला का

विकास इस उच्च स्तर पर नहीं हुआ था । इस युग में पाई जाने वाली प्रेमाख्यानक कहानियों का प्रमुख उद्देश्य उपदेश देना ही होता था । ये उपदेश भी साधारणतया तीन प्रकार के होते थे ।

१. प्रेम विषयक

२. सामान्य

३. इस्लाम अथवा यों कहिये—धर्म सम्बन्धी ।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए अब हम पद्मावत की कहानी कला को उक्त कसौटी पर कसते हैं । (कथा) वस्तु—पद्मावत की कथावस्तु प्रमुख रूप से प्रेमविषयक ही है । धर्मगत बातें गौण होकर आई हैं । इसे हम यों भी कहेंगे कि पद्मावत की कथा वसुन्धरा प्रेम की धुरी पर घूमती है । इस ग्रंथ में रत्नसेन और पद्मावती की कथा है । वस्तुत: इसमें प्रेम ही सारी कथा का मूल है । प्रेम के उद्दात्त और अखिल सृष्टि व्यापी एवं लोकोत्तर स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये इसकी कथा वस्तु का निर्माण किया गया है । कथा के पूर्वार्द्ध में रत्नसेन-पद्मावती, नागमती और सुआ—नायक नायिका, प्रति-नायिका और दूत के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है । उत्तरार्द्ध की सारी कथा प्रेम-परीक्षा के उपकरण के रूप में आती है । लक्ष्मी परीक्षा लेती है रत्नसेन सफल होता है, अलाउद्दीन परीक्षा लेता है पद्मावती को विजय मिलती है । आदि से अंत तक कथानक प्रेम रंग में सराबोर है । प्रेम का स्वरूप लौकिक होते हुए भी पारलौकिक में गति पाता है । देखिये ! अंत में पद्मावती द्वारा कहे गए इन शब्दों से क्या ध्वनित होता है—

> **औ जो गांठ कंत तुम जोरी ।**
> **आदि अन्त लहि जाय न छोरी ।।**
> **यह जग काहि जो अछहिन आथी ।**
> **हम तुम नाथ दुहूँ जग साथी ।।**

'पद्मावत' की संवेदना ही यह है कि प्रेम जीवन का सार है । उसके सम्मुख स्वर्ग भी झूठा है । प्रेम सर्वोपरि है ।

पद्मावत की कथावस्तु घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान ही कही जायगी। रत्नसेन और पद्मावती का चरित्र ही कथावस्तु का मेरुदण्ड है। इन दोनों के चरित्र के विकास के निमित्त ही घटनायें सहायक रूप में उपस्थित होती हैं। उनका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। कथानक के घटना-प्रधान न होकर चरित्र प्रधान होने का एक प्रमाण और यह है कि यदि लेखक का ध्यान कथानक को घटना प्रधान करने पर रहा होता तो वह इतने खंडों का निर्माण कर कथा को अनावश्यक विस्तार न देता, अपितु थोड़े में ही इति पर पहुँच जाता। परन्तु उसके विस्तार को देखते हुए हमें ऐसा ही प्रतीत होता है कि लेखक का ध्यान घटनाओं पर केन्द्रित न रह पात्रों के चरित्रों पर केन्द्रित रहा है।

पद्मावत की कथावस्तु का पर्यवसान दुःख में होता है इस नाते हम उसे सुखान्त न कह दुखान्त ही कहेंगे। अलाउद्दीन तथा देवपाल के साथ पाठकों को कोई सहानुभूति नहीं होती। मध्य युग के अन्य प्रेमाख्यानक काव्य-ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ की कथावस्तु में भी लेखक का ध्यान इस बात की ओर नहीं जाता कि कौनसी घटना को किस प्रकार प्रस्तुत करने से उसका कैसा प्रभाव होगा। वह अपनी बात कहने में घटनाओं को अपनी रुचि के अनुसार मोड़ता रहता है पाठकों को चाहे वे स्वाभाविक जान पड़ें, चाहे अस्वाभाविक। उसे अपनी बात कहनी है और वह कहेगा। जायसी को पद्मावती और रत्नसेन के माध्यम से प्रेम का उज्ज्वलतम स्वरूप प्रस्तुत करना था। वे उसमें भूले हुए थे। इसलिए घटनाओं की ओर स्वतन्त्र दृष्टि डालने का उन्हें अवकाश न मिल सका; अथवा यों कहिये कि उन्होंने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी।

सम्पूर्ण कथावस्तु प्रेम से आरम्भ होती है, प्रेम-चर्चा में उसका विकास होता है और प्रेम का प्रौढ़तर रूप प्रस्तुत करने में उसका पर्यवसान।

अपने युग के अन्य प्रेमाख्यानक काव्यों की भाँति जायसी ने भी अपनी कथावस्तु का निर्माण राज दरबारों से किया है। नायक रत्नसेन चित्तौड़ का राजा है और नायिका पद्मावती सिंहल की राजकुमारी।

उस युग की परम्परानुसार पद्मावत की कथावस्तु का भी प्रारम्भ और अन्त कथा में नहीं हुआ है। आरम्भ में एक स्तुति खण्ड है और अन्त में कवि अपनी बात कहने लगा है, जिसके लिये उसने इस ग्रन्थ का निर्माण किया है।

पद्मावत में भी पशु-पक्षी एवं अमानुषिक शक्तियाँ यत्रतत्र भाग लेती हुई दिखाई पड़ती हैं। पद्मावती का हीरामन, नागमती का पक्षी, राक्षस, शिव-पार्वती और लक्ष्मी इसी रूप में वर्णित हैं। वस्तुतः इस ग्रंथ में सुआ ही सारे प्रेम-व्यापार के मूल में है। यदि सुआ न होता तो रत्नसेन के हृदय में प्रेम का प्रारम्भ ही न होता। इसी कारण जायसी ने अन्त में हीरामन के महत्व को घोषित किया है—

> **गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा।**
> **बिना गुरु को निरगुन पावा॥**

सम्पूर्ण कथावस्तु प्रेम के ही इर्द-गिर्द घूमती है। जीवन की प्रमुख समस्या 'रोटी' को इसमें कहीं स्थान नहीं दिया। कवि की यह उपेक्षा उसके कथानक को निर्बल बनाती है। कथन में व्यापकता नहीं आ पाती। ऐसा कवि ने क्यों किया कुछ समझ में बात नहीं आती। सम्भव है यह उस युग में कोई बड़ी समस्या न रही हो।

'पद्मावत' की कथावस्तु को हम प्रमुख रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं—१. पूर्वार्द्ध षट्ऋतु वर्णन खंड तक और २. उत्तरार्द्ध नागमती वियोग खंड से आगे तक। पूर्वार्द्ध में प्रेम की पीर एवं प्रेम-पथ की यात्रा का वर्णन है और उत्तरार्द्ध में प्रेम-परीक्षा की जाती है। उत्तरार्द्ध में घटनाएँ अधिक हो गई हैं। इस नाते वह भागों-उपभागों में बँट जाता है। चरित्रों के विकास में कथानक कहीं-कहीं डगमगाता-सा नजर आता है और कहीं-कहीं अत्यन्त दृढ़ रूप में भी। पद्मावती के विवाहोपरांत रत्नसेन का चरित्र हलका दिखाया गया है। पद्मावती का चरित्र वहाँ दृढ़तर है। कवि ने जौहर खंड का निर्माण कर अपने काव्य को अमर बना दिया है। प्रेम का जो उद्दात्त स्वरूप हमें वहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस दृष्टिकोण से पद्मावती का कथानक अत्यन्त सफल

है। वैसे सम्पूर्ण कथावस्तु को हम गठी हुई और सर्वथा सशक्त नहीं मान सकते। उसमें अनेक कमजोरियाँ भी हैं। कवि का सन्तुलन सर्वत्र ठीक नहीं रह सका है। चरित्रों का विकास स्वाभाविक ढंग से नहीं हुआ है। मानवीय शक्तियाँ अपने प्राकृतिक रूप में सर्वत्र नहीं आई हैं। एक वाक्य में हम यह कहेंगे कि सारी कथावस्तु प्रेमरस से सराबोर है और कवि को अपनी बात कहने में पर्याप्त सफलता मिली है।

पात्र और चरित्र-चित्रण—पद्मावत के पात्रों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं—१. अलौकिक और २. लौकिक।

अलौकिक पात्रों में शिव, पार्वती तथा लक्ष्मी आती हैं। शिव और पार्वती को कवि ने अलौकिकतामय दिखाया है तथा लक्ष्मी को अलौकिक चरित्र स्वीकार करते हुए भी लौकिक रूप में चित्रित किया है। कवि के शब्दों में ही लक्ष्मी का लौकिक रूप देखिये—

लछमी चंचल नारि परेवा।
जेहि सत होइ छरै कै सेवा॥
रतनसेन आवै जेहि घाटा।
अगमन होइ बैठी तेहि बाटा॥
औ पदमावति कै रूपा।
कीन्हेसि छाँह जरै जहँ धूपा॥
देखि सो कँवल भँवर होइ धावा।
साँस लीन्ह वह वास न पावा॥
निरखत आय लक्ष्मी दीठी।
रतनसेन तब दीन्हीं पीठी॥

तिस पर भी—

पुनि धनि फिर आगे होइ रोई।
पुरुष पीठि कस दीन्ह निछोई॥

रत्नसेन को विश्वास दिलाती है—

हौं रानी पदमावति रतनसेन तू पीउ।
आनि समुद महँ छाड़ेउ अब रोवौं देइ जीउ॥

इस प्रकार लक्ष्मी एक लौकिक स्त्री की भाँति हमारे सामने आती है।

पार्वती और शिव क्रमश: रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेकर उसके सहायक के रूप में चित्रित हैं। देखिये रतनसेन के सिंहल पहुँचने पर भवानी एक सुंदर अप्सरा का रूप धारण कर कितनी चतुराई से उसके प्रेम की परीक्षा ले रही है:—

सुनहु कुँवर मोसौं यह बाता।
जस मोहिं रंग न औरहि राता॥
औ विधि रूप दीन्ह है तोका।
उठा सो सबद जाइ सिव लोका॥
तब हौं तोपहँ इन्द्र पठाई।
गइ पदमिनि तैं अपछरि पाई॥

परन्तु रत्नसेन अपूर्व दृढ़ता के साथ कहता है—

भलेहि रंग अछरी तोर राता।
मोहिं दूसर सों भाव न भाता॥

इस प्रकार रत्नसेन अपनी परीक्षा में सफल होता है।

यही रत्नसेन विषम परिस्थितियों के चक्र में फँसकर जब किंकर्तव्यविमूढ़ हो जल मरने को तैयार होता है, उस समय शिव ने आकर सिद्धि गुटका दिया और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बताया। गन्धर्वसेन जब उसे शूली देने को तैयार था उस समय भी शिव ने ही उसकी रक्षा की।

अलौकिक पात्रों के रूप में ही जायसी ने राम और कृष्ण के व्यक्तित्वों को भी अन्त कथाओं के माध्यम से स्वीकार किया है।

पद्मावत में आये लौकिक पात्रों के रूप में चित्रित चरित्रों को भी हम दो वर्गों में बाँटेंगे—

१. काल्पनिक और २. प्राकृतिक।

काल्पनिक पात्रों में राक्षस आता है जिसने सिंहल से लौटते समय समुद्र में रत्नसेन को बड़ा कष्ट प्रदान किया था।

प्राकृतिक चरित्र भी दो कक्षाओं में आते हैं—

१. पशु-पक्षी।

२. मानव।

पद्मावती का हीरामन तथा नागमती का पक्षी प्रथम श्रेणी में आते हैं। इनका प्रयोग दूत रूप में हुआ। ये दोनों मानव की भाँति ही कार्य करते हैं। हीरामन पद्मावती के पथ का सहायक है और पक्षी नागमती के पथ का। पक्षी होने के नाते इनका सभी विश्वास करते हैं अपने कार्य में दोनों पूर्ण सफल हुए हैं। इसके अतिरिक्त ग्रंथ में इनका और कोई महत्व नहीं। इसी कारण पद्मावती-रत्नसेन के मिलन के पश्चात् हीरामन का क्या हुआ, हमें कुछ पता नहीं चलता।

मानव पात्रों में स्त्री और पुरुष दोनों आते हैं। पुरुषों में नायक प्रतिनायक तथा अन्य पात्र हैं और इसी भाँति स्त्री पात्रों में भी नायिका प्रतिनायिका तथा अन्य पात्र हैं। रत्नसेन नायक तथा राजकुमारी पद्मावती नायिका है। अलाउद्दीन प्रतिनायक तथा नागमती प्रतिनायिका है। शेष स्त्री पुरुष अन्य पात्रों की श्रेणी में चित्रित हैं।

नायक रत्नसेन के चरित्र में पर्याप्त दृढ़ता है। गुणों के समक्ष उसकी कमजोरियाँ बहुत थोड़ी हैं। तथा रत्नसेन सब पर विश्वास नहीं करता अपने को अधिकाधिक बुद्धि वाला समझता है। झूठ बोलता है, राजनीतिक दाँव-पेंच में कच्चा है। इसके विपरीत उसमें वीरोचित उत्साह पाया जाता है वह अपने बाहुबल पर भरोसा रखता है। प्रेम-पथ की कठिनाइयों से विचलित नहीं होता। प्रेम सम्बन्धी समस्त संकल्पों में अत्यंत ही दृढ़ है। उसमें धीरोदात्त नायक की समस्त विशेषतायें विद्यमान हैं।

प्रतिनायक के चरित्र चित्रण में भी जायसी को काफी सफलता मिली है। अलाउद्दीन के प्रति पाठकों के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न कर देने में जायसी पूर्ण समर्थ हैं।

नायिका पद्मावती राजा गन्धर्वसेन की अविवाहिता कन्या है। उसके चरित्र में भी पर्याप्त दृढ़ता और उज्ज्वलता है। देखिये रत्नसेन की सूली की आज्ञा सुनकर वह कितना दृढ़ संदेश उसके पास भेजती है।

काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा,
मरैं तो मरौं, जिऔं एक साथा।

इसी प्रकार देवपाल की दूती से वह कहती है—

रँग ताकर हौं जारौं काचा,
आपन तज जो पराएहि रांचा।

× × ×

जोबन मोर रतन जहँ पीऊ,
बलि तेहि पिउ पर जोबन जीऊ।

पद्मावती के सौंदर्य की चर्चा करना तो व्यर्थ ही है। विश्व की, वह, सर्व श्रेष्ट अनिंद्य सुन्दरी है।

प्रतिनायिका नागमती के चरित्र को भी जायसी ने खूब निखारा है। वह भी पर्याप्त सौंदर्य तथा रत्नसेन के प्रति एकनिष्ठ पवित्र प्रेम रखती है। उसके प्रेम की ऊँचाई पद्मावती भी नहीं छू पाती। कितना आदर्श और कितना निर्मल प्रेम है।—देखिए पक्षी से कैसा संदेश भेजती है—

पदमावति सौं कहेउ विहंगम,
कंत लोभाय रही करि संगम।

× × ×

अबहु मया करु करु जिउ फेरा।
मोंहि जियाउ कंत देइ मोरा॥
मोंहि भोग सों काज न बारी।
सौंह दीठि कै चाहन हारी॥

सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर तोर पाँय मोर माथ॥

परन्तु स्त्री होने के नाते नागमती और पद्मावती दोनों में पर्याप्त दुर्बलतायें भी हैं। सफलता इसी में है कि एक ही पति से दोनों प्रेम करती हैं, इस नाते उसकी मृत्यु के उपरान्त दोनों एक साथ सती हो जाती हैं।

पद्मावत के पात्रों को कवि ने सांकेतिक माध्यम या प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है परन्तु उसे इस दिशा में पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकी है। सभी पात्रों के चरित्र की दुर्बलताएँ उसे प्रतीकों के आसन से गिरा देती हैं। पद्मावती का नागमती से वादविवाद एवं रत्नसेन के प्रति एकाधिपत्य की भावना का अनुभव आदि उसकी कमजोरियाँ हैं। वह सुन्दरी है, दृढ़ प्रेमिका है, प्रथम अविवाहित तथा राजकुमारी है—यह उसके चरित्र का सबल पक्ष है। इसी प्रकार नायक राजा रत्नसेन अनेक गुणों को धारण करता हुआ भी बहुपत्नीत्व स्वीकार करने के नाते अपने प्रतीकत्व की रक्षा नहीं कर पाता। अभिप्राय यह है कि रत्नसेन जीवात्मा तथा पद्मावती परमात्मा का प्रतिनिधित्व करने में पूर्ण सफल नहीं हैं।

सुआ को गुरू का प्रतीक जायसी ने माना है, पर उसके चरित्र में गुरु के अनुकूल गम्भीरता तथा ज्ञान गरिमा का अभाव है। इस कारण यह प्रतीक भी अपने स्थान पर ठीक नहीं कहा जा सकता। नागमती दुनियाँ धन्धा होकर पद्मावती के बराबर हो जाती है। यहाँ भी कवि प्रतीकत्व की रक्षा करने में असफल है। इसी प्रकार अन्य पात्रों की भी स्थिति है।

कथोपकथन—इसमें संदेह नहीं कि 'पद्मावत' के कथोपकथन सबल-सरस तथा स्वाभाविक हैं। इस दिशा में जायसी को पर्याप्त सफलता मिली है। सबसे बड़ी विशेषता जायसी के कथोपकथन की यह है कि उनके माध्यम से ही चरित्रों का विकास हुआ है। नीचे हम कुछ ऐसे स्थलों का संकेत कर रहें हैं जो जायसी की कथोपकथन कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं और इनके द्वारा क्रमशः नागमती, रत्नसेन और पद्मावती के चरित्रों का विकाश हुआ है।

१. नागमती-सुग्रा संवाद
२. नागमती-धाय संवाद
३. रत्नसेन प्रस्थान के समय नागमती-रत्नसेन संवाद
४. नागमती ग्रौर उसकी सखी संवाद (नागमती के चरित्र का भव्य स्वरूप)
५. नागमती-पक्षी संवाद (जायसी के काव्य की काव्यात्मकता का चरमबिन्दु)
६. चित्तौड़ लौटने पर नागमती-रत्नसेन संवाद।
७. पद्मावती-नागमती संवाद (कथोपकथन का सर्वोत्कृष्ट रूप)
८. सती होने के समय नागमती के वचन।
९. रत्नसेन-सुग्रा संवाद
१०. रत्नसेन-पार्वती संवाद
११. रत्नसेन-नागमती संवाद
१२. रत्नसेन-ग्रलाउद्दीन दूत संवाद
१३. पद्मावती-सुग्रा संवाद
१४. पद्मावती-राजा संवाद
१५. पद्मावती-लक्ष्मी संवाद
१६. पद्मावती-गोरा बादल संवाद
१७. पद्मावती-देवपाल दूती संवाद

इसी प्रकार ग्रन्य ग्रनेक ऐसे स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे कवि की कथोपकथन कला का सुन्दर प्रमाण मिलेगा। कथोपकथन का सौंदर्य ही जायसी की कहानी में जान डाल देता है ग्रन्यथा पूरे काव्य में एक विचित्र सी नीरसता छाई होती। ग्रस्तु जायसी का कथोपकथन उनकी कहानी कला के विकास में ग्रपूर्व योग देने वाला कहा जायगा।

शैली—पद्मावत मसनवी शैली का एक ग्रप्रतिम ग्रंथ है, इसमें दो मत नहीं। जायसी को ग्रपनी बात कहने के लिए इससे सुन्दर ढंग उस समय कोई प्राप्य भी नहीं था। वैसे यदि हम उनकी शैली का विवेचनात्मक ग्रध्ययन करें तो प्रमुख रूप से उनके काव्य में हमें उनकी शैली के निम्न तीन रूप प्राप्त होते हैं—

१. कथोपकथन की शैली

२. वर्णनात्मक शैली

३. उपदेशात्मक शैली

अपनी शैली के इन विविध रूपों में जायसी को अपनी बात कहने में काफी सहायता मिली है। शैली की दृष्टि से काव्य में उनका विशिष्ट महत्व है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास के लिए भी शैली का पथ जायसी द्वारा तैयार किया गया था। दोहे चौपाइयों में कहे उनके वाक्य बड़े ही सरस और प्रभावोत्पादक वन पड़े हैं। चंदवरदाई का साहित्य अभी विद्वानों के वादविवाद में उलझा हुआ है। इस प्रकार उसे छोड़ देने पर जायसी ही हिन्दी के प्रथम महाकाव्यकार ठहरते हैं और उनकी शैली आदर्श शैली कही जाती है। रामचरितमानस ऐसा महाग्रंथ भी पद्मावत की शैली पर ही लिखा गया। अस्तु हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि शैली के क्षेत्र में जायसी का स्थान बड़े गौरव का है

उद्देश्य—कहानी कला के विकास का अन्तिम-बिन्दु उद्देश्य होता है। पद्मावत की कहानी कला का उद्देश्य उस युग के अन्य प्रेमाख्यानक काव्यों की भाँति प्रेम का उपदेश उपस्थित करना है। लौकिक प्रेम के माध्यम से पारलौकिक प्रेम की ओर पाठकों को उन्मुख करना यही जायसी की कहानी का प्रमुख ध्येय कहा जायगा। साथ ही कहानी के सरस और मनोरम आवरण में सूफी सिद्धान्तों को कुशलता के साथ पिरो देना भी कवि नहीं भूला है।

इस दृष्टि से अन्त में अब हम यह कहेंगे कि 'पद्मावत' की कहानी कला अपने में कुछ कमजोरियों को समेटे हुए भी काफी सफल है।

काव्य-सौन्दर्य—पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उसके अन्तरंग-वहिरंग-अर्थात् भाव-पक्ष और कलापक्ष दोनों पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी।

जहाँ तक पद्मावत के भावपक्ष का प्रश्न है जायसी ने अपनी काव्य-कुशलता का चरम विन्दु उसमें प्रविष्ठापित कर दिया है। भावपक्ष का जो भव्य-स्वरूप पद्मावत में हमें मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी प्रकार कवि का

कलापक्ष भी अत्यन्त प्रौढ़ है। वस्तुतः भावपक्ष और कलापक्ष एक दूसरे के पूरक हैं। भावपक्ष का सौन्दर्य कलापक्ष के माध्यम द्वारा ही उद्घाटित होता है। दोनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय है। एक को यदि काव्य की आत्मा कहेंगे तो दूसरे को काव्य का शरीर। दोनों के सामंजस्य से ही काव्य की स्थिति है।

भावपक्ष के तीन उपांग हैं—रागात्मक तत्व, बुद्धितत्व और कल्पना तत्व। पद्मावत में इन तीनों तत्वों का बड़ी कुशलता से प्रतिपादन किया गया है। कुछ उदाहरण लीजिये—

पदमिनि गवन हंस गए दूरी। कुंजर लाज मेल सिर धूरी॥
बदन देखि धरि चन्द समाना। दसन देखि कै बीजु लजाना॥
खंजन छपे देखि कै नैना। कोकिल छपी सुनत मधु बैना॥
पहुचहि छपी कँवल पौनारी। जाघ छपा कदली होइ बारी॥

× × ×

अनचिन्ह पिउ कापौं मनमाँहा। का मैं कहव गहब जो बाँहा॥
बारि बैस गहै प्रीति न जानी। तरुनि भई मैमंत भुलानी॥
जोबन गरब न किछु मैं चेता। नेह न जानौ साम कि सेता॥
अब सो कँत जो पूछिहि बाता। कत मुख होइहि पीत किराता॥
करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओहि देखहुँ ठांवहि ठाँऊ॥
जो जिउ मँह तो उहै पियारा। तन मन सो नहिं होई निनारा॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना॥

× × ×

काह हँसौ तुम मोंसो, किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख बरसै मेह॥

× × ×

नागमती तू पहिल बियाही। कठिन बिछोह दहै जनु दाही॥
बहुतै दिन पै आव जो पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ॥

× × ×

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरो संसारा ।।
गगन नखत जो जाहिं न बने। ते सब बान ओहि के हने ।।

× × ×

सूरज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता ।।
भा वसंत राती बनसपतीं। औ राते सब जोगी जती ।।
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पंखि पखेरू ।।
राती सती अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहिं छाया ।।

इसी प्रकार अनेक उत्कृष्ट और मनोमुग्धकारी स्थल प्रस्तुत किये जा सकते है जिन्हें पढ़कर सहृदय भावुक जन विभोर हो उठते हैं।

रस काव्य की आत्मा और भावपक्ष का प्राण है। पद्मावत में प्रधानतः शृङ्गार रस का ही वर्णन है। इसके संयोग और वियोग दोनों पक्षों का कवि ने सांगोपांग रूपण किया है। शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों का चित्रण बहुत ही कम हुआ है। हास्य का प्रायः अभाव-सा है। करुण का चित्रण दो प्रसंगों में मिलता है—एक तो रत्नसेन के योगी होने पर और दुबारा देवपाल से युद्ध करते हुए जाने पर। रौद्र की झलक तब दिखाई देती है जब रत्नसेन अलाउद्दीन का पत्र प्राप्त करता है। वीर रस की व्यंजना युद्धों में हुई है; युद्ध वर्णन में भयानक और वीभत्स रसों के चित्र भी सामने आ गये है। कवि ने जहाँ अपने वर्णनों में चमत्कारवादिता दिखाई है और संसार की नश्वरता का प्रतिपादन किया है वहाँ क्रमशः अदभुत और शांत रस की सृष्टि हुई है। अभिप्राय यह कि रसों के वर्णन में कवि असफल नहीं रहा है। अपने ग्रंथ के मूल रस शृङ्गार का रस राजकत्व प्रदर्शित किया है।

कलापक्ष में शब्द शक्ति, अलंकार, गुण, छन्द और भाषा-शैली आदि का समावेश होता है। इस दृष्टि से भी कवि को अपने कार्य-व्यापार में पर्याप्त सफलता मिली है। उसका कला पक्ष पूर्ण सशक्त और सम्पन्न है। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द शक्तियों से कवि ने काम लिया है। उत्प्रेक्षा रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति और तदगुण, आदि अलंकारों की पद्मावत में प्रचुरता पाई जाती है। गुणों में प्रसाद और माधुर्य की प्रधानता है। छन्दों में

कवि ने दोहा और चौपाई अपनाया है। भाषा ठेठ अवधी है। कहीं-कहीं ब्रज और बँगला के भी कुछ शब्द तद्भव रूप में मिलते हैं। पूरा पद्मावत मसनवी ढाँचे में ढला होने पर भी कवि की मौलिकता से संपृक्त है। फारसी और भारतीय दोनों शैलियों का इस ग्रंथ में अद्भुत मेल पाया जाता है। इस प्रकार कवि ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का सम्मिलन कराया है।

पद्मावत का काव्य सौन्दर्य अनुपम है। क्या भाषा, क्या भाव और क्या शैली वा विचार—सभी दृष्टियों से यह ग्रंथ उत्कृष्ट है। इसमें कवि की काव्य कला का भव्यतम रूप प्रस्फुटित हुआ है। काव्य-सौन्दर्य में इस महाकाव्य की समता रामचरितमानस के अतिरिक्त हिन्दी का अन्य कोई ग्रंथ नहीं कर सकता। जायसी के कवि ने इसे अपने कुशल हाथों से स्वयं ही सँवारा है। इसी नाते यह इतना बहुमूल्य ग्रंथ बन सका।

महाकाव्यत्व—विद्वानों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के समस्त लक्षण पद्मावत में पाये जाते हैं—

१. पद्मावत की कथा इतिहास प्रसिद्ध कथा है। कवि ने उसमें अपनी कल्पना का समावेश कर, उसे एक अद्भुत स्वरूप प्रदान किया है। इससे उसकी उत्कृष्टता ही बढ़ती है।

२. ग्रंथ में ५७ सर्ग हैं, जिनका नाम वर्णनीय कथा पर है।

३. नायक धीरोदात्त, उच्च क्षत्रिय वंश का है और नायिका भी ऐसी ही है।

४. ग्रंथ में शृङ्गार रस की प्रमुखता और साथ ही अन्य रसों का भी समावेश है।

५. पद्मावती रूप ईश्वर की प्राप्ति ग्रंथ के नायक का लक्ष्य है।

६. प्रातः मध्यान्ह, संध्या और रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, यात्रा, यश, संग्राम, विवाह, मंत्र आदि सबका यथासम्भव सांगोपांग वर्णन है। इसके अतिरिक्त ग्रंथ की कुछ अपनी विशिष्टताएँ भी हैं।

कहने का अभिप्राय यह कि पद्मावत हिन्दी का प्रथम और सफल महाकाव्य है।

दार्शनिकता और रहस्यवाद—जायसी निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि सूफी कवि हैं। अस्तु सूफी सिद्धान्तों का उनके काव्य में पूर्ण समावेश होना स्वाभाविक है। पद्मावत में उन्होंने जीवात्मा और परमात्मा का उन्हीं सिद्धान्तों पर तात्विक दृष्टि में अभेद का वर्णन किया है। लौकिक दृष्टि में जीव को ब्रह्म के प्रति प्रेमोन्मुख माना है। ब्रह्म की कल्पना उस शक्ति के रूप में उन्होंने की है जिसने प्रथम ज्योति (नूर) की सृष्टि की; और फिर उसके द्वारा अखिल विश्व का निर्माण हुआ। उनका ब्रह्म अजन्मा है—**'जना न काहु न कोइ ओहि जना। जहँ लगि सब ताकर सिरजना।'** यह चराचर, अखिल सृष्टि उसी अनन्त और प्रेममय को पाना चाहती है।

पवन जाइ तहँ पहुँचे यहा। मारा तैस, लोटि भुंइ रहा॥
अगिनि उठी, जरि उठी निआना। धुँआ उठा उठि बीच बिलाना॥
पानि उठा, उठि जाइ न छूआ। बहुरा रोइ, आइ भुंइ चूआ॥

प्रकृति के समस्त तत्व इसी आशा से जीवन के सहज धर्म को धारण करते हैं कि एक दिन हम उससे अवश्य मिलेंगे।

सूफी सिद्धान्तों में साधक की चार अवस्थायें बताई गई हैं। पद्मावत में उनका संकेत है—**"चरि बसेरे जो चढ़ै, सत सो उतरै पार।"** शरीअत, तरीक़त, हकीकत और मारिफत यही चार अवस्थाएँ हैं, जिन्हें साधक को पार करना पड़ता है, तब उसे ब्रह्म के दर्शन होते हैं। जायसी का ब्रह्म पूर्ण प्रेममय है। पद्मावती जो ज्ञान या बुद्धि की प्रतीक है, यथा सम्भव प्रेममय परमेश्वर के समस्त गुणों से युक्त है। उसकी प्राप्ति का मार्ग बताने वाला गुरु सुआ है। रत्नसेन के पथ पर चलने वाला साधक जीवात्मा है। नागमती को मार्ग की बाधा के रूप में ग्रहण किया गया है। डा० सुधीन्द्र ने इसे 'काया' कहा है। साधक को भटकाने वाला शैतान राघवचेतन है। अलाउद्दीन मायर का प्रतीक है।

जायसी के सूफी सिद्धान्तों पर भारतीय नागपंथ का पूर्ण प्रभाव है। ग्रंथ में गुरु की महत्ता सर्वोपरि स्वीकार की गई है।

डा० सुधीन्द्र के शब्दों में "जायसी सूफी होने के नाते निर्गुण निराकार ब्रह्म (खुदा) की माधुर्य भावमूलक, प्रेम प्रधान, प्रणय साधना के पोषक हैं। समस्त 'पद्मावत' सूफी जायसी के ज्ञान का रूपात्मक पदार्थ पाठ है। उसमें अपने सिद्धान्त-जीव की ब्रह्म प्राप्ति की साधना—को रूपक कथा के आवरण में प्रस्तुत किया गया है।

चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन् चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहिचित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥

जायसी का मन्तव्य यह है कि—ज्ञान रूप ब्रह्म (खुदा) की प्राप्ति के साधक भक्त को अपने मन को निर्गुण परमेश्वर में लीन करना चाहिए। उसके स्वरूप की पहचान बिना सद्गुरु के ज्ञान-दान के नहीं होती। सांसारिक मोह (काया और स्वजन-परिजन) के बंधनों को ठुकराकर ही जो 'शैतान' और 'माया' को विजय कर लेता है वह परमेश्वर को पाता है।

पद्मावत में लौकिक प्रेम के माध्यम से पारलौकिक प्रेम की प्राप्ति-साधना का दिग्दर्शन कराया गया है। सम्पूर्ण ग्रंथ में दार्शनिक और रहस्यवादी विचारों का समावेश है। 'पद्मावत' के सृजन में कवि का प्रमुख लक्ष्य ही यही था। इस दृष्टिकोण से उसे पर्याप्त सफलता मिली है।

अन्य विशेषताएँ—'पद्मावत' एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है। उसके अंतरंग और बहिरंग दोनों में कवि की काव्य-कला का उत्कृष्ट स्वरूप मिलता है। वह हिन्दू और मुस्मिल दोनों संस्कृतियों के सम्मिलन का एक सफल प्रयास है। मुसलमान कवि के द्वारा भारतीय कहानी का अपनाया जाना, और उसमें वर्णित देवी देवताओं को उचित श्रद्धा की दृष्टि से कवि द्वारा देखा जाना, पद्मावत की उत्कृष्टता की ओर संकेत करता है। ग्रंथ में भारती जीवन की एक सुन्दर झाँकी मिलती है। साथ ही तत्कालीन विविध परिस्थितियों का उल्लेख भी।

पद्मावत की सबसे बड़ी विशेषता, जो उसे भारतीय साहित्य के श्रेष्ट ग्रन्थों में स्थान देती है, यह है कि उसमें मानव जीवन की प्रधान वृत्ति प्रेम का सांगोपाँग निरूपण और प्रतिपादन है। प्रेम की महत्ता सर्वोपरि स्वीकार की गई है। प्रेम के सम्मुख स्वर्ग तक को त्याज्य और हेय बताया गया है। अखिल चराचर प्रेममय ब्रह्म की छाया है, उसे पहचानना जीव का धर्म है। प्रकृति से प्रेम करके ही जीव, ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

अपनी इन विशिष्टताओं के कारण 'पद्मावत' एक उच्चकोटि का ग्रंथ है। भारतीय साहित्य में उसका स्थान अन्यतम है।

प्रश्न ६—जायसी की रचनाओं में अपने मत-विशेष के प्रचार के साथ-साथ साहित्य-संवर्द्धना का पक्ष भी प्रबल है—स्पष्ट कीजिए।

काव्य का सृजन तभी हो सकता है जब कवि पूर्ण भावोद्रेक की अवस्था में पहुँच जाता है; साथ ही अपने उस उद्रेक को वाणी प्रदान करने के लिए उचित शब्द-योजना और वाक्य निर्माण की उसमें क्षमता भी होती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य और प्रलाप में अन्तर होता है, अन्यथा इस धराधाम पर कवि ही कवि नजर आते ।

इस तथ्य के प्रकाश में जब हम महाकवि जायसी के काव्य पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि अपनी रचनाओं में वे कवि प्रथम हैं फिर और कुछ (**जायसी ही क्या, प्रत्येक काव्यकार पहले कवि होता है फिर और कुछ—समाज सुधारक, नेता, विचारक, दार्शनिक तथा धर्म व्यवस्थापक व प्रचारक आदि। पहले उसका मन अपने काव्य को उच्चातिउच्च कोटि के बनाने में लगता है, तदुपरि उसके माध्यम से वह अपने अन्य किसी मंतव्य विशेष का प्रतिपादन करता है।**) हिन्दी जगत के सामने सर्वमान्य तथा प्रमुख रूप से जायसी की तीन पुस्तकें हैं। १. आखिरी कलाम, २. पद्मावत तथा ३. अखरावट। इन तीनों कृतियों का विस्तृत विवेचन हम 'जायसी की रचनाएँ' वाले अध्याय में कर चुके हैं। अस्तु उन्हीं सब बातों को उसी रूप में पुनः दुहराना अधिक समीचीन नहीं जान पड़ता। यहाँ हमें केवल इतना ही कहना

है कि जायसी कवि थे और वह भी महाकवि। उनकी काव्य-प्रतिभा बहुत ही उच्चकोटि की थी जिसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उनका 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का वह प्रथम अपूर्व ग्रंथ है जो अपने इस व्यवस्थित रूप में हमें प्राप्त है।

हिन्दी-काव्य क्षेत्र में जायसी से पूर्व प्रबन्ध काव्य के लिखने वालों में महाकवि चंदवरदाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। प्रक्षिप्तांशों के आ जाने से उनका 'पृथ्वीराज रासो' भले ही आज विद्वानों के विवाद का विषय बना हुआ हो किन्तु उनकी महान् कवि-प्रतिभा अपने क्षेत्र में प्रतिद्वन्दी नहीं रखती। उनके काव्य की अपनी विशेषताएँ उन्हें महाकवि के आसन पर आसीन करती हैं। वीर गाथात्मक शैली और सीमा में जीवन की विविध दशाओं का जो मार्मिक चित्रण उन्होंने किया है वह अभिनंदनीय है। उनके काव्य में उत्कृष्टता है, इसमें दो मत नहीं। ओज और प्रभावोत्पादकता उनकी कविता के अपने गुण-विशेष हैं। युद्ध क्षेत्र में तलवारों की गति और प्रणय की दुनिया में कल कामिनियों के चंचल कटाक्ष के साथ उनकी भाषा भी नर्तन करती है। ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनों गुणों का अद्भुत समन्वय हमको उसमें दिखाई देता है। जिस दृश्य का भी चित्र उन्होंने खींचा है उसे साकार कर दिया है। उनकी उदात्त कल्पना, मर्मस्पर्शी भाव-व्यंजना और मनहर अलंकार-योजना, कविता में प्राण डाल देती है। वीर और शृङ्गार की एक साथ जो सुन्दर झाँकी हमें चन्दवरदाई के काव्य में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। तात्पर्य यह कि एक महाकवि के लिए अपेक्षित प्रायः सभी उदात्त तथा प्रौढ़ वृत्तियाँ हमें चन्दवरदाई में मिलती हैं। और इस नाते हम उन्हें हिन्दी का प्रथम महाकवि कहते हैं। चन्दवरदाई की सी ही महाकवि की प्रतिभा उनके उपरांत यदि किसी में देखने को मिलती है तो वह प्रेम के चतुर चितेरे कविवर जायसी में ही। वीर गाथा काल में अन्य अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गये थे किन्तु वे उस स्तर तक नहीं पहुँच सके थे जहाँ पृथ्वीराज रासो था। वीर गाथात्मक युग के बाद कबीर आदि ज्ञानमार्गी सन्त कवियों का तो अपना क्षेत्र ही अलग था। अन्ततः चन्दवरदाई के बाद उस परम्परा में इतने उच्च आसन पर हमें जायसी ही दिखाई

देते हैं। स्थूल रूप से प्रबन्ध काव्यों को तीन वर्गों में बाँटा गया है १—वीर गाथात्मक, २—प्रेम गाथात्मक और ३—जीवन-गाथात्मक। इस व्यवस्था के अनुसार रासो आदि को वीरगाथा के अन्तर्गत, मृगावती, पद्मावती आदि को प्रेम गाथा के अन्तर्गत तथा रामचरित मानस को जीवन-गाथा के अन्तर्गत जब रखते हैं तो प्रेम गाथा की परम्परा के भीतर (जिसमें कुतुवन, उस्मान और नूर मोहम्मद आदि हैं) जायसी का स्थान सर्वोच्च ठहरता है। उनका पद्मावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है।

उपर्युक्त बातों की चर्चा कर अपने उत्तर में मैंने किसी अप्रासांगिकता का समावेश नहीं किया है; अपितु उसके उल्लेख में हमारा यह लक्ष्य छिपा हुआ है कि आप लोग देखें कवि के रूप में जायसी कितनी ऊँचाई पर हैं। इस प्रकार उनके स्थान का मोटे रूप से निर्धारण कर लेने के उपरांत अब हम उनके काव्य क्षेत्र में प्रवेश कर यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि साहित्य संवर्द्धना में उन्होंने कितना योग दिया तथा उनका यह पक्ष कितना प्रबल है ?

पहली बात तो यह कि जायसी उच्च कोटि के कवि हैं। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि प्रत्येक कवि का यह प्रथम प्रयत्न होता है कि वह अपनी काव्य-प्रतिभा को अधिक से अधिक निखारे अथवा अपनी उस शक्ति को प्रौढ़-तर बनाये, जायसी ने भी प्रथम वही किया। उस शक्ति से अपने को पूर्ण सम्पन्न बनाने में अनवरत प्रयत्नशील रहे। उन्होंने प्रथम अपने कवित्व को जगाया और जब उसमें सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली तब उसके बाद और किसी विषय की ओर झुके हैं। उनकी काव्य कीर्ति का अक्षय स्तंभ आखिरी कलाम व अखरावट न होकर पद्मावत ही है क्योंकि इसमें उनकी उस शाश्वत भावना को वाणी मिली है जो विश्वजनीन होने के साथ ही साथ परमानन्द में लय होने को आतुर है। **'आखिरी कलाम'** उनके कवि के बाल-प्रयास, **'पद्मात'** युवा और प्रौढ़ावस्था के परिणाम तथा **'अखरावट'** उनकी अन्तिम कृति के रूप में हमारे सामने आता है। अखरावट सिद्धान्त-ग्रन्थ होने के नाते काव्य की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं पा सका। **'आखिरी कलाम'** की साहित्यिक-योजना ढीली ढ़ाली और अधकचरी है। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसमें महाकवि

का बीजारोपण दृष्टिगत होता है। इस ग्रंथ में कवि ने कयामत के दिन तथा उससे सम्बन्धित अन्य उसी प्रकार की बातों का वर्णन किया है। इस्लाम सम्बन्धी अपनी विविध जानकारी को प्रकट करने का प्रयत्न किया है जो उसके अस्थिर जीवन पथिक की ओर संकेत करता है। कवि के विचारों में अभी स्थायित्व नहीं आ पाया था। इस काव्य में वाक्य संगठन, काल सूचक और भाव व्यंजन की शिथिलताएँ पर्याप्त मात्रा में हैं। कवि के भीतर प्रबन्ध काव्य की निर्वहण शक्ति अभी नहीं आ पाई थी। इसमें सात-सात चौपाइयों के बाद एक दोहा है और इसका मसनवी शैली में निर्माण हुआ है। तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार हिन्दू मुस्लिम सम्मिलन की भावना भी यत्र-तत्र दिखाई देती है, सम्पूर्ण ग्रन्थ में, काव्य-सौष्ठव तथा सौन्दर्य का पलड़ा भारी तो नहीं है किन्तु फिर भी अनेक स्थल बड़े ही मनमोहक और सुन्दर बन पड़े हैं। ऐसे ही स्थलों की रमणीयता पर मुग्ध होकर कुछ विद्वानों ने इसकी शैली को पद्मावत की अपेक्षा प्रौढ़तर सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु उनका यह आग्रह न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। मैं स्वयं भी इसके पक्ष में नहीं हूँ। हाँ कवि की उगती हुई नववयी प्रतिभा का किशोर चित्र अपने प्रारम्भिक आकर्षण से हमारे मन को अवश्य मुग्ध कर लेता है। मैंने ऊपर निवेदन किया है कि आखिरी कलाम कवि की प्रारम्भिक कृतियों में से जान पड़ती है, इस नाते उसमें काव्य के प्रौढ़तर स्वरूप की उपेक्षा करना कवि के साथ अन्याय होगा। इस ग्रंथ के पढ़ने से हमें इतना अवश्य आभास मिल जाता है कि कवि अपनी प्रतिभा को विकसित करने के लिए उत्सुक और प्रयत्नशील है। इस आधार पर कवि के साथ न्यायपूर्ण दृष्टि रखते हुए मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि कवि ने इस ग्रंथ में अपने साहित्यिक संवर्द्धना पक्ष की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है।

आखिरी कलाम के बाद कवि का सर्वोत्तम ग्रंथ और हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का प्राण पद्मावत आता है इस ग्रंथ में कवि की विराट प्रतिभा के दर्शन होते हैं। कवि की साधना पूर्ण सशक्त और सजग होकर इस काव्य में अवतरित हुई है। कवि की काव्य-कला के उत्तरोत्तर विकास का परिचय ग्रंथ

की प्रथम पंक्ति से ही चल जाता है। आखिरी कलाम में जिस कवि ने यह कहा था—

"पहिले नाम दैव करि लीन्हा। जेइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा॥"

कवि पद्मावत में अपना पहला बोल इस प्रकार आरम्भ करता है—

"सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह, कीन्ह सँसारू॥"

तात्पर्य यह कि कवि की साहित्यिक प्रतिभा यहाँ अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में चित्रित हुई है। सम्पूर्ण काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष पर जब हम एक विहंगम दृष्टि डालते हैं तो हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि काव्य के दोनों पक्ष उच्चकोटि के हैं। भावपक्ष में रागात्मक तत्व, बुद्धितत्व और कल्पना तत्व का जैसा सुन्दर और सफल चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है उसकी चर्चा हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। कवि के भाव-पक्ष का केन्द्र बिन्दु प्रेम है। पद्मावत में जिसे उद्दात उच्च और व्यापक तथा पवित्र प्रेम की कल्पना कवि ने की है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम के क्षेत्र में शृङ्गार रसांतर्गत मिलन और विरह के जो मनोहर तथा मर्मस्पर्शी चित्र कवि ने खींचे हैं वैसे अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। पवित्र प्रणय की वैसी अनूठी भाव-व्यंजना जायसी ऐसे कवि के अनुरूप ही थी। प्रेम की उस गहराई में विरले कवि उतर सके हैं। कवि की अनन्यता, प्रेमोन्मत्तता और हर्षोल्लास-व्यंजना उसकी अपनी निधि है। व्यापक प्रेम की इतनी सुन्दर और मनोहर झाँकी प्रस्तुत करने का श्रेय उस युग में जायसी को ही है। उनकी प्रेम-वेदना की गूढ़ता निराली है। पांडित्य और विचारों तथा साहित्यिकता की दृष्टि से भले ही तुलसी हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ कवि हों किन्तु प्रेम की इस गूढ़ व्यंजना के सम्मुख तो उन्हें अपना मस्तक झुकाना ही पड़ता है। प्रेम की नाना दशाओं का दिग्दर्शन कराके कवि ने अपने को इस क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी बना लिया है।

पद्मावत का कला-पक्ष भी कम प्रौढ़ नहीं। दोहे और चौपाइयां में लिखा गया मनसवी ढंग का यह काव्य बड़ा ही निराला बन पड़ा है। बोल चाल की ठेठ अवधी का प्रयोग करने के नाते भाषा में एक अपूर्व मिठास आ गई है जो उसे

साहित्यिक बना देने में नहीं ही आ पाती। तुलसी की साहित्यिक अवधी को इतना परिमार्जित करने का श्रेय उनके महान अध्ययन, ठोस ज्ञान, और पांडित्य को है। और सबसे बड़ी बात यह कि तुलसी की वह मातृ-भाषा है। इसके विपरीत जायसी का अध्ययन व चिंतन इतना गम्भीर नहीं था। और न तुलसी की भाँति उन्होंने विधिवत शिक्षा ही पाई थी। तुलसीदास की समकक्षता में अध्ययन की दृष्टि से जायसी को शून्य अंक ही मिलने चाहिएँ। दूसरे यह भी कि जायसी मुसलमान थे और उनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं थी। फिर भी कवि ने पद्मावत की भाषा को जो मिठास प्रदान की है हिन्दी साहित्य में वह उसकी देन ही कही जायगी।

पद्मावत की अलंकार-योजना आकर्षक, भाषा प्रवाहमान, उक्तियाँ चुभती हुई तथा कल्पना उच्चकोटि की और छंद चलते हुए व शैली सरल है। अपने काव्य में प्राण प्रतिष्ठा करने के लिए कवि ने नागमती के विरह वर्णन का समावेश किया अन्यथा कथा-क्रम में उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। भारतीय नारी का उज्ज्वलतम और आदर्श रूप नागमती के चरित्र के कुछ मुख्य बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत करना जायसी का उस वर्णन में प्रमुख ध्येय कहा जा सकता है। जो सम्पूर्ण काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इसी नाते आचार्य शुक्ल को भी कहना पड़ा, "जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिन्दू गृहणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलंभ शृङ्गार के अत्यन्त सम्मुज्ज्वल रूप का विकास दिखाया है।"..."नागमती के विरह वर्णन के अन्तर्गत वह प्रसिद्ध बारह मासा है। जिसमें वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।"... "नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।" पद्मावत के एक मर्मस्पर्शी काव्य स्थल क्या कवि के काव्य संवर्द्धन दृष्टि की ओर संकेत नहीं करते? भावों की इतनी गूढ़ व्यंजना हिन्दी काव्य को इतनी सरलता से नहीं उपलब्ध हैं। देखिए पद्मावत के काव्य सौंदर्य पर मुग्ध होकर डा० रामकुमार

वर्मा ने कितनी युक्ति संगत बात कही है। "पद्मावत का सबसे बड़ा सौंदर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है। नागमती का विरह वर्णन, उसका उन्माद पशु पक्षियों से उसकी सहानुभूति प्रकट करना आदि सभी स्वाभाविकता के साथ वैदग्ध पूर्ण भाषा में वर्णित है। बारहमासा में वेदना का कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का मर्मस्पर्शी माधुर्य, प्रकृति की सजीव अभिव्यक्ति में हृदय की मनोहर अनुभूति है। इसी मनोवैज्ञानिक चित्रण में रसों का सफल प्रदर्शन हुआ है। जहाँ रत्नसेन-पद्मावती मिलन में संयोग और नागमती विरह वर्णन में वियोग शृङ्गार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है वहाँ गोरा बादल के उत्साह में वीर-रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अंतिम भाग में मारे जाने पर करुण रस से ही, प्रत्युत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पद्मावत प्रेमकाव्य का एक चिर स्मरणीय ग्रंथ रहेगा।" फारसी की मनसवी-शैली से प्रभावित होने के कारण कहीं-कहीं कवि के काव्यत्व को भारी धक्का भी लगा है पर वह विचार और नीति की दृष्टि से ही हेय कहा जा सकता है शुद्ध काव्य की दृष्टि से नहीं। वैसे काव्य में और भी दोष हैं किन्तु अनेक काव्यात्मक गुणों के सम्मुख उनकी गणना शून्यवत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मावत में भी कवि अपनी साहित्य-संवर्द्धना की बात नहीं भूला है, बल्कि उसे शीर्षस्थ कर दिया है। इस सम्बन्ध में सबसे प्रमुख बात यह है कि कोई भी कवि या साहित्यकार अपनी कृति का सृजन साहित्य संवर्द्धना को लक्ष्य बनाकर नहीं करता है अपितु प्रमुख कला अथवा उसकी साधना होने के कारण उसके चित्रांकन में उत्तरोत्तर विकास आता ही जाता है। अन्यथा कवि को भारी असंतोष हो आये। कवि का अपनी कला के प्रति यह अनन्य अनुराग ही उसके साहित्यिक पक्ष का निरंतर संवर्द्धन करता रहता है। कवि चाहे उसे जान पाये या न जान पाये। उसकी काव्यात्मक शक्ति का विकास होता रहता है।

अखरावट कवि का सैद्धान्तिक ग्रंथ है जिसमें उसने अक्षर क्रमानुसार धार्मिक उपदेश दिए हैं। इसके सम्बन्ध में डा० जयदेव की इन पंक्तियों के साथ

जिन्हें उन्होंने सैयद मुस्तफा से सहमत होते हुए लिखा है, मैं भी स्वर मिलाता हुआ कहूँगा कि "इस काव्य में छन्दगत दोष न्यूनतम हैं। दोहे चौपाइयों में माधुर्य भी अधिक और भाषा भी अधिक सुस्थिर तथा व्यवस्थित है। कवि ने एक नवीन छन्द सोरठे का भी सफल प्रयोग किया है। कुछ सोरठों के चारों चरणों के तुकों में साम्य है जिससे यह छन्द विशेष श्रुति-मधुर बन गए हैं। गोस्वामी जी ने भी इस प्रकार के पद्यों का प्रयोग किया है जो जनता में बड़े ही लोकप्रिय बन गये हैं।" इस प्रकार इस ग्रंथ से भी स्पष्ट है कि कवि का ध्यान साहित्य संवर्द्धन की ओर अवश्य रहा है अन्यथा उसकी कला को यह निखार नहीं मिलता।

जायसी के आखिरी कलाम, पद्मावत और अखरावट के साहित्य पक्ष की साधारण चर्चा कर लेने के उपरांत अब हम उनके मत-विशेष के प्रचार की भावना को देखेंगे।

इस सम्बन्ध में मेरे और कुछ कहने से पूर्व यह सर्वमान्य बात जान लेनी चाहिए कि जायसी एक उच्च कोटि के सूफी साधक थे। सभी सूफी साधकों का यह प्रमुख कर्तव्य होता है कि वे अपने धर्म का प्रचार करें। इसी नाते सूफी प्रेम गाथाकारों ने अपने काव्यों के माध्यम से सूफी धर्म का प्रचार कार्य सम्पन्न किया है; फिर सर्वश्रेष्ठ हिन्दी सूफी प्रेम गाथाकार जायसी ही इस कथन के अपवाद कैसे हो सकते थे। जायसी के काव्य में सूफीमत के समाविष्ट होने के कौशल के लिए डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है कि "समस्त कथा में सूफी सिद्धांत बादल में पानी की बूंद की भाँति छिपे हुए हैं।" सूफियों की नीति उदार होती है। इस्लाम की कट्टरता से उन्हें चिढ़ है। जीवन की स्वच्छ, सरल और पवित्र उदात्त वृत्तियों को वे विशेष प्रश्रय देते हैं, मानवता के विकास मार्ग पर जोर देते हैं। पारस्परिक उच्छृङ्खल स्वार्थी वृत्ति से परे व्यक्ति को ऊँचा उठाने की बात करते हैं। शाश्वत सत्य की व्याख्या करते हैं, आध्यात्मिक प्रेम का वह महामन्त्र देते हैं जिसके सहारे पतनोन्मुख मानव पारलौकिक सुख की प्राप्ति कर सके। परम प्रियतम का अंश जीवात्मा उसमें लीन

हो अखंड आनन्दमय हो जाय। सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हों जाय। प्रेम जो मानव जीवन का चरम-बिन्दु है, इन सूफी कवियों की कविता का प्राण है। जायसी के काव्य में ये समस्त विशेषतायें अपनी प्रबल शक्ति के साथ विद्यमान हैं। जायसी ने सूफी साधना का बड़ा विस्तृत और गूढ़ तथा व्यापक वर्णन किया है। आखिरी कलाम तो उनके इस्लामी विचारों का प्रतिनिधित्व ही करता है। अखरावट में वे इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि विधिना के पास पहुँचने के तो तन-रोआँ और आकाश के नक्षत्रों की भाँति अगणित मार्ग हैं किन्तु उनमें से मुहम्मद साहब द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही सर्वोत्तम है। इस प्रकार अपने धर्म के प्रति वे गहरी निष्ठा व्यक्त करते हैं। अखरावट और आखिरी कलाम दोनों में उनके इस्लामी स्वरूप का प्रकटीकरण है; और पद्मावत का तो कहना ही क्या ? वह तो उनकी समस्त साधना का प्रशस्त पथ-निर्माण ही है जिसके प्रति हिन्दू जनता को आकृष्ट कर वे उसे उसकी अनुगामिनी बनाना चाहते हैं। उन्हें हिन्दुओं का सहज विश्वास तो प्राप्त था; पर विधि की कुछ ऐसी मरजी थी कि जायसी को इस दिशा में मनचाही सफलता न मिल सकी। इसमें सन्देह नहीं कि अपने सूफी धर्म को उन्होंने अपने काव्य में बड़े कौशल से पिरोया है। काव्य की मनोहरता में वे सिद्धान्त वैसे ही घुल-मिल गये हैं जैसे बादलों की सघन घटा में बिजली।

अपनी काव्योपासना के साथ-साथ सूफी धर्म साधना एवं उसके प्रसार की बात वे नहीं भूल सके हैं। उसके प्रति उनका संस्कारगत मोह है जिसे उनसे अलग भी नहीं किया जा सकता। श्री यज्ञदत्त शर्मा के शब्दों में **"महाकवि जायसी मुसलमानी आस्थाओं में विश्वास रखने वाले सूफी मुसलमान थे और अपनी ही मान्यता का प्रचार उन्होंने किया है। मुसलमान धर्म के प्रवर्तकों में उनका पूर्ण विश्वास था और उनकी मान्यताओं तथा पाबन्दियों की रूढ़ियों का उन पर असर था। वह एक सूफी मुसलमान थे और मुसलमानी दर्शन के प्रति ही उनकी मान्यता थी।"** सूफी साधना जायसी के जीवन का प्रधान लक्ष्य था और उसकी सिद्धि में जीवन पर्यन्त वे लगे भी रहे। पद्मावत में सम्पूर्ण कथा

कह जाने के उपरांत उन्हें यह आशंका बनी रही कि कहीं हमारी यह प्रेम-कहानी दूसरे ढंग से न विचार ली जाय इसलिए उपसंहार में (जो मसनवी शैली के अन्तर्गत देने की मजबूरी भी थी) उन्होंने अपना मंतव्य स्पष्ट कह सुनाया—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिना गुरु को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया-धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु॥

अपने उत्तर का अन्तिम निष्कर्ष देने से पूर्व हम दो एक स्थल ऐसे और उपस्थित कर देना आवश्यक समझते हैं जिनके द्वारा उनकी सूफी साधना अधिक मुखर हो सकी है।

यह सूर्य की भाँति सबके सामने है कि सूफी साधना का केन्द्र बिन्दु प्रेम है। उसी प्रेम की प्रशस्ति में जायसी ने बहुत कुछ लिखा है—

भलेहि प्रेम है कठिन सुहेला।
दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला॥

किन्तु शिष्य के अन्दर इस प्रेम ज्योति को जगा देना गुरु का ही कार्य है। वह विरह की एक चिनगारी डालता है, शिष्य उसी चिनगारी को अपने में अधिक सुलगा लेता है।

गुरु बिरह चिनगी जो मेला।
जो सुलगाई लेइ सो चेला॥

अथवा

सबद एक उन कहा अकेला।
गुरु जस भृंग फनिग जस चेला॥

भृङ्गी ओहि पांखि पै लेई।
एकहि बार छीनि जिउ देई॥

जायसी का कहना है कि शुद्ध साधना के लिए पहले अहं को दूर करो। अपने को मिटा दो।

जब लगि गुरु हौं अहा, न चीन्हा।
कोटि अन्तर पट बीचहि दीन्हा॥
जब चीन्हा तब और न कोई।
तन मन जिउ जीवन सब सोई॥
हौं हौं करत धोख इतराई।
जब भा सिद्ध कहाँ इतराहीं॥

जो इस प्रकार उठकर अपने प्रियतम में लय हो जाता है वह धन्य है। जायसी का कहना है कि प्रियतम के पास जो पहुँच गया उसे फिर इस मायावी विश्व में लौटने की आवश्यकता नहीं रहती। उस आनन्द लोक की महिमा न्यारी है।

जब राजा रत्नसेन दिल्ली में कैद हो गये तब रानी पद्मावती का विलाप कुछ इसी प्रकार के भावों को ध्वनित करता है—

सो दिल्ली अव निवहुर देसू। केहि पूछहुँ, को कहै संदेसू।
जो कोइ जाइ तहाँ करि होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा॥

जायसी पर नाथ पंथ और हठयोग का पूरा-पूरा प्रभाव था। सिंहलगढ़ के वर्णन में अनेक उदाहरण ऐसे मिलेंगे। गढ़ को शरीर का रूपक देकर हठयोग साधना का कैसा सुन्दर चित्र उन्होंने खींचा है, इसे नीचे की पंक्तियों में देखिए—

गढ़ तस बाँक जौसि तोरि काया। पुरूष देखि ओही कै छाया॥
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरै पाँच कोतवारा॥
दसवें द्वार गुपुत एक तारा। अगम चढ़ाव बांक सो बांका॥

भेदै जाइ सोइ वह घाटी। जो लहि भेद चढ़ै होइ चाँटी॥
गढ़ तर कुंड, सुरंग तेहि माँहा। तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाँहा॥
जस मरजीया समुद धँसि, हाथ आव तब सीप।
ढूँढि लेहि जो सरग दुआरी। चढै सो सिंहलदीप॥

तथा—

नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ वज्र किवार।
चारि वसेरे जो चढ़े, सत सो उतरै पार॥

पर यहाँ हम एक बात का उल्लेख और कर देना चाहते हैं कि पद्मावत के अधिकांश स्थलों में इस आध्यात्मिक या सूफी मत के अनुकूल, अर्थ नहीं ध्वनित हुए हैं। कुछ थोड़े से स्थल ही हैं जहाँ कवि की यह साधना अधिक वेग से मुखरित हुई है। अनेक स्थलों पर तो वर्णन इतना स्थूल हो गया है कि आध्यात्मिक अर्थ की खींचतान करना कवित्व की हत्या करना प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए बादल की नवागता वधू का कथन देखिये—

जौ तुम चहहु जूझि पिउ! बाजा। कीन्ह सिंगार-जूझ मैं साजा॥
जोबन आइ सौंह होइ रोपा। बिखरा विरह कामदल कोपा॥
भौंहैं धनुष नैन सर साधे। काजर पनच, वरुनि विष बाँधे॥
अलक-फाँस गिउ मेलि असूझा। अधर-अधर सौं चाहहिं जूझा॥
कुम्भ स्थल-कुच दोउ मैमंता। पेलौं सौंह, सँभारहु कंता॥

कौन भारतीय वधू इतनी निर्लज्ज हो जायगी कि प्रथम समागम के अवसर पर अपने पति से इस प्रकार प्रलाप करेगी। वर्णन को पढ़कर मन घृणा और क्षोभ से भर जाता है।

पद्मावती-रत्नसेन का मिलन देखिये—

लीन्ह लेक, कंचन-गढ़ टूटा, कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
औ जोबन मैमंत विधांसा। विचला विरह जीव जो नासा॥
टूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी माँग, भंग भए केसा॥
कंचुकि चूर, चूर भइतानी। टूटे हार मोति छहरानी॥

वारी, टाँण सलोनी टूटी। बाहू कंगन कलाई फूटी।
चंदन अंग छूट अस भेंटी। वेसरि टूटि तिलक गा मेटी॥

पुहुप सिंगार सवार सब, जोबन नवल बसंत।
अरगज जियिहिय लाइ कै, मरगज कीन्हेउ कंत॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्णन घोर पार्थिव है। लौकिक प्रेम के माध्यम से कवि यहाँ अलौकिक सूफी प्रेम का आभास नहीं दे पाया है।

ऐसे ही ग्रन्थ में अनेक स्थल हैं जिन्हें उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। वहाँ पर कवि केवल काव्यात्मक वर्णन करता चलता है उसका वह वेग, अपेक्षा कृत सूफी सिद्धान्तों का प्रचार करने के, अधिक प्रखर है।

इससे यह पता चलता है कि कवि की काव्य-धारा के प्रवाह को उसके ये सूफी सिद्धान्त नहीं रोक सके हैं। वह जिधर जाना चाहती है स्वेच्छा से उधर बहती गई है। तात्पर्य यह कि कवि की कला के विकास मार्ग में सूफीमत मन-चाहा अवरोध नहीं बन सका है।

अस्तु अब हम निष्कर्ष रूप में यह कहेंगे कि कवि की कला में साहित्य-संवर्द्धन-स्वाभाविक प्रबल, तथा सशक्त वेग से हुआ है किन्तु साथ ही जायसी अपने जीवन की मूल साधना सूफीमत को भी नहीं भूल सके हैं। अपने काव्य में उसका संगुंफन भी उन्होंने बड़ी चतुरता से किया है। पक्का मुसलमान होने के नाते अपने धर्म की विशद विवेचना तथा उसके प्रचार व प्रसार का उनका यह प्रयत्न बिल्कुल स्वाभाविक ही था।

प्रश्न ७—जायसी के प्रेम गाथा-काव्य में भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों ही शैलियों का सम्मिश्रण है। सप्रमाण समझाइये।

'जायसी के प्रेमगाथा काव्य में भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों पक्षों का सम्मिश्रण है' इस तथ्य का उद्‌घाटन जायसी के प्रेम तत्व तथा उसकी पद्धति को जान लेने के उपरांत हो जाता है।

भारतीय साहित्य में कवियों ने प्रायः निम्न चार रूपों में प्रेम को ग्रहण किया है—

१. जीवन की प्रेरक शक्ति के रूप में।

२. प्रेम को जीवन का साध्य मान कर।

३. प्रेम को जीवन का एक अंग मानकर।

४. जीवन को प्रेम का एक अंग मानकर।

आदि काव्य रामायण में वर्णित राम और सीता का प्रेम प्रथम प्रकार का अर्थात् जीवन की मूल शक्ति के रूप में है। वह शक्ति जीवन की शाश्वत और चिरंतन शक्ति है। सीता और वियोगी राम के क्रियाकलापों में उसी शक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार के प्रेम को विवाह के पश्चात् उत्पन्न होने वाला और जीवन की कठिनाइयों में उत्कर्ष को प्राप्त होने वाला प्रेम भी कहा जाता है।

दूसरे प्रकार का प्रेम वह है जिसमें प्रेम को ही जीवन का साध्य मान कर चला जाता है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए हम इसको विवाह से पूर्व का प्रेम कहेंगे। इसमें नायक और नायिका किसी मनोरम स्थान पर—यथा वन—उपवन, सर-सरिता के तट पर एक दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और उनमें प्रेम का अंकुर उग आता है। 'आभिज्ञान-शाकुंतलम' में दुष्यंत और शकुन्तला का प्रेम ऐसा ही प्रेम है। विक्रमोर्वशी नाटक भी इसी प्रेम का प्रतिपादन करता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम राजाओं के अन्तःकरण तथा उद्यान में भोगविलास के रूप में दिखाई देता है; जिसमें सपत्नियों के द्वेष, विदूषकों के हास-परिहास और राजाओं की स्त्रैणता का दृश्य होता है। ऐसा प्रेम 'रत्नावली' 'कर्पूर मंजरी' 'प्रिय दर्शिका' आदि संस्कृत के उत्तरकालीन नाटकों में मिलता है।

चौथे प्रकार का प्रेम गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन अथवा स्वप्न-दर्शन आदि से उत्पन्न होता है। ऊषा और अनिरुद्ध का प्रेम इसी प्रकार का प्रेम है। इसमें प्रयत्न स्त्री जाति की ओर से होता है और जीवन की समस्त साधना प्रेम में पर्यवसित कर दी जाती है। जीवन प्रेम का ही एक अंग बन जाता है।

जायसी का प्रेम चौथी कोटि में आता है। किन्तु जायसी ने उसे उसी रूप

मे नहीं अपनाया है, अपितु कुछ अपनी विशिष्टताओं के संयोग से उसका रूप और भी मनोरम बना दिया है।

उपर मैंने बताया है कि इस प्रेम में प्रयत्न स्त्री जाति की ओर से होता है; किन्तु जायसी में प्रयत्न स्त्री अर्थात् नायिका की ओर से न होकर नायक की ओर से हुआ है। जायसी के प्रेम-जगत का नायक रत्नसेन, मजनू और फरहाद जैसा ही नायक है। लैला-मजनू और शीरीं फरहाद की प्रेम कहानियों में नायक की प्रेमानुभूति बड़े तीव्र रूप में प्रदर्शित की गई है। इन कहानियों से पूर्ण प्रभावित होने के नाते जायसी का नायक रत्नसेन भी सुआ के द्वारा पद्मावती के रूप की प्रशंसा सुन उसे प्राप्त करने को लालायित हो उठता है। ......उसके मन में जाग्रत यह लालसा, उसकी प्रथम प्रेमानुभूति को तीव्रतर बना देती है। देखिये जायसी ने उसे किस सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

पद्मावति राजा कै बारी। पदुमगंध ससि विधि औतारी॥
ससि मुख अंग मलयगिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस बानी॥
हैहि जो पदुमिनि सिंहल माँहा। सुगंध सुरूप सो ओहि के छाँहा॥

× × ×

हीरामनि जो कँवल बखाना। सुनि राजा होइ भँवर लुभाना॥
आगे आउ पँखि उजिआरे। कहहिं सो दीप पतंग के मारे॥
रहा जो कनक सुवासित ठाऊँ। कस न होइ हीरामनि नाऊँ॥
को राजा, कस दीप पतंगू। जेहिरे सुनत मन भयउ पतंगू॥
सुनि सो समुंद चख ये किलकिला। कँवलहि चहौ भँवर होइ मिला॥
कहु सुगंध धनि कसि निरमरी। भा अलि संग, कि अब ही करी॥

× × ×

का राजा हौं वरनौ तासू। सिंहल दीप आहिक विलासू॥
घर घर पदुमिनि छति सौ जाती। सदा वसंत देवस औ राती॥
ज हि जेहि वरन फूल फूलवारी। तेहि तेहि वरन सुगंध सो नारी॥
गंधपसेन तहाँ बड़ राजा। अछरिन्ह मँह इन्द्रासन साजा॥

सो पद्मावति तेहि करि वारी। जो सब दीप माँहि उजियारी ॥
चहुँ खंड के वर जो ओनाहीं। गरबहि राजा बोलै नाहीं ॥
उअत सूर जस देखिय, चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसै सबै जाहि छपि, पदुमावति के रूप ॥

× × ×

सुनि रवि-नांव रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु बाता।
तै सुरंग मूरति वह कही। चित मँह लागि चित्र होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिये परगसी ॥
अब हौं सुरुज, चांद वह छाया। जल बिनु मीन, रक्त बिनु काया ॥
किरिन-करा या प्रेम-अँकरू। जो ससि सरग, मिलौं होइ सूरू ॥

सुए के शब्दों में वर्णित—सूर्य की भाँति रूपवती पद्मावती ने रत्नसेन को अनुरक्त कर लिया; किन्तु प्रेम की प्रगाढ़ता ने उसे स्वयं सूर्य और पद्मावती को उसकी छाया चन्द्र बना दिया जिसे प्राप्त करने के लिए वह सूर्य बनेगा।

प्रेमांकुर के प्रगट होते ही प्रेम की अनुपमता भी स्पष्ट हुए बिना न रह सकी—

तीनि लोक चौदह खंड, सबै परै मोंहि सूझि।
पेम छाँड़ि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि ॥

प्रेम के पुंजीभूत पवित्र रूप को उसके व्यापक आकार में समझने के लिए यहाँ पद्मावती के प्रेम विह्वल हृदय का चित्र प्रस्तुत करना अप्रासांगिक न होगा। पद्मावती का मदन-पीड़ित रूप प्रेम पुजारी जायसी ने अपनी तूली से कितनी कुशलतापूर्वक अंकित किया है, देखते ही बनता है।

एक दिवस पदुमावति रानी। हीरामनि तहँ कहा सयानी ॥
सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिन दिन मदन सतावै आई ॥

उसका यौवन—प्रवाह गंगा की भाँति विशद हो गया है और अंग-अंग से अनंग की ज्वाला फूट रही है।

जोबन मोर भयऊ जस गंगा। देह-देह हम लाग अनंगा ॥

क्यों न हो, विधाता ने उसे अवर्णनीय रूप जो दिया है—

भई ओनंत पदुमावति बारी। धज धौरें सब करी सँवारी ॥
जग बेधा तेइ अंग सुवासा । भँवर आइ लुबुधँ चहुँ पासा ॥
बेनी नाग मलै सिर पीठी । ससि माथे होइ दुइजि बईठी ॥
भौंहें धनुक सांधि सर फेरी। नैन कुरंगिनि भूलि जनु हेरी ॥
नासिक कीर कँवल मुख सोहा। पदुमिनि रूप देखि जग मोहा ॥
मानिक अधर दसन जनु हीरा। हिये हुलसै कुच कनक जँभीरा ॥
केहरि लक गवन गज हरे। सुर नर देखि माथ भुंइ धरे ॥
जग कोई दिस्टि न आवै, आछहि नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी, तप साधहिं तेहि आस ॥

सुए के द्वारा पद्मावती की रूप प्रशंसा सुन रत्नसेन का उसको प्राप्त करने के लिए इस तरह आकुल हो जाना आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को नहीं रुचता। वे इसे लोभ मात्र कहते हैं। उनके विचार से यह पूर्व राग है ही नहीं—**"जब तक पूर्व राग आगे चलकर रति या प्रेम के रूप में परिणत नहीं होता, तब तक उसे हम चित्त की कोई उदात्त या गम्भीर वृत्ति नहीं कह सकते। हमारी समझ में तो दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिड़िया हो या आदमी, किसी पुरुष या स्त्री के रूप-गुण आदि को सुनकर चट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करने वाला भाव लोक मात्र कहला सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं।"**

आचार्य शुक्ल का यह आक्षेप कुछ उचित नहीं जँचता; क्योंकि जायसी की प्रेम कथा को हम सामान्य कथा मानकर उसका मूल्यांकन नहीं कर सकते। वह ब्रह्म और जीव की अनन्त प्रणय—कथा है जिसमें 'प्रेम' से भी पहले 'विरह' की दशा आ जाती है। इस कथा का रहस्य समझने और उसके प्रति ईमानदारी से अपने विचार व्यक्त करने के लिए हमें अपनी दृष्टि अपेक्षा कृत सूक्ष्म करनी होगी तभी वह मर्म को भेद सकेगी। शुक्ल जी का यह कथन भी अतिरंजित है कि **"तोते के मुँह से पहले ही पहल पद्मावती का वर्णन सुनते ही रत्नसेन का मूर्छित हो जाना और पूर्ण वियोगी बन जाना अस्वाभाविक सा लगता है।"** वस्तुतः रत्नसेन की 'प्रेम-दशा' क्रमशः विकसित हुई है।

क्रिस्टोफर मार्लोव नामक अंग्रेजी कवि और नाटककार ने लिखा है—
"Who ever loved that loved not at first Sight ?"
जिसने प्रथम दर्शन से प्रेम नहीं किया उसने प्रेम ही नहीं किया। रत्नसेन को पद्मावती के प्रति अनुरक्त करने के लिए सुआ उसी प्रकार आया था जैसे नल को अनुरक्त करने के लिए दमयन्ती का हँस तथा शिव को अनुरक्त करने के लिए देवगण प्रेरित कामदेव। राम और सीता का भी पूर्व परिचय नहीं था तथापि उनमें प्रेम हो आया था। वस्तुतः आचार्य शुक्ल का अपने निजी नीति और औचित्य का मान दंड प्रत्येक स्थान के लिए युक्ति संगत नहीं बैठता। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनके वियोग में संतप्त गोपियों की विरह दशा पर भी उन्होंने इसी प्रकार का आक्षेप किया है।

जायसी के प्रेम गाथा की दूसरी विशेषता है—फारसी के एकांतिक और आदर्शात्मक प्रेम के साथ लोक पक्ष का भी मिश्रण कर देना। पद्मावत के पूर्वार्द्ध में प्रेम का जो स्वरूप है वह एकांतिक और आदर्शात्मक है। इस प्रेम में नायक अथवा नायिका ने जो कठिनाइयाँ सही हैं, वे सब उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। उन्होंने जो साहस दृढ़ता और वीरता भी दिखाई है वह केवल अपने प्रेम की प्राप्ति के लिए, लोक कर्तव्य का कहीं उसमें पता तक नहीं है।

भारतीय प्रेम पद्धति इसके विपरीत होती है। वह लोक सम्बद्ध तथा व्यवहारिक होती है। वह जीवन पर समग्रतः छाई रहती है। सामान्य अनुभूति की ईंटों पर उसके भव्य-भवन का निर्माण होता है। वह एक मात्र वैयक्तिक न होकर सार्वजनीन होती है। राम का भालु-कपि से मित्रता जोड़ना, समुद्र पर पुल बांधना तथा रावण से युद्ध करना केवल सीता को प्राप्त करने का एकमात्र प्रयास ही नहीं कहा जा सकता, बल्कि उसमें लोकरंजन के साथ-साथ लोकहित की भी भावना काम कर रही थी। इसे अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें राम के उन शब्दों को याद करना होगा जो उन्होंने भूतल भार उतारने के सम्बन्ध में हरण से पूर्व सीता से कहा था—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करिब ललित नर लीला ।।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जौं लगि करौं निसाचर नासा ।।
जबहि राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ।।
निज प्रतिविम्ब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सविनीता ।।
लक्षिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भग्वाना ।।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि लोक पक्ष पर अपेक्षाकृत अधिक रही है । भारतीय कवि होने के नाते जायसी ने भी पद्मावत के उत्तरार्द्ध में लोक-व्यवहार का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में किया है । राजा रत्नसेन के दिल्ली में बन्दी होने पर, उसकी मृत्यु पर सती होने पर प्रेममार्ग की जिस दृढ़ता और समर्पणशीलता का वर्णन है वह लोक पक्ष समन्वित है ।

रत्नसेन के दिल्ली में बन्दी हो जाने का समाचार जब पद्मावती को मिला तो वह बहुत दुःखी हुई । सखियों ने जैसे-तैसे उसे समझाया-बुझाया । रानी के चित्त को शान्ति कहाँ । वह पैदल ही गोरा-बादल के द्वार पर गई। कमल के समान चरण कभी पृथ्वी पर नहीं पड़े थे, पैदल चलने से उनमें छाले पड़ गये। पति बन्दी था, इसलिए रानी को उस चिन्ता में यह दुःख कुछ भी न जान पड़ा। रानी का आना सुनकर गोरा-बादल आश्चर्य में डूबे सहसा घर के अन्दर से निकल पड़े । उनकी समझ में न आया कि क्या मामला है । उन्होंने रानी को बैठने के लिए एक सुनहरा सिंहासन रखा पर रानी उस पर न बैठी । उसने विरह कातर स्वरों में अपना निवेदन करना आरम्भ किया—

तुम गोरा बादल खँभ दोऊ । जस भारथ तुम्ह और न कोऊ ।।
दुख विरवा अब रहै न राखा । मूल पतार सरग भई साखा ।।
छाया रही सकल महि पूरी । विरह बेलि होइ बाढ़ि खजूरी ।।
तेहि दुख केत बिरिख बन बाढ़े । सीस उघारे रोवहि ठाढे ।।
विहरा हिये खजरि कवीया । विहरै नहि यह पाहन-हीया ।।
पिय जहँ बंदि जोगिनि होइ धावौं । हौं होइ बंदि पियहि मोकरावौं ।।

सूरज गहन गरासा, कवल न बैठे पाट ।
मह पंथ तेहि गवनव, कंत गए जेहि बाट ।।

इन पंक्तियों में कवि ने पद्मावती को बड़ी ही पवित्र और उच्च भाव भूमि पर खड़ा किया है। हृदय की संवेदन शीलता दर्शनीय है।

इसी प्रकार राजा के योगी होकर घर से निकलने के समय उसकी माता तथा रानी के रो-रोकर रोकने की चेष्टा का वर्णन भी जायसी ने बड़े अनूठे और मार्मिक ढंग से किया है। पद्मावती से समागम होने पर उसके रस रंग का वर्णन तथा विदा होते समय सखियों और परिजनों के स्वाभाविक दुख का वर्णन जायसी की अपनी विशिष्टता लिए हुए है। पद्मावती अपूर्व सुन्दरी है, उसकी समता इस विश्व में और कोई नहीं कर सकता; फिर भी वह नागमती से झगड़ती है।

दुवौ सवति मिलि पाटबईठी। हिय विरोध, मुँह बातें मीठी॥
वारी दिस्टि सुरंग सुठि आई। हँस पदुमावति बात चलाई॥
वारी सुफल आहि तुम्ह रानी। है लाइ पै ताइ न जानी॥
नागेसरि औ मालति जहाँ। सुखद राउ न चाहिअ तहाँ॥
अहा जो मधुकर कँवल पिरीती। लागेउ आइ करील की रीती॥
पहिले फूल कि दहुँ फर, देखिअ हिये विचारि।
आँव होइ नेहिठाइँ, जाँबु लागि रहि आरि॥

× × ×

अनु तुम कही नीकि यह शोभा। पै फुल सोइ भँवर जइ लोभा॥
सँवरि जावु कस्तूरी चोबा। आँव नो ऊँच, तो हिरदय रोवाँ॥
तेहिगुन अस भै जांबु पियारी। लाई आनि साँझ कै बारी॥
सोकस पराई बारी दूखी। तजै पानि धावहिं मुँह सूखी॥
उठै आगि दुइ डारि अमेरा। कौन साथ तेहि वैरी केरा॥
जो देखी नागे सर बारी। लाग मरै सब सुगा सारी॥
जेहि तरिवर जो बाढ़े, रहै सो अपने ठाऊँ।
तजि केसरि औ कुन्दहि, जाँउन पर भँवराऊँ॥

× × × ×

कंवल के हिय रोवाँ तौ केसरि। तेहि नहिं सरि पूजै नागे सरि ॥
जँह केसरि नहिं उवरै पूँछी। बर पाकरि का बोलहिं छूँछी ॥
जो फर देखिय सोइय फीका। ताकर काह सराहिअ नीका ॥
रहु अपनी तै बारी, मों सौं जूझू न बाँझ।
मालति उपम कि पूजै, बनकर खूझा खाझ ॥

सपत्नियों का यह वाक्युद्ध जायसी ने भारतीय पद्धति के अनुसार और लोकपक्ष पर आधारित दिखाया है। व्यवहारिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है।

राघव चेतन को जब राजा ने निर्वासन की आज्ञा दे दी, उस समय राज्य के अनिष्ट की आशंका से पद्मावती उसे अपना एक कंगन दे संतुष्ट कर देना चाहती है। एक रानी के रूप में राज्य के प्रति उसमें जो दूरदर्शिता होनी चाहिए, इस स्थल पर प्रकट होती है।

पद्मावत के उत्तरार्द्ध में वर्णित ये उपर्युक्त सभी स्थल लोकपक्ष में आते हैं। इनसे हमें पता चलता है कि जायसी के ऊपर भारतीय जीवन, उसकी गतिविधि और प्रेम-परम्परा की गहरी छाप है।

जायसी का प्रेम उच्चात्युच्च भाव भूमि पर स्थित ईश्वरोन्मुख प्रेम है। वह एक नित्य सुन्दर, एक रस एवं एकान्तिक आनन्दप्रद पदार्थ है। उसे प्राप्त करने के लिए, प्रेमी को भाँति-भाँति के कष्ट उठाने पड़ते हैं। यहाँ तक कि जान की भी बाजी लगानी पड़ती है। सूफीमत से प्रभावित होने के नाते जायसी ने प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का बड़ा विशद एवं भयंकर वर्णन किया है। रत्नसेन रूपी आत्मा पद्मावती रूपी परमात्मा से मिलने की चाह में अनेक कठिनाइयों का सामना बड़े धैर्य के साथ करती है। परिणाम स्वरूप अन्त में उसे इष्ट की प्राप्ति हो जाती है। लैला-मजनू और शीरी फरहाद की कहानियों में जो मिलनोत्कंठ, त्याग और प्रेम का चरम उत्कर्ष दिखाया गया है, वह सब हमें जायसी में उससे भी कहीं अधिक सशक्त रूप में मिलता है। संयोग-वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही वर्णन हमें जायसी

के पद्मावत में देखने को मिलता है। सारी कहानी को अध्यात्म के रंग में रंगकर मानों कथानक में कवि ने प्राण प्रतिष्ठा कर दी हो।

अन्त में डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के शब्दों में निष्कर्ष रूप में हम यह कहेंगे कि 'जायसी का पद्मावत एकांतिक प्रेम की गढ़ और गम्भीर कृति होने पर भी पारिवारिक और सामाजिक जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है। यद्यपि सामाजिक जीवन के जो चित्र उत्तरार्द्ध में मिलते हैं उनका अधिक विकास नहीं हुआ; फिर भी यात्रा, युद्ध, सपत्नी-कलह, मातृ-स्नेह, स्वामि-भक्ति, वीरता, छल, कृतघ्नता तथा सतीत्व आदि वृत्तियों का समावेश किया गया है। यह कहना न होगा कि प्रेम का यह एकान्तिक स्वरूप भावात्मक शैली के अन्तर्गत गिना जायगा और पारिवारिक या सामाजिक प्रेम का स्वरूप व्यवहारात्मक शैली के अंतर्गत आयेगा। इस प्रकार अब यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी की प्रेम गाथा में भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है।"

प्रश्न ८—जायसी की तत्कालीन तथा पूर्ववर्ती विभिन्न परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराइए।

प्रत्येक कवि के काव्य तथा उसमें निहित सन्देश और विचार धाराओं पर तत्कालीन एवं पूर्ववर्ती विभिन्न परिस्थितियों, यथा—राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक और सांस्कृतिक आदि, का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है। जायसी के कवि और साहित्य पर भी इन सबका अपना प्रभाव है। अस्तु इनकी पृष्ठ भूमि से परिचित होना नितांत आवश्यक है, तभी हम जायसी-साहित्य का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे।

राजनैतिक परिस्थिति—हर्ष का साम्राज्य आर्यों का अंतिम सुदृढ़ साम्राज्य था। उसके अवसान पर देश में अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो गई। इनके शासक योग्य, प्रतिभा सम्पन्न तथा वीर होते हुए भी स्वार्थपरता के नाते राष्ट्रहित की ओर ध्यान नहीं दे सके। ऐसी ही परिस्थिति में, नवीन धार्मिक आवेश से अनुरक्त और लूट के लिए लालायित तथा सुसंगठित इस्लामी

सत्ता ने भारत में प्रवेश किया। कुछ वीर शासकों ने उसका सामना करना चाहा परन्तु आपसी फूट के कारण वे अपने प्रयत्न में असफल रहे। विधाता की दृष्टि भारत के प्रतिकूल तथा विदेशियों के अनुकूल थी। फलस्वरूप उनकी जड़ें जमने लगीं और आतंक बढ़ चला। हिन्दुओं के सामने ही उनके मंदिर और देवालय गिराये जाते, देवताओं की मूर्तियाँ विनष्ट की जातीं और उनकी धार्मिक पुस्तकें जला दी जातीं। निरपराध स्त्रियों और बच्चों के साथ अमानुषिक और नृशंसता पूर्ण व्यवहार किया जाता। नारियों की इज्जत लूटी जाती और विविध प्रकार से उन्हें अपमानित किया जाता; पर हिन्दू जनता मूक और अन्ध बनी भीतर ही भीतर विष का घूंट पी लेने तथा उससे उत्पन्न व्यथा को सह लेने के अतिरिक्त किसी प्रकार का विरोधी कदम नहीं उठा सकती थी। जिसने सिर उठाया उसे वहीं दबा दिया गया या उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। दिल्ली सम्राट महाराज पृथ्वीराज अन्तिम हिन्दू राजा हुए जिनके अस्त के साथ भारतीय गौरव और वीरता भी अस्त हो गई। मुसलमानों का भारत पर एकाधिपत्य हो गया।

तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक मुस्लिम साम्राज्य यदा-कदा उथल-पुथल के साथ चलता रहा। फिरोज की मृत्यु के बाद तैमूरी आक्रमण ने (१४५५ वि०में) उसकी जड़ों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सिकंदर लोदी ने कुछ सीमा तक स्थिति संभाली किन्तु उसके उत्तराधिकारियों की अयोग्यता से देश के नवाब, राजा तथा सूबेदारों में विरोध और विद्रोह के भाव आ गए। ठीक इसी समय बाबर ने आक्रमण किया। उसे अपने आक्रमण में सफलता मिली, इब्राहीम लोदी बुरी तरह पराजित हुआ। राजपूतों में अभी कुछ वीरता शेष थी। इसलिए १५२७ ई० में राणा सांगा के नेतृत्व में उन्होंने कनवाहा का प्रसिद्ध युद्ध किया किन्तु विधि के प्रतिकूल होने से बाबर फिर विजयी हुआ। राजपूतों की हिम्मत एकदम टूट गई। चन्देरी के मेदिनी राव ने भी बाबर से लोहा लिया, तत्पश्चात् अफ़गानां की सम्मिलित शक्ति से १५२९ ई० में घाघरा के मैदान में बाबर को भयंकर युद्ध करना पड़ा। सर्वत्र वह विजयी हुआ। सन् १५३० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। हुमायूँ राज्य के साथ-साथ

कठिनाइयाँ भी उत्तराधिकार में ले गद्दी पर बैठा। राज्य की स्थिति डाँवाडोल थी अस्तु १५३९ में अफगानों ने शेरशाह के नेतृत्व में पुनः धावा बोल दिया। चौसा के युद्ध में हुमायूँ पराजित हुआ और भाग कर ईरान की शरण ली। उसके एक भी भाई ने उसे आश्रय नहीं दिया। शेरशाह जब तक रहा उसने बड़ा सुन्दर शासन प्रबन्ध चलाया, उसकी मृत्यु के उपरान्त अफगानी शासन भी डगमगाने लगा। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि सन् १५५५ ई० में हुमायूँ ने अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। मुगल साम्राज्य की जड़ जम गई। अब मुगल परदेशी न रह पूर्णतः भारतीय बन गये।

इस राजनैतिक उथल-पुथल का प्रभाव जायसी और उनके साहित्य पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा। अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक वे इस हलचल से प्रभावित होते रहे और युग के अनुकूल उन्होंने अपने साहित्य को दिशा दी।

सामाजिक-परिस्थिति—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इस सत्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। समाज को गतिविधि से उसका जीवन प्रभावित रहता है। समाज से अलग मनुष्य की सत्ता ही नहीं है। उसके स्वाभाविक और बहुमुखी विकास के लिए समाज का होना नितांत आवश्यक है। इसीलिए अरस्तू (Aristotel) ने कहा है कि "Man perfected by society in the best of all animals; he is the most terrible of all when he lives without law and without justice" अर्थात् **"समाज से रक्षित मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। नियम और न्याय से उच्छृङ्खल मनुष्य अति भयावह जंतु है।"** समाज एक प्रगतिशील और प्राकृतिक संगठन है जिसका आयोजन मनुष्य के उत्तरोत्तर विकास और वृद्धि में सहायक है।

दो समाजों का जब सम्मिलन होता है तो वे परस्पर एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं। विदेशी मुस्लिम समाज ने जब भारत में प्रवेश लिया तो उसका प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा और भारतीय समाज का उस पर भी। मुस्लिम समाज विजेता समाज था और भारतीय समाज विजित समाज ; ऐसी

अवस्था में मुस्लिम समाज का मनमाना व्यवहार और अत्याचार भारतीय समाज के साथ चलने लगा। हिन्दुओं के हृदय में राजनैतिक पराभव से भारी भय उत्पन्न हो गया था। विजेताओं के आतंक ने उनके धीरज को डगमगा दिया था। हिन्दुओं के सामने अब अपने अस्तित्व का भी प्रश्न था। मुसलमान अपनी सत्ता के साथ जब धर्म प्रचार भी करने लगे तब तो समाज की स्थिति और भी विषम हो उठी। हिन्दुओं में मुसलमानों से लोहा लेने की शक्ति नहीं थी; और न वे सामाजिक और धार्मिक विद्रोह ही कर सकते थे। अपने धर्म और सामाजिकता पर होते हुए अत्याचार को चुपचाप सह लेने के अतिरिक्त उनके पास और कोई चारा नहीं था। मुसलमानों में बहुमुखी संकीर्णता थी और हिन्दुओं में इसके विपरीत विशाल उदारता। अस्तु ! मुस्लिम-समाज ने राजनैतिक सत्ता की आड़ में हिन्दुओं की उस उदारता और सरलता का अनुचित लाभ उठाना आरम्भ किया। तात्पर्य यह कि राजनैतिक दासता के साथ हिन्दुओं का सामाजिक पतन भी होने लगा। वे राज्य के शत्रु समझे जाते थे और उन्हें उच्चाधिकारों से वंचित रखा जाता था। अलाउद्दीन ने काजी मुगीसुद्दीन से कहा था कि **"इस बात का पूर्ण विश्वास रखो कि जब तक हिन्दू निर्धन नहीं हो जायेंगे तब तक वे किसी तरह नम्र और आज्ञाकारी नहीं बनेंगे।"** इस तरह हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति निरंतर बिगड़ती गई। अलाउद्दीन से पूर्व की दशा भी बड़ी ही विषम और करुणाजनक रही है। अलाउद्दीन ने राजनैतिक और सामाजिक सख्ती तो रखी किन्तु धर्म पर आक्षेप विशेष नहीं किया। इस सख्ती का नतीजा यह हुआ कि सारी जनता रोटी का प्रश्न हल करने में इस तरह उलझ गई उसे विद्रोह का अवसर ही न मिल सका। खुसरो ने हिन्दुओं के प्रति उदार नीति का व्यवहार किया और प्रथम दोनों तुगलकों ने भी हिन्दुओं के प्रति कठोरता न दिखाई। फिरोज और सिकन्दर लोदी के समय में पुनः हिन्दुओं की सामाजिकता पर भारी आघात होने लगा।

इस प्रकार दोनों समाजों का तीन-चार शताब्दियों तक संघर्ष चलता रहा। इस बीच विजयी मुसलमानों ने विजित हिन्दुओं की कुछ बातें अपनाईं और हिन्दुओं ने भी नए शासकों को प्रसन्न करने के लिए, रोटी की समस्या

को हल करने के लिए तथा अपनी सुरक्षा के लिए मुसलमानों की कुछ बातों को अपना लिया। पर्दे का प्रचार चल निकला। सती प्रथा भी थी। समाज में जादू टोना का महत्व बढ़ा। काफी दिनों से एक साथ रहने से परस्पर भाई चारा का सम्बन्ध दृढ़तर हुआ। अब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना हृदय खोलने लगे। जनता की प्रवृति भेद से अभेद की ओर हो चली। मुसलमान हिन्दुओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए और हिन्दू मुसलमानों का दास्तान हमजा। नल और दमयन्ती की कथा मुसलमान जानने लगे और लैला मजनू की हिन्दू। ईश्वर तक पहुँचाने वाला मार्ग ढूंढ़ने की सलाह भी दोनों कभी-कभी साथ बैठकर करने लगे। इधर भक्ति मार्ग के आचार्य और महात्माओं ने भगवत्प्रेम को सर्वोपरि ठहराया तो उधर सूफी महात्माओं ने मुसलमानों को इश्क हकीकी का सबक पढ़ाया। पन्द्रहवीं शताब्दी के समाज के रूप में काफी परिवर्तन आ गया था। राजनैतिक वातावरण एकदम शान्त हो गया था और सामाजिक वातावरण में काफी मेल-मिलाप का भाव उत्पन्न हो गया था। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने यह जान लिया था कि हमें अपना जीवन इस भारत वसुन्धरा पर ही व्यतीत करना है। इसलिए अधिक मात्रा में सामाजिक भिन्नता रखने से जीवन निरन्तर दुखमय होने की अपेक्षा सुखमय नहीं हो सकेगा। पन्द्रहवीं शताब्दी के भारतीय मुसलमानों की यह प्रवृत्ति हो गई थी कि वे अपने पड़ोसी हिन्दुओं से मेल-मिलाप करें। हिन्दू बेचारे तो पराजित, असहाय और परवस थे ही। उन्हें जैसे भी रखा जाता वैसे रहने के लिए वे मजबूर थे। मेल-मिलाप की इस प्रवृत्ति को एक ओर हुसेनशाह आदि मुसलमानों ने और दूसरी ओर चैतन्य, रामानन्द, कबीर आदि हिन्दू साधुओं ने बहुत उत्तेजना दी।

सांस्कृतिक-परिस्थिति—भारत अपनी सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता एवं महानता में विश्व का अग्रणी देश है। हमारा ऋगवेद विश्व का प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। यहीं समस्त कलाओं और विज्ञानों ने जन्म लिया था फिर वे विश्व के अन्य भागों में फैले थे। विदेश से आने वाले यात्रियों ने अपने यात्रा विवरणों में भारत की महानता की ओर पर्याप्त संकेत

किया है। यहाँ का जीवन सादा, पवित्र तथा आडम्बर हीन रहा है। शुद्ध सात्विक सत्याचरण यहाँ की मनुष्यता की कसौटी रहता आया है। यही कारण है कि यहाँ का जीवन विशृङ्खल न हो एक निर्दिष्ट लक्ष्य का पथिक रहा है।

भारतीय प्राचीनता प्रिय होते हुए भी भिन्न-भिन्न जातियों और व्यक्तियों के आचार-विचार तथा धर्म सम्बन्धी विभिन्नताओं को स्वीकार करते हैं। ये विभिन्नताएँ प्रगति और विकास के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य हैं। इसी नाते भारतवासी जाति व्यवस्था के कड़े बंधन में बंधे होने पर भी विभिन्न व्यक्तियों के धर्म, संस्कृति तथा स्वभाव को घृणा या क्षोभ की दृष्टि से नहीं देखते। फलतः मुसलमानों से पूर्व जितनी जातियाँ आईं वे सब यहाँ के वातावरण में घुल-मिल गईं। वे सर्वथा भारतीय बन गईं। भारत ने उनका स्वागत किया, उनके आचार-विचार, धर्म और स्वभाव भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गए। सामंजस्य भावना भारतवासियों की अपनी भावना रही है।

सिन्ध विजय के पश्चात् भारत का इस्लाम से सम्पर्क हुआ। विजयी होकर भी अरबों ने सभ्यता तथा विद्या आदि के लिए भारत के सम्मुख मस्तक झुकाया। भारत की सभ्यता ने उनके लिए अपना कोष खोल दिया। अरबों द्वारा भारतीय सभ्यता का प्रचार समस्त योरप और मिश्र में हुआ। किन्तु जब मुस्लिम सभ्यता के साथ द्वितीय बार संघर्षण हुआ तो उस समय जो विचार इस्लाम धर्म में प्रविष्ट हो चुके थे वे भारतीय होकर भी पराये हो गए। इस बार का मुस्लिम बड़ा असहिष्णु, कुरान तथा इस्लाम के सिवाय अन्य समस्त पुस्तकों तथा धर्मों की आवश्यकता न समझने वाला, विजय की मादकता में विवेकहीन और भारत की सम्पत्ति की चकाचौंध से प्रायः अन्धा होकर आया था। उसका यह सिद्धान्त था कि विजित जातियों की विचारधारा, आचार-विचार, विश्वास तथा धर्म आदि को भेंट देना चाहिए। इस मुस्लिम विजय ने बड़ी उथल-पुथल कर दी। हिन्दू धर्म को बड़ा धक्का लगा, पण्डितों और पुरोहितों का सत्कार उठ सा गया। हिन्दू स्मारक नष्ट कर दिए गये। साहित्य के बिना राजाश्रय के प्रपन्नावस्था को प्राप्त हुआ। एक वाक्य में यों समझिये कि राजनैतिक पराजय सांस्कृतिक मृत्यु प्रतीत होने लगी।

धीरे-धीरे काल की कठोर आवश्यकताओं के साथ दोनों संस्कृतियों का संघर्ष कम हुआ। परस्पर मेल-मिलाप बढ़ा। एक दूसरे को समझने का प्रयत्न चला। कला-कौशल आचार-व्यवहार सब में एक दूसरे की छाप पड़ने लगी। हिन्दुओं के इस काल के मन्दिरों और भवनों में नवीनता का पुट लक्षित होता है। चित्रकला में भी वस्तुकला की भाँति ही नवीनता है। हिन्दू पण्डितों और ज्योतिषियों ने मुसलमानों से अनेक बातें सीखीं। घरेलू व्यवहार, पहनावे, संगीत, मेला, उत्सव तथा दरबारी ढंग आदि पर मुसलमानी प्रभाव अधिक पड़ा।

सामान्यतया बाहरी बातें एक संस्कृति की दूसरी संस्कृति में जो मिल सकती थीं मिलीं। इससे सामाजिक वातावरण में भी काफी शांति आई और परस्पर प्रेम-भावना किसी सीमा तक दृढ़ हुई। पर भारतीय संस्कृति की मूल धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही।

धार्मिक परिस्थिति—भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहां प्रारम्भ से ही जीवन, धर्म और दर्शन का समन्वय रहा है। आर्य धर्म में कर्म, ज्ञान और उपासना का महत्वपूर्ण योग था। कालान्तर में कर्मकांड की प्रतिष्ठा बढ़ चली। फिर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जैन और बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। इन धर्मों में अछूतों के लिये विशेष आकर्षण था। राजाश्रय पाकर बौद्ध धर्म का खूब प्रचार रहा किन्तु समय के परिवर्तन ने उसमें भी अवरोध उत्पन्न करना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे इस धर्म का वातावरण भी दूषित हो चला, जिसके फलस्वरूप उसकी पवित्रता से लोगों का विश्वास उठने लगा। दूसरी बात यह भी थी कि बौद्ध धर्म का नास्तिकवाद भारत की प्रकृति के विरुद्ध था और उसकी अहिंसा क्षत्रियों को अरुचि कर थी। ऐसी ही डावाँडोल परिस्थिति में जगत गुरु शंकराचार्य ने बड़ा प्रबल विरोध किया और उसकी धज्जियाँ उड़ा दीं। बौद्ध धर्म को भारत में कहीं त्राण न मिला। वह पतन मार्ग से पैर सिर पर रख कर भागा। हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हुआ और वेद तथा उपनिषदों की नवीन व्याख्यायें चल पड़ीं। इस नवीन हिन्दू धर्म में जैन, बौद्ध आदि सभी

धर्मों का सार तत्व निरूपित था। ईसा की सातवीं-आठवीं शती में शिव, विष्णु तथा अन्य देवताओं की पूजा का सारे देश में प्रचार हो गया। भक्ति की महिमा बढ़ चली।

भक्ति-आन्दोलन—शंकराचार्य उत्तरी भारत में अपनी भक्ति का प्रचार कर रहे थे। वे अद्वैत के समर्थक थे। दक्षिणी भारत में रामानुजाचार्य के नेतृत्व में अद्वैत का विरोधी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उन्होंने नवधा भक्ति का बड़ा ही मनमोहक स्वरूप हिन्दू जनता के समक्ष रखा जिससे वह विस्मय विमुग्ध हो गई। हिन्दू धर्म में एक नवीन चेतना जागी। हिन्दुओं को अद्‌भुत आलम्बन प्राप्त हुआ। दक्षिणी भारत का यह भक्ति आँदोलन शुद्ध हिन्दू धर्म से अनुमोदित था इसलिये वह हिन्दुओं को अपेक्षाकृत अधिक ग्राह्य हुआ। बोद्धों के दुःखवाद से ऊबी तथा राजनैतिक विफलता से त्रस्त जनता भक्ति की ओर उमड़ पड़ी।

रामानुजाचार्य की वैष्णव भक्ति केवल उच्च वर्ण के लिये ही थी, शूद्र उसके अधिकारी न थे किन्तु इनके शिष्य रामानन्द ने इस भेदभाव को मिटा दिया और उसे समस्त मानव जाति के लिये हितकारी बताया। उन्होंने अपने उपदेश की भाषा हिन्दी रखी। रामानन्द ने विष्णु के स्थान पर राम की भक्ति का प्रचार किया। भगवान राम की लीलाओं, उनके लोक-रक्षक रूप तथा भक्तवत्सलता से जनता पूर्ण परिचित थी। इस प्रकार भक्ति मार्ग अधिक सुगम हो गया। लगभग इसी समय बारहवीं शताब्दी में वृन्दावन में निम्बार्क ने वैष्णव भक्ति का प्रचार किया जिनकी रास लीलाओं से जनता का मनोरंजन हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि चौदहवीं शताब्दी तक सम्पूर्ण भारत में भक्ति-भावना पूर्ण रूप से फैल चुकी थी। इस आन्दोलन से प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति हुई, जाति बन्धन शिथिल हुए, गार्हस्थ्य जीवन में पवित्रता आई, स्त्री पद उन्नत हुआ, लोगों में उदारता तथा सहिष्णुता फैली।

इस्लाम और भारत—इस्लाम विश्वास का धर्म है। ईश्वर प्रेम की अपेक्षा ईश्वर प्रकोप से भयभीत होकर इस धर्म के अनुयायी उसके सन्देशों पर विश्वास करते हैं। इस्लाम की नींव ही इलहाम (ईस्वरी सन्देशों) पर है।

विद्वान खलीफा हारूँ रशीद ने भारतीय विद्वानों को अपने यहाँ निमन्त्रित कर अनेक दर्शन और अन्य उपयोगी ग्रंथ अरबी भाषा में अनूदित कराये थे। इस प्रकार भारत प्रवेश से पूर्व ही इस्लाम पर भारतीय दर्शन और धर्म (विशेषत: बौद्ध धर्म) की छाप पड़ चुकी थी।

६३६ ई० में मुसलमान व्यापारी मालाबार तट पर समुद्र मार्ग से आये। भारतवासियों ने उनका स्वागत किया और अनेक सुविधायें प्रदान कीं। धीरे-धीरे इन मुसलमानों ने अपना धर्म प्रचार आरम्भ किया। आठवीं शती में मुहम्मद-बिन कासिम की सिन्ध विजय के साथ इस्लाम धर्म सारे उत्तरी भारत में फैलने लगा। सिन्ध विजय के साथ ही 'मुल्तान', तसुव्वुफ का केन्द्र तथा फकीरों का अड्डा बन गया। ये सूफी और फकीर देहातों में फैलकर इस्लाम के प्रचार में जुट गए। वैसे हिन्दुओं को इस धर्म में कोई आकर्षण नहीं था परन्तु ग्यारवीं शती में जब इस्लाम तलवार के बल पर फैलने लगा तब परिस्थिति विषम और अनियन्त्रित हो उठी। इस्लाम धर्म विजयिनी सत्ता का धर्म था इसलिये उसके प्रचार में सारी शक्ति लगा दी गई। व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रलोभन से कुछ हिन्दू इधर खिच आये। इसके अतिरिक्त अछूत वर्ग की हिन्दू धर्म से असन्तुष्टि ने भी इस धर्म के फैलाने में काफी सहायता पहुँचाई। अछूतवर्ग इधर आकृष्ट हुआ। तलवार के जोर, प्रलोभन और अछूतों की असन्तुष्टि से इस्लाम का प्रचार हुआ। वैसे स्वेच्छा से बहुत कम लोगों ने इस्लाम को अपनाया।

इस प्रकार कई शताब्दियों तक संघर्ष चलता रहा। कुछ मूलभूत सिद्धांतों और उनके व्यवहार में अन्तर विशेष होने के कारण विशाल हिन्दू धर्म भी जिसने बौद्ध धर्म ऐसे महान धर्म को हजम कर 'बुद्ध जी' को अपने अवतारों में सम्मिलित कर लिया था, इस्लाम को अपने में न मिला सका। किन्तु काफी दिनों के साहचर्य के उपरान्त दोनों में कट्टरता का आग्रह कुछ कम हो गया। मुसलमान भी जान गये कि अब हम पूर्ण भारतीय हैं। सूफियों ने हिन्दुओं की बातें अपने सहधर्मियों तथा अपनी बातें हिन्दुओं को समझाना आरम्भ किया। फलतः दोनों एक दूसरे के समीप आने लगे। मजार, दर्शन, मनौती और नजूम

हिन्दू जीवन में घुल-मिल गये। चौदहवीं शताब्दी के आग तो नामदेव और नानकदेव की शिक्षाओं में हिन्दू तथा मुस्लिम विचारों का पूर्ण सामञ्जस्य है। उन्होंने जाति व्यवस्था, बहुदेववाद तथा मूर्ति पूजा की कड़ी भर्त्सना की और सत्य पवित्र जीवन का उपदेश दिया। रामानन्द और चैतन्यदेव भी साधारण अन्तर से इसी पथ के पथिक बने। तात्पर्य यह कि हिन्दुओं ने इस दिशा में काफी प्रयत्न किया, यद्यपि संकीर्ण विचारों के नाते मुसलमान अपनी सीमा से अधिक आगे नहीं बढ़े।

बंगाल में गौड़ के सम्राट हुसेनशाह द्वारा संस्थापित एक संप्रदाय विशेष चला जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे और एक ही देवता 'सत्य पीर' की पूजा करते थे। महाराष्ट्र में भी संतों ने वही काम किया जो उत्तरी भारत में कबीर और नानक ने। पन्द्रहवीं शताब्दी तक मुसलमान सूफी और फकीर पूरे पंजाब में फैल चुके थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन तथा मुल्तान आदि सूफियों के प्रसिद्ध केन्द्र बन चुके थे। यहीं पर सूफी संप्रदाय नाथ पंथियों के भी सम्पर्क में आया और उससे अनेक बातें ग्रहण कीं। इस क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का प्रबल प्रचार हुआ। नानकदेव का प्रमुख ध्येय ही हिन्दू मुस्लिम ऐक्य था। वे किसी एक धर्म या जाति के नहीं थे वरन समस्त संसार के थे। उनका धर्म नितांत क्रियात्मक, शुद्ध और सूफी सिद्धान्तों के अनुरूप था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामानन्द के भक्ति मार्ग में, नानकदेव के सिक्ख संप्रदाय में, गोरखनाथ के नाथ-पंथियों में, बंगाल के सत्यपीर वादियों में, कबीर दादू आदि पंथियों में, और महाराष्ट्र के अन्य संतों में हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना कार्य कर रही थी। जाति व्यवस्था की कठोर पाबन्दी सबको असह्य हो रही थी तथा **"हरि को भजै सो हरि को होई"** का प्राधान्य था। बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ जो अद्वैतवाद से मूलतः भिन्न है। गुरु का स्थान लगभग ईश्वर के बराबर ही महत्वपूर्ण समझा गया—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, का के लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया बताय॥ कबीर॥

अतः गुरु भक्ति चल पड़ी। गुरु-मुख से उपदेश का महत्व स्थापित हुआ। साधु संतों और फकीरों का महत्व बढ़ा और साथ ही समाधि-दर्शन, झाड़ फूंक, नजूम, करामात आदि में भोली जनता का विश्वास जगा। जन साधारण में सूफी फकीर, कनफटे जोगी, वैष्णव भक्त ही नहीं, अपितु समस्त भगवा वस्त्रधारी व्यक्ति श्रद्धा के पात्र हुए और सत्कार के अधिकारी। सारांश यह है कि सोलहवीं शताब्दी तक प्राचीन धार्मिक तथा सामाजिक बंधन शिथिल पड़ गए थे, ऐक्य ही सबका लक्ष्य था और जनता में श्रद्धा एवं विश्वास का स्रोत उमड़ पड़ा था।"—(डा० जयदेव)

साहित्यिक परिस्थिति—वीरगाथा काल के समाप्त होने के पहिले ही साहित्य के क्षेत्र में क्रांति आरंभ हो गई थी। मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने जनता के साथ साहित्य को अस्थिर कर दिया था। मुसलमानों की शक्ति और धर्म के विस्तार ने साहित्य का दृष्टिकोण बदल दिया था और हिन्दी साहित्य की धारा अपने पुराने उद्दाम तथा ओजस्वी वीरगाथात्मक रूप को छोड़कर भक्ति की प्रशान्त कलित कविता के रूप में प्रवाहित होने लगी थी। चारणों की रचनायें धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं। राजाश्रय समाप्त होने लगे थे। युद्ध क्षेत्र से पराजित, और अपनी जनता की रक्षा में असमर्थ राजाओं की प्रशस्तियाँ अब ये कवि किस मुँह से गाते। निदान साहित्य को राजदरबार छोड़ जंगलों तथा कुटियों में आश्रय लेना पड़ा और उसकी मूल धारा ही बदल गई। वस्तुतः वीरगाथा काल के साहित्य में साधारण जनता के काम की कोई चीज नहीं थी। इस नाते और भी वीरगाथा कालीन साहित्य अधिक लंबा जीवन न प्राप्त कर सका। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक मुसलमानों का राज्य भारत में पूर्ण रूप से स्थापित हो गया, और अब उनमें यह निश्चित धारणा आ गई थी कि हम भारतीय हैं। हमें अपना जीवन इसी भूमि में व्यतीत करना है। ऐसी दशा में उन्होंने हिन्दुओं से सानिध्य और उनके जीवन से सामंजस्य स्थापित करने वाले कदम उठाने आरम्भ किये। दोनों ही धर्मों को मानने वाले समझदार व्यक्ति अपने-अपने धर्म ग्रन्थों की खोज बीन करके सिद्धान्तों को प्रकाश में लाने लगे। उन बातों का प्रचार बढ़ चला जिनके आधार पर परस्पर मैत्री-भाव

दृढ़ हो सकता था । इस दिशा में अमीर खुसरो ने बड़ा सराहनीय कार्य किया । उन्होंने जन-साधारण तथा शासकों के बीच सहयोग स्थापित कराने के लिए, हिन्दी-फारसी शब्दकोष तैयार किया और उसकी प्रतियाँ सारे देश में बँटवा दीं । साथ ही मनोरंजन का साधन भी जुटाया । प्रचलित पहेलियों, मुकरियों आदि के अनुकरण पर प्रचलित भाषा में बड़ी सरस कविता की । उनके द्वारा भाषा का बड़ा उपकार हुआ । हिन्दी और फारसी दोनों के मिश्रण से उन्होंने एक ऐसी भाषा तैयार की जो हिन्दू मुसलमान दोनों को बड़ी मनमोहक लगी । उनकी यह भाषा खड़ी बोली का प्रारम्भिक स्वरूप प्रस्तुत करती है । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार उस समय की वास्तुकला तथा संगीतकला में, समाज तथा धर्म में, हिन्दू मुस्लिम आदर्शों के सम्मिलन की भावना कार्य कर रही थी, उसी प्रकार भाषा और साहित्य में भी वही ऐक्य भावना अग्रसर हो रही थी ।

इस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य भावना को गति देने में कबीर के काव्य का बड़ा महत्वपूर्ण योग है । कबीर के अतिरिक्त अन्य संतों ने भी इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया । कबीर ने हिन्दू मुस्लिम मलोमालिन्य मिटाने के लिए कुछ कठोरता से प्रहार किया । वस्तुतः उनका काल संक्रान्ति का काल था । राजनीति, समाज और धर्म—सर्वत्र अशांति तथा अव्यवस्था की स्थिति थी । इसीलिए कबीर को सभी दिशाओं में क्रान्ति करनी पड़ी । उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों, पंडितों और पीरों, सिद्धों और फकीरों को उनके पाखंड तथा ढ़ोंग के लिए बुरी तरह फटकारा, धर्म की मूल बातों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और इस प्रकार एक ऐसे सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा की जो सबको ग्राह्य हो सकता था । उन्होंने हिन्दुओं के तीर्थ व्रत, मठ, मंदिर और पूजा आदि की निन्दा की तो मुसलमानों के नमाज और मस्जिद की भी खूब खबर ली और इस प्रकार दोनों की बुराइयों का दिग्दर्शन कराके उन्होंने कहा—

अरे इन दोउन राह न पाई ।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई ॥

इसके साथ ही उन्होंने राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन करते हुए बताया **'अल्ला राम की गति नहीं तहँ कबीर ल्यो जाय'**—अर्थात् राम-रहीम के विवाद से ऊपर उठकर इनसे परे एक अव्यक्त सामान्य शक्ति या सत्ता की ओर उनका संकेत था। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के आधार पर इस सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा के साथ हिन्दुओं की जाति-पाँति और छूआ छूत का विरोध करके उन्होंने अहिंसा, तप, सत्य, सुजनता तथा अन्य मानवीय गुणों के विकास पर जोर दिया। उन्होंने शुद्ध भाव से अपने सिद्धान्तों और विचारों का प्रकाशन किया।

जहाँ उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्य का प्रश्न है, तो इस सम्बन्ध में हमें यह न भूलना चाहिए कि उन्होंने मसि-कागद नहीं छुआ था और न हाथ में कलम गही थी, उन्होंने तो प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ा था और उसी से वे पंडित हुए थे। उनका काव्य अनुभव तथा सतसंगति एवं परिभ्रमण से अर्जित ज्ञान का अक्षय कोष है जो व्यय के साथ बढ़ता जाता है। ऐसी दशा में उनके काव्य को शास्त्रीय कसौटी पर कसना कवि के साथ अन्याय करना होगा। कबीर ने साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही किया हो, किन्तु उन्होंने जो सन्देश दिया है वह इस थोथी मर्यादा से बहुत ऊँचाई पर है। अनपढ़ और क्रांतिकारी कबीर के लिये यही उपयुक्त भी था। कबीर अनेकत्व से एकत्व, भेद से अभेद की ओर ले जाने वाले कवि थे। उनके युग की माँग ही थी—समन्वय, मेल-मिलाप। इसीलिये कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों के प्रतिबन्धों, असंगत विचारों और सिद्धान्तों की कड़ी भर्त्सना की तथा खिल्ली उड़ायी। वे केवल सत्य और सर्व हितकारी के प्रतिपादक थे, इस नाते वे नीरस लगे। उनके अक्खड़ व्यक्तित्व ने उन्हें और भी कटु बना दिया। उनकी उक्तियाँ चुभती हुई थीं, और उनमें सत्य का प्रकाश था; किन्तु व्यंजना तीखी होने के कारण वे सर्व-साधारण को ग्राह्य न हो सकीं। उनके प्रहार से लोग तिलमिला उठे। वस्तुतः इस समय ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो जनता के व्यथित हृदय को अपने स्नेह-स्पर्श से सुख और शांति पहुँचा सकता, साथ ही उसके जीवन में आशा,

विश्वास और नवचेतना का संचार कर सकता, सरसता घोल सकता। यह कार्य सूफी काव्यकारों ने सम्पन्न किया।

मुसलमानों को भारत में आये लगभग आठ शताब्दियाँ बीत चुकी थीं जिससे वे हिन्दूओं के जीवन की गतिविधि से पूर्ण परिचित हो चुके थे। इसलिये साहचर्य ने दोनों के सामाजिक और धार्मिक स्वरूप में काफी परिवर्तन कर डाला। दोनों एक दूसरे को अत्यधिक निकट से परख चुके थे, इसलिए अब वे परस्पर मिल-जुलकर जीवन-यापन करने की श्रेष्ठता के पक्ष में हो गए थे। शासन मुसलमानी था, इससे मुसलमानों के आमोद-प्रमोद के साथ ही मुसलमानी सिद्धान्तों का प्रचार भी हुआ जो आख्यानक कवियों की प्रेम-गाथाओं में प्रस्फुटित हुआ। प्रेम-गाथाकारों में प्रायः सभी मुसलमान थे, परन्तु इनकी विशेषता यह रही कि इन्होंने कहानियाँ हिन्दू राज घरानों से लीं। उन्होंने जनता की रुचि और शासकों के आकर्षण, दोनों का ध्यान रखा। इन कहानियों की सरसता ने मुस्लिम शासकों को अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणाम स्वरूप इन कवियों को भी दरबार में अन्य कलाकारों की भाँति उचित सम्मान मिलने लगा। कहानियों में शृङ्गार और करुणा को विशेष प्रश्रय मिला। इन कहानियों में लौकिक कथा के माध्यम से पारलौकिक या परमसत्ता के प्रति इन कवियों ने अपने प्रेम और विरह का वर्णन प्रस्तुत किया। अन्योक्ति का सहारा भी उन्हें इसी नाते लेना पड़ा। कहानियों के बीच-बीच में इन सूफी कवियों ने शुद्ध आध्यात्म की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है।

कहानियों की भाषा अवध प्रान्त की बोलचाल की भाषा है और उस समय तक विशेष रूप से व्यवहृत छन्द, दोहे तथा चौपाइयों में इनका निर्माण हुआ है। सभी कहानियाँ प्रायः प्रबन्ध काव्यों के रूप में हैं।

अन्त में डा० जयदेव के शब्दों में हम कहेंगे कि **"जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न इतने दिनों से भिन्न-भिन्न लोग अपने-अपने क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से कर रहे थे, सोलहवीं शताब्दी में उन समस्त भावनाओं का एकीकरण और भिन्न-भिन्न आदर्शों का सामंजस्य बड़े ही सरस एवं आकर्षक ढंग**

में सहृदयता पूर्वक उपस्थित करने का इन सूफी फकीरों ने स्तुत्य प्रयत्न किया।"

प्रश्न ६—सिद्ध कीजिए कि पद्मावत फारसी-शैली का एक मनसवी काव्य है।

मनसवी फारसी साहित्य की एक काव्य-शैली है जिसमें सामान्यतया निम्न-लिखित बातों का समावेश रहता है—

१. प्रत्येक पद अपने आप में स्वतंत्र और पूर्ण तथा तुकांत होता है। एक चरण के शब्द दूसरे चरण में नहीं जा सकते।

२. इसका प्रयोग अधिकतर वर्णनात्मक काव्यों, (यथा प्रेमाख्यान, उपदेशात्मक या धार्मिक) के लिए अधिक सुन्दर समझा जाता है।

३. इस शैली के काव्य के प्रारंभ में ईश्वर, पैगम्बर, पैगम्बर के मित्र, कवि के गुरु और सामयिक राजा की प्रशंसा रहती है। इसके पश्चात् कवि अपना परिचय तथा कथा का सांकेतिक सूत्र बताता है।

४. ग्रंथ के खंड या विभाग होते हैं फिर ये सर्गबद्ध किये जाते हैं। सर्गों का नाम वर्ण्य विषय के अनुसार रखा जाता है।

५. अन्त में उपसंहार होता है जिसमें कवि अपनी रचना का उद्देश्य तथा ग्रन्थ की समाप्ति की तिथि का उल्लेख करता है।

अब हम इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए 'पद्मावत' का परीक्षण करेंगे कि वह फारसी शैली का मसनवी-काव्य है या नहीं? क्रमशः एक एक बिन्दु को लीजिए।

१. जहाँ तक प्रथम बिन्दु का प्रश्न है पद्मावत का प्रत्येक पद अपने में स्वतंत्र, पूर्ण तथा तुकांत है। यहाँ हम एक अर्द्धाली की ही चर्चा कर रहें हैं जिसको पूर्ण चौपाई के रूप में जायसी ने अपनाया है। मसनवी में भी प्रत्येक दो मिसरे समतुकांत होते हैं। उदाहरण—

अनचिन्ह पिउ कांपौं मन माँहा। का मैं कहब गहब जौ बाँहा॥
बारि वैस गहै प्रीति न जानी। तरुनि भई, मैमंत लुभानी॥

जोबन गरब न किछु मैं चेता । नेह न जानौं साम कि सेता ॥
अब सो कंत जौ पूछहिं बाता । कस मुख होइहि पीत की राता ॥

× × ×

करि सिंगार तापँह का जाऊँ । ओहि देखहुँ ठाँवहि ठाँऊँ ॥
जौं जिउ मैं तौ उहै पियारा । तन मन सो नहिं होइ निनारा ॥
नैन माँह है बाँहै समाना । देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना ॥

× × ×

पद्मावति सौ कहेउ विहंगम । कंत लोभाइ रही करि संगम ॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा । मो कंह हिये दुन्द दुख पूरा ॥
हमहुँ बियाही सँग ओहि पीऊ । आपुहि पाइ, जानु पर जीऊ ॥
मोंहि भोग सो काज न, वारी । सौंह दिस्टि कै चाहन हारी ॥

२. पद्मावत एक प्रेमाख्यानक काव्य है । राजा रतनसेन और पद्मावती की प्रणय-कथा का वर्णन ही इसका केन्द्र विषय है । कथा का प्रारंभ मसनवी शैली पर किया गया है और प्रेम का प्रसंग भी फारसी प्रेम शैली पर है । पद्मावती के रूप वर्णन से ही राजा मूर्छित हो जाता है । इसके अतिरिक्त विरह वर्णन में भी फ़ारसी शैली के अनुसार प्रेम का काठिन्य दिखाने के लिए कवि औचित्य और स्वाभाविकता की सीमा को लाँघ गया है । रूप वर्णन में भी अतिशयोक्ति का प्रयोक्ति स्वाभाविकता में बाधा डालता है ।

उदाहरण—

हिया थार, कुच कंचन लाडू । कनक कचोर उठे करि चाडू ॥
कुन्दन बेल साजि जनु कूदे । अमृत भरे रतन दुइ मूँदे ॥
बधे भँवर कंट केतुकी । चाहँहि बेध कीन्ह केंचुकी ॥
जोबन बान लेहि नहिं बागा । चाहहिं हुलसि हिएँ हठि लागा ॥
अगिनि बान दुई जानहु साँधे । जग वेधहिं जौं होहि न बाँधे ॥
उतंग जँभीर होइ रखवारी । छुइ को सका राजा कै बारी ॥
दारिव दाख भरे अनचाखे । अस नारंग दहुँ का कँह राखे ॥

राजा बहुत मुए तपि, लाइ लाइ भुंइ माथ।
काहू छुग्रै न पारै, गए मरोरत हाथ ॥

ग्रर्थ—इस पद में तोता राजा से पद्मावती के स्तनों का सौंदर्य वर्णन कर रहा है—

(हृदय रूपी थाल में उसके दो कुच ऐसे हैं जैसे सोने के लड्डू हों, ग्रथवा सुन्दर सोने के दो कटोरे उलटे लगकर उठे हैं। सुन्दर सोने के बेल खराद पर सजाये हुए हैं, या ग्रमृत से भरे हुए छिपा कर रखें हुए हैं। कुचों के ऊपर जो काली ढेंच होती है उसे दृष्टि में रखकर ज्ञात होता है मानो केतकी फूल के काँटे में काला भोंरा बिंध गया है ग्रौर ग्रब चोली को बेधना चाहता है। जवानी का रंग उस पर चढ़ा है, वे बाग नहीं लेते ग्रर्थात् रोके नहीं रुकते। ग्रब वे हुलसकर हृदय में लग जाना चाहते हैं, मानो दो ग्रग्नि वाण सधे हुए हैं, यदि बँधे न होते तो सारे संसार को बेध डालते। ये उठे हुए नींबू के समान हैं जिन की रखवाली होती है। यह तो राजा की लड़की या वाटिका है, इसको कौन छू सकता है। इसमें दाड़िम (दाँत) ग्रौर दाख (ग्रधर) ग्रनचखे पड़े हुए हैं। तोता कहता है पता नहीं ये नारंगियाँ (कुच) भी किसके लिए रखी हुई हैं। ग्रनेक राजा लोग तपस्या कर कर ग्रौर पृथ्वी पर माथा रगड़-रगड़ कर मर गए, कोई इसे छू न सका। सभी हाथ मरोरते चले गए)।

—(डा० मनमोहन गौतम) नखशिख खंड

सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानहु लहरि सुरुज कै ग्राई ॥
पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई ॥
परा सो पेम समुंद ग्रपारा। लहरहि लहर होइ विस भारा ॥
विरह भँवर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीव हिलोरहि लेई ॥

—प्रेमखंड

× × ×

जेहि पंछी कहँ ग्रठवौं, कहि सो विरह कै बात।
सोई पँखी जाइ उहि, तरुवर होइ निपात ॥

—नागमती वियोग-खंड

प्रेम का यह स्वरूप मसनवी शैली से आरंभ हो अन्त में भारतीय परंपरा से समन्वय कर लेता है जो जायसी की अपनी विशेषता है ।

× × ×

३. पद्मावत के आरंभ में परम पिता परमेश्वर का स्मरण किया गया है । ग्रंथ की पहली पंक्ति ही उसके सुमिरन से आरंभ होती है—

सवरौं आदि एक करतारू । जेइँ जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ।।
कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू । कीन्हेसि तेहि पिरीत कविलासू ।।
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा । कीन्हेसि बहुतइ रंग उरेहा ।।
कीन्हेसि धरती सरग पतारू । कीन्हेसि वरन-वरन अवतारू ।।
कीन्हेसि सात दीप ब्रह्मंडा । कीन्हेसि भुवन चौदहउ खंडा ।।
कीन्हेसि दिन दिन अर, ससि राती । कीन्हेसि नखत तराइन-पाँती ।।
कीन्हेसि धूप सीउ औ छाँहा । कीन्हेसि मेघ, बीज तेहि माँहा ।।
कीन्ह सबइ अस जाकर, दोसरहि छाज न काहु ।
पहिलेहि तेहिक नाँउ लइ, कथा कहौं अवगाहु ।।

—स्तुति खण्ड

यहाँ पर 'एक करतारू' शब्द द्रष्टव्य है । एक करतारू कहकर जायसी ने मुसलिम एकेश्वरवादी ईश्वर का स्मरण किया है । "कीन्हेसि शब्द भी साभिप्राय है; इसमें भूतकाल (क्रिया) है । इस्लाम मतानुसार वर्तमान सृष्टि प्रथम और अन्तिम है । न तो इस सृष्टि के पहले परमेश्वर ने और कोई सृष्टि की थी और न करेगा । पुनर्जन्म की व्यवस्था वहाँ है ही नहीं । कयामत के समय सभी जीवात्माओं का एक साथ निर्णय होगा, जिसमें अपने-अपने पुण्य के अनुसार वे या तो अनन्तकाल तक स्वर्ग में चली जायगी या नरक में । हिन्दू भावना के अनुसार जहाँ सृष्टि का वर्णन होता है वहाँ सामान्यतया वर्तमान काल सृष्टिकर्त्ता है का प्रयोग होता है"—डा० मनमोहन गौतम

उस परमशक्तिमान एक करतारू का वर्णन करने के उपरान्त आगे चलकर कवि मुहम्मद साहब का स्मरण करता है ।

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाऊँ मुहम्मद पुनिउँ करा ।।
प्रथम जोति बिधि तेहि कै साजी । औ तेहि प्रीति सिस्टि उपराजी ।।
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा ।।
जौं न होत अस पुरुष उज्यारा । सूझि न परत पंथ अँधियारा ।।
दोसरइँ ठाँव दई ओइँ लिखे । भए धरमी जो पाढ़त सिखे ।।
जगत बसीठ दई ओइँ कीन्हे । दोउ जग तरा नाउँ ओहि लीन्हे ।।
जेइँ नहिं लीन्ह जनम सौ नाऊँ । त कहँ कीन्ह नरक मँह ठाऊँ ।।
गुन अवगुन विधि पूँछत, होइहि लेख अउ जोख ।
ओन्ह विन उब आगे होइ, करब जगत कर मोख ।।

इसके बाद कवि न पैगम्बर के चारों मित्रों का वर्णन किया है ।

चारि मीत जो मुहम्मद ठाऊँ । चहुँक दुहूँ जग निरमर नाऊँ ।।
अबाबकर सिद्दीक सयाने । पहिलइँ सिदिक दीन ओहँ आने ।।
पुनि जो उमर खिताब सुहाए । भा जग अदल दीन जौं आए ।।
पुनि उसमान पंडित बड़ गुनी । लिखा पुरान जो आयत सुनी ।।
चौथइँ अली सिंघ बरियारू । सौंह न कोई रहा जुझारु ।।
चारिउ एक मतइँ एक बाता । एक पंथ औं एक सँघाता ।।
बचन जो एक सुनाएन्हि साँचा । भए परवान दुहूँ जग बांचा ।।
जो पुरान विधि पठवा, सोई पढ़त गिरंथ ।
अउर जो भूले आवत ते, सुनि लागत तेहि पंथ ।।

—स्तुति खण्ड

पैगम्बर के चारों मित्रों का वर्णन करने के उपरान्त शाहे वक्त दिल्ली अधिपति शेरशाह का वर्णन है—

सेरसाहि दिल्ली सुलतानू । चारिउ खंड तपइ जस भानू ।।
ओही छाज छात औ पाटू । सब राजा भुंई धरहिं लिलाटू ।।
जाति सूर औ खाँडइ सूरा । औ बुधिवंत सबइ गुन पूरा ।।
सूर नवाई नवइ खंड भई । सातउ दीप दुनी सब नई ।।

तँह लगि राज खरग वर लीन्हा। इसकंदर जुल करौं जो कीन्हा।।
हाथ सुलेमा केरि अंगूठी। जग कहँ जिअन दीन्ह तेहि मूठी।।
औ अति गरू पुहुमि मति भारी। टेकि पुहुमि सब सिष्टि संभारी।।
दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहिं जुग राज।
पातसाहि तुम जग के, जग तुम्हार मुहताज।।

—स्तुति खंड

शाहे वक्त शेरशाह के वर्णन के पश्चात् कवि अपने गुरु का स्मरण करता है जिसने कि उसे पंथ सुझाया। बिना गुरु के कोई उसकी दृष्टि में परम प्रियतम को प्राप्त ही नहीं कर सकता। इस नाते कवि ने गुरु का बड़ा वक्तज्ञतापूर्ण वर्णन किया है—

सैयद असरफ पीर पियारा। तिन्ह मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा।।
लेसा हिए प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमल हीया।।
मारग हुत अँधियार असूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा।।
खार समुद्र पाप मोर मेला। बोहित धरम लीन्ह कइ चेला।।
उन्ह मोर करिअ पोढ़ कर गहा। पाएउँ तीर घाट जो अहा।।
जा कँह अइस होंहि कँडहारा। तुरति बेगि सो पावइ पारा।।
दस्तगीर गाढ़े के साथी। जँह अवगाह देंहि तंह हाथी।।
जहाँगीर ओइ चिस्ती, निहकलंक जस चाँद।
ओइ मखदूम जगत के, हौं उनके घर बाँद।।

—स्तुति खंड

आगे चलकर कवि ने शेख मुहीउद्दीन के प्रति भी गुरुवत श्रद्धा का प्रदर्शन किया है।

गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिनकर खेवा।।
उन्ह सौं मैं पाई जब करनी। उघरी जीभ प्रेम कवि करनी।।
ओइ सो गुरु हौं चेला, निति विनवौं भा चर।
उन्ह हुति देखइ पावौं, दरस गोसाईं केर।।

—स्तुति खंड

गुरुओं की चर्चा करने के उपरांत कवि ने अपना परिचय दिया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम उसका ध्यान अपनी कुरुपता की ओर ही गया है। वर्णन में गर्वोक्ति है—

एक नैन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ विमोहा जेइ कवि सुनी॥
चाँद जइस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा॥
जग सूझा एकइ नैनाहाँ। उआ सूक अस नखतन्ह माँहा॥
जौ लहि अंबहि ठाभ न होई। तौ लहि सुगंध बसाइ न सोई॥
कीन्ह समुद्र पानि जौ खारा। तौ अति भएउ असूझ अपारा॥
जौ सुमेरु तिरसूल विनासा। भा कंचन गिरि लाग अकासा॥
जौ लंहि घरी कलंक न परा। काँच होइ नहि कंचन करा॥
एक नैन जस दरपन, औ तेहि निरमल भाउ।
सब रूपवंत पांव गहि, मुख जोवहिं कइ चाउ॥

—स्तुति खंड

अपना परिचय देने के पश्चात् कवि ने अपने चारों मित्रों का वर्णन किया है। अपना निवास स्थान बताया है और फिर खण्ड के अंत में कथा का सार संक्षेप में कह दिया है।

सन नव सै (सत्ताइस) सैतालिस अहा। कथा आरम्भ बैन कवि कहा॥
सिंघलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलाउदीं दिल्ली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिन्दू तुरुकहि भई लराई॥
आदि अन्त जसि कथ्या अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥
कवि विआस रस कौला पूरी। दूरिहि नियर-नियर भा दूरी॥
निअरहिं दूरि फूल सँग काँटा। दूरि जो निअर जस गुरू चाँटा॥
भँवर आइ वनखंड हुति, लेहि कंवल कै बास।
दादुर वास न पावहि, भलेहिं जो आछहिं पास॥

—स्तुति खंड

४—पद्मावत का विभाजन कवि ने सर्गों में न करके खण्डों में किया है। ग्रंथ में ५८ खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड का नाम वर्ण्य विषय के आधार पर है।

५—ग्रंथ का अन्तिम खण्ड 'उपसंहार' शीर्षक से विभूषित है। इस खण्ड में कवि ने अपनी सारी कथा के वास्तविक मर्म व अर्थ की ओर संकेत किया है और बताया है कि उसने यह कथा क्यों तथा किस प्रकार लिखी।

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भांति विचारहु। बूझि लेउ जौ बूझै पारहु॥

तुरकी अरबी हिंदुई, भाषा जेती आहिं।
जेहि मँह मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहिं॥

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा॥
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेइ॥
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा॥
कहां सो रतनसेन अब राजा। कहां सुआ अस बुधि उपराजा॥
कहां अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू॥
कहां सुरुप पद्मावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी॥
धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू॥

केइ न जगत जस बेचा, केइ न लींह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम सँवरै दुइ बोल॥

ग्रंथ की परिसमाप्ति की तिथि का उल्लेख कवि ने नहीं किया जिसके कारण विद्वानों को काफी सिर दर्द है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस परिणाम पर आते हैं कि पद्मावत के रचयिता ने उसे मसनवी शैली पर ही लिखा है (यद्यपि गहराई में जाने पर पद्मावत

पूर्णतः उस शैली का काव्य नहीं ठहरता है, फिर भी अधिकांश लक्षण मिलते हैं। इस नाते हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि पद्मावत फारसी की मसनवी शैली का काव्य है। हाँ इस सम्बन्ध में हमें इतना अवश्य याद रखना चाहिए कि पद्मावत हिन्दू घराने की कहानी है और उसका कवि मुसलमान होते हुए भी भारत की मिट्टी में जन्मा और पला-पुषा है। इससे उस पर भारतीय रीति-नीति, आचार-व्यवहार तथा धर्म-संस्कृति आदि की भी छाप है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रश्न १०—"जायसी का अत्यधिक विलासमय वर्णन आध्यात्मिकता के चित्र को अस्पष्ट कर देता है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

जायसी एक सूफी कलाकार हैं। सभी सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम को प्राप्त करने का मार्ग बताया है। सूफी साधना में प्रेम केन्द्र बिन्दु होता है। इन कवियों का यह विश्वास रहा है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि के कण-कण में उस परम प्रियतम का रूप समाया हुआ है। सृष्टि का सौन्दर्य प्रियतम का सौन्दर्य है। तात्पर्य यह कि प्रकृति की कोई भी वस्तु त्याज्य नहीं क्योंकि उसमें प्रियतम का प्राण डोल रहा है। इन कवियों में से अधिकांश ने परमात्मा को स्त्री रूप में और जीवात्मा को पुरुष रूप में मानकर उसकी आराधना की है या अपना प्रणय-निवेदन प्रकट किया है। वैसे इसका कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं क्योंकि 'राबिया' तथा उसकी सहेलियों आदि ने स्वयं स्त्री होकर भी उस परम प्रियतम से प्रेम किया। इस सिद्धान्त के पीछे सामान्यतया यही भावना काम कर रही है कि स्त्री की ओर पुरुष अधिक आकर्षित होता है। प्रेम का उत्कर्ष दिखाने के लिए ही संभवतः इस भावना का आश्रय लिया गया है। परिणामस्वरूप नारी, पुरुष रूपी जीवात्मा के आकर्षण का केन्द्र बनी और उसमें उस परम प्रियतम (ब्रह्म) की कल्पना की गई। प्रेम के अपरिमित सौन्दर्य, उसके लास-हास और उल्लास तथा प्रेम की गंभीरता, दृढ़ता व व्यापकता को व्यक्त करने के लिए इन सब का नारी में आरोपण करना पड़ा। ब्रह्म के अपरिमित सौन्दर्य को नारी के अपरिमित सौन्दर्य में व्यक्त किया

गया । उसके लास-हास और उल्लास को नारी के लास-हास और उल्लास में देखा गया । साधना की ज्वाला में तप कर निखरी हुई पवित्र आत्मा को अपने में एकाकार कर लेने की ब्रह्म की लालसा तथा एक रूप हो जाने की कामना और उत्सुकता को नारी की कामना और उत्सुकता के रूप में व्यक्त किया गया । लौकिक वर्णनों के बीच में साधना की इस ऊँचाई पर खड़े रह सकना कोई सरल कार्य नहीं था । इस परीक्षा में अनेक कवियों को असफल होना पड़ा और कुछ को तो सफलता मिलते-मिलते भी कलंक का उपहार स्वीकार करना पड़ा । हमारे महाकवि जायसी भी ऐसे ही कुछ बदनसीब साधकों में से हैं जिन्हें अपनी साधना के क्षेत्र में अधिकाधिक सफलता मिलते हुए भी उक्त कलंक का उपहार मिले बिना न रह सका ।

जायसी ने जिस काव्य का प्रणयन किया वह फारसी शैली और भाव-भंगिमा से अनुप्राणित था । हाँ कलेवर अवश्य उन्होंने भारतीय रखा । अपने सूफी- धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तों और कतिपय मान्यताओं को अपने काव्य में वाणी देने से वे न चूके । भारतीय वाटिका से पुष्प चुन-चुनकर प्रेम की जो माला उन्हेंने तैयार की उसमें सभी फूलों को गूँथने के लिए सूफी-सूत्र (धागे) का उपयोग किया । सूफी-सूत्र में पिरोई भारतीय वाटिका के सुन्दर पुष्पों की उस माला से जो सौरभ निकली वह भी भारतीय वायु से प्रेरित न हो फारसी वायु से प्रेरित थी ।

फारसी शैली से बुरी तरह प्रभावित होने के नाते जायसी ने शृङ्गार रस के वर्णन में वहीं की स्थल पद्धति को अपनाया । मिलन-विरह के सभी चित्र फारसी रंग-ढंग से प्रभावित हैं और उनकी चमक दमक भी फारसी-कांति लिये हुये है । इसी नाते कुछ स्थलों पर जायसी ने बड़ा ही निकृष्ट कोटि का विलास-मय वर्णन किया है जिससे उनकी आध्यत्मिकता को भारी धक्का लगता है । इन स्थलों पर कवि नीति, मर्यादा तथा मानवीय शील की सीमा को पार कर गया है । निश्चय ही ये स्थल कवि की साधना को अपवित्र बनाते हैं । कतिपय स्थल देखिए:—

एक दिवस पद्मावति रानी। हीरामन तहँ कहा सयानी।।
सुनु हीरामन कहौं बुझाई। दिन-दिन मदन सतावै आई।।
पिता हमार न चालै बाता। त्रासहिं बोलि सकै नहिं माता।।
देस-देस के वर मोहि आवहिं। पिता हमार न आँख लगावहिं।।
जोबन मोर भयऊ जस गंगा। देह-देह हम लाग अनंगा।।

—जन्म खण्ड

× × ×

हिया थार, कुच कंचन लाडू। कनक कचोर उठे करि चाडू।।
कुन्दन बेल साजि जनु कूँदे। अंब्रित भरे रतन दुइ मूँदे।।
बेधें भंवर कंट केतुकी। चाहहिं बेध कीन्ह केंचुकी।।
जोबन बान लेहिं नहीं बागा। चाहहिं हुलसि हिएँ हठ लागा।।
अगिनि बान दुइ जानहु साँधे। जग बेधहिं जौं होंहि न बाँधे।।
उतंग जँभीर होइ रखवारी। छुइ को सक राजा कै बारी।।
दारिव-दाख भरे अनचाखे। अस नारंग दहुँ का कहँ राखे।।

राजा बहुत मुए तपि, लाइ-लाइ भुइं माथ।
काहूँ छुअै न पारे, गए मरोरत हाथ।।

—नखशिख खण्ड

× × ×

कहि सत भाउ भएउ कँठ लागू। जनु कंचन सो मिला सोहागू।।
चौरासी आसन बर जोगी। खट रस विदक चतुर सो भोगी।।
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार ओनाई।।
करी बेधि जनु भंवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के बाना।।
कंचन करी चढ़ी जग जोती। वरमा सौ बेधा जनु मोती।।
नारँग जानुँ कीर नख देई। अधर आँवु रस जानहु लेई।।
कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। कुँवहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।।

रही बसाइ बासना, चोना चन्दन मेद।
जो अस पदुमिनि रावै, सो जाने यह भेद।।

—पद्मावती-रत्नसेन भेंट खण्ड

अर्थ—अपने हृदय के सच्चे भाव को उक्त प्रकार से कहने के बाद दोनों का आलिंगन हुआ। यह मेल इस प्रकार हुआ जैसे सोने में सुहागा मिलता है। वह राजा रत्नसेन श्रेष्ठ योगी था, साथ ही रति शास्त्र के चौरासी आसनों, छः रसों में चतुर भोगी भी था। उसने मालती फूल की माला के समान पद्मावती को पाकर अपना हृदय-हार बना लिया, मानों चम्पा की डाल को पकड़ कर झुका लिया हो। मानों भौंरा पुष्प-कली को भेदकर उसी में मस्त होकर भूल गया है। अर्जुन के बाण से मछली बेधी गई अर्थात् राजा अब तो अपने लक्ष्य में सफल हो गया। राजा और रानी के मेल की जायसी और उपमा देते हैं—मानो सोने की कली में हीरे की ज्योति लगी है और मोती में बरमा से छेद कर दिया हो। संभोग शृङ्गार में पद्मावती के उरोजों पर नखक्षत (नाखून की खरोंच) हो गये। उनको दृष्टि में रखकर कवि कहता है मानों तोते ने नारंगी पर चोंच चला दी है। अधरामृत का रस भी राजा ले रहा है। कौतुक में काम क्रीड़ायें होने लगीं, सभी दुखों की समाप्ति हो गई। दोनों इस प्रकार किलोल करने लगे जैसे तालाब में हंस के जोड़े हंसते, कूदते और कुरलते हैं।

चोवा चंदन और कस्तूरी की सुगंध चारों ओर फैल रही है, जो ऐसी पद्मिनी रानी को देखे वही उसकी काम क्रीड़ा का रहस्य जान सकता है।"

—डा० मनमोहन गौतम

× × × ×

चतुर नारि चित अधिक चिहूँटै। जहाँ प्रेम बाँधै किमि छूटै॥
किरिरा काम केलि मनुहारी। किरिरा जेंहि नहिं सो न सुनारी॥
किरिरा होइ कंत कर तोखू। किरिरा किहे पांव धनि मोखू॥
जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागी। चंदन जैस स्याम कँठ लागी॥
गोदि गेंद कै जानहुँ लई। गेंदहुँ चाहि धनि कोंवर भई॥
दाखि-दाख, बेल रस चाखा। पिउ के खेल धनि जीवन राखा॥
बैन सोहावनि कोकिल बोली। भएउ बसंत करी मुख खोली॥
पिउ पिउ करत जीभ धनि सूखी, बोली चात्रिक भाँति।
परी सो बूंद सीप जनु मोती, हिए परी सुख साँति॥

अर्थ—चतुर नारी पद्मावती का दिल और अधिक रत्नसेन में चिमट कर लग गया। जहाँ प्रेम होता है वहाँ भला कैसे छूट सकता है। काम क्रीड़ा ही से शान्ति मिलती है। जिसमें क्रीड़ा नहीं वह सुन्दर स्त्री नहीं। क्रीड़ा से ही पति को संतुष्टि होती है और क्रीड़ा करने से ही स्त्री को छुटकारा मिलता है। जिसने क्रीड़ा की वही सौभाग्य से सुहागिन हुई और चन्दन के समान पति के कण्ठ में शोभा पाती है। रत्नसेन ने पद्मावती को गेंद के समान गोद में ले लिया, वह तो गेंद से भी अधिक कोमल थी। दाड़िम, दाख और बेल आदि के मीठे रसों को खाकर स्त्री ने पति के लिए ही अपने जीवन को रख रखा है। इस समय वह कोकिल के समान मीठे वचन बोली मानो वसन्त ऋतु में कली ने अपना मुख खोला है। उसकी जीभ 'पी-पी' करते हुए इस प्रकार सूख गई जैसे पपीहे की रट रट कर सूख जाती है। उसके हृदय में इस प्रकार शान्ति प्राप्त हुई जैसे सीप में स्वाति की बूँद पड़ने से मोती बन जाता है।

—डा० मनमोहन गौतम

× × ×

कहौं जूझि जस रावन रामा। सेज विधंसि विरह संग्रामा॥
लीन्ह लंक, कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
औ जोबन मैमंत विधंसा। विचला विरह जीव लै नँसा॥
लूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी मंग, भंग भे केसा॥
कंचुकि चूर, चूर भै ताने। टूटे हार, मोति छहराने॥
वारी टाड सलोनी टूटीं। बाहूँ कँगन कलाई फूटीं॥
चन्दन अंग छूट तस भेंटी। बेसरि टूटि, तिलक गा मेंटी॥
पुहुप सिंगार सँवारि जौं, जोबन नवल बसंत।
अरगज जेउँ हिय लाइकै, मरगज कीन्हे कंत॥

—पद्मावती-रत्नसेन-भेंट-खण्ड

अर्थ—जायसी कहते हैं कि अब में रत्नसेन और पद्मावती की संभोग क्रीड़ा का वर्णन करता हूँ—मानो राम-रावण की लड़ाई हो। इस युद्ध में सेज विध्वंस हो गई और विरह से युद्ध संग्राम हो रहा है कि संयोग की अवस्था

हैं। लंका रूपी कटि को राजा ने ले लिया और कंचनगढ़ रूपी आभूषण छीना झपटी में टूट गए। जो शृङ्गार पद्मावती ने कर रखा था वह सब लुट गया। मस्त यौवन विध्वंस हो गया। वह विरह जिसने जीभ को नष्ट कर रखा था विचलित हो गया। अंग-अंग के भेष सब टूट गए, माँग छूट गई, बाल खुल गए। चोली और उसकी बंदें सब टूट गईं, हार टूट गए और उसके सारे मोती बिखर गए। कान की सुन्दर बालियाँ और टाड़ टूट गए, बाँह के कंगन और चूड़ियाँ टूट गईं। इस प्रकार गाढ़ आलिंगन किया कि शरीर में लगा हुआ चन्दन छूट गया, बेसर टूट गई और मत्थे की टीका-बिन्दी बिखर सी गई। यौवन रूपी जो नया बसन्त फूलों के शृङ्गार से सजा था उसको जैसे अरगजा को हृदय में लगा कर रतनसेन ने मल-दल डाला। —डा० गौतम

× × ×

विनति करै पदमावति बाला। सोधनि सुराही पीउ पियाला॥
पिउ आयसु माथे पर लेऊँ। जौ माँगै नै-नै सिर देऊँ॥
पै पिय वचन एक सुनु मोरा। चाखि पियहु मधु थोरइ थोरा॥
पेम सुरा सोई पै पिया। लखै न कोइ कि काहू दिया॥
चुवा दाख मधु सो एक बारा। दोसरि वार होहु बिसँभारा॥
एक बार जो पी कै रहा। सुख जेंवन, सुख भोजन कहा॥
पान फूल रस रंग करीजै। अधर-अधर सो चाखन कीजै॥
जो तुम्ह चाहहु सो करहु, नहि जानहु भल-मंद॥
जो भावै सो होइ मोंहि, तुम्हहिं पै चहौं अनंद॥

—पद्मावती-रतनसेन-भेंट खण्ड

अर्थ—पद्मावती विनय करने लगी हे प्रिय तू तो प्याले के स्थान पर सुराही भर पीने लगा। आज्ञा तो मैं शिरोधार्य करूँगी और जो आप माँगोगे उसे नम्रता पूर्वक झुक-झुक कर दूँगी। पर हे प्रिय मेरी एक बात सुनिए आप अमृत को थोड़ा-थोड़ा ही चखिए। प्रेम की शराब तो वही पीता है कि जिसे कोई देखे न, कि उसे किसने दिया। दाख का मधु तो एक बार ही चू जाता है, दूसरी बार वह बेसँभाल हो जाता है। जिसने एक बार ही सब पी लिया

उसके भोजन में क्या आनन्द है ? पान फूल के रस रंग को लीजिए और अधरामृत पान धीरे-धीरे करिए। जो तुम चाहोगे उसे ही करूँगी, यह न विचार करूँगी कि वह अच्छा है; या बुरा, जो तुम्हें अच्छा लगेगा वही मुझे भी प्रिय हो जायेगा, मैं तो तुम्हारा ही आनन्द चाहती हूँ। —डा० मनमोहन गौतम

× × ×

भएउ विहान उठा रवि साईं। ससि पँह आईं नखत तराईं॥
सब निसि सेज मिलै ससि सूरू। हार चीर वलया भे चूरू॥
सो धनि पान, चून भै चोली। रंग रँगीलि निरँग भो भोली॥
जागत रैन भएउ भिनुसारा। हिय न सँभार सोवति बेकरारा॥
अलक भुअंगिनि हिरदै परी। नारँग ज्यों नागिनी बिख भरी॥
लरै मुरै हिय हार लपेटी। सुरसरि जनि कालिंदी भेंटी॥
जनु पयाग-अरइल बिच मिली। वेनी भइ सो रोमावली॥
नाभी लाभी पुन्य की, कासी कुंड कहाउ।
देवता मरहिं कलपि सिर आपुहि, दोख न लावहिं काउ॥

—पद्मावती-रत्नसेन-भेंट-खण्ड

अर्थ—प्रातः काल होने पर रत्नसेन उठा और सखियाँ पद्मावती के पास आईं। उन्होंने आकर देखा कि सारी रात सूर्य और चन्द्र (रत्नसेन और पद्मावती) मिले रहे, इससे हार, चीर और चूड़ियाँ चूर-चूर हो गए। वह स्त्री पद्मावती पान के पत्ते की भाँति पीली हो गई और उसकी चोली चूर्ण हो गई। वह रंग-रँगिया करने वाली भोली—पद्मावती—तेजहीन सी (फीकी) पड़ गई। सारी रात जगते हुए सवेरा हो गया, वह अपने को सँभाल न सकी और बेसुध होकर सोने लगी। उसके हृदय पर बालों की चोटी सर्पिणी के समान पड़ी हुई है। मानो नारंगी (स्तनों) के पास विष से भरी सर्पिणी पड़ी है। हृदय के हार से लिपट कर वेणी उलझ गई है, मानो गंगा जमुना से मिल रही है। उसके दोनों कुच मानो प्रयाग और अरैल हैं और उसी के बीच गंगा जमुना से मिल रही हैं। जो रोमावलि नाभि से कुच तक सहसा रूप में आ रही है वह

मानो सरस्वती है, इस प्रकार पूरी त्रिवेणी बनी है। नाभि को पुण्य लाभ हुआ है। अतः उसे काशी कुण्ड कहते हैं, देवता भी उस पर अपना सिर काट कर मरते हैं, पर किसी को दोष नहीं लगता। —डा० गौतम

× × ×

विहँसि जगावहि सखी सयानी। सूर उठा, उठु पद्मिनि रानी॥
सुनत सूर जनु कँवल विगासा। मधुकर आइ लीन्ह मधुवासा॥
जनहु माँति वसियानी वसी। अति विसँ भार फूल जनु अरसी॥
नैन कँवल जानहुँ धनि फूले। चितवनि मिरिग सोवत जनु भूले॥
भै ससि खीनि गहन असि गही। बिथुरे नखत, सेज भरि रही॥
तन न सँभार केस औ चोली। चित अचेत मन बाउर भोली॥
कँवल माँझ जनु केसरि डीठी। जोबन हुत सो गँवाइ बईठी॥
बेलि जो राखी इन्द्र कहँ, पवनहुँ वास न दीन्ह।
लागेउ आइ भँवर तहँ, करी वेधि रस लीन्ह।

—पद्मावती-रतनसेन-भेंट-खण्ड

अर्थ—हँसकर सखियाँ पद्मावती को जगाने लगीं। यह कहने कि रत्नसेन तो उठ गया है, हे रानी तू भी उठ! सूर्य (रत्नसेन) का नाम सुनते ही पद्मावती ऐसी खिल उठी जैसे कमल। उसकी आँख रूपी खिले हुए कमल में मधुकर रूपी पुतलियाँ मानो मधु के लिए लगी हुई हैं। नींद के बाद वह मस्ती की सुस्ती में थी। अलसाई हुई पद्मावती अलसी के फूल के समान अत्यन्त बेसँभाल हो रही थी। उसके कमलरूपी नेत्र फूले हुए थे, उसकी चितवन रूपी मृग मानो सुप्तावस्था में भूल गये थे। ग्रहण लगने पर जैसे चन्द्रमा क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार पद्मावती निष्प्रभ थी। नक्षत्र रूपी उसके हार के मोती बिखरे थे जिससे सारी सेज भरी थी। उसका शरीर अपनी संभाल में न था, केश और चोली खुले थे। भोली पद्मावती का मन अचेत था। उसके चेहरे पर ऐसा पीलापन था जैसे कमल के ऊपर केसर छा गई हो। जो उसका यौवन था उसे वह गँवा चुकी थी। जिस यौवन लता को इन्द्र के लिए उसने बचा

रखा था और पवन भी उसकी बास नहीं ले पाया था वह भौंरा (रत्नसेन) आकर लग गया और कली को बेध उससे सारा रस ले गया।

—डा० मनमोहन गौतम

× × ×

हँसि हँसि पूँछहिं सखी सरेखी। जानहु कुमुद चंद मुख देखी॥
रानी तुम ऐसी सुकुमारा। फूल वास जनु जीव तुम्हारा॥
सहि न सकहु हिरदै पर हारू। कैसे सहिहु कंत कर भारू॥
मुखा कँवल बिगसत दिन राती। सो कुँभिलानि सहिहु केहि भाँती॥
अधर जो कोंवल सहत न पानू। कैसे सहा लागि मुख भानू॥
लंक जो पैग देत मुरि जाई। कैसे रही जो रावन राई॥
चंदन चोंप पवन अस पीऊ। भइउ चित्र सम, कस भा जीऊ॥
सब अरगज भा मरगज, लोचन पीत सरोज।
सत्य कहहु पदुमावति, सखीं परी सब खोज॥

पद्मावती-रत्नसेन-भेंट-खण्ड

अर्थ—चतुर सखियाँ हँस-हँसकर पूछने लगीं। वे सब इस प्रकार प्रफुल्लित थीं, जैसे कुमुदिनियाँ चन्द्रमा का मुख देखकर खिली होती हैं। उन्होंने कहा हे रानी! तुम तो अत्यन्त ही सुकुमारी हो, तुम्हारा शरीर फूल के समान और जीव सुगन्धि के समान है। तुम तो हृदय पर हार के बोझ को भी नहीं सह सकती हो; फिर तुमने अपने पति का भार कैसे सह लिया। तेरा कमल रूपी मुख दिन-रात विकसित रहता है। वह इस समय कुम्हलाया हुआ है। तुम्हारे होंठ इतने कोमल है कि वे पान तक को नहीं सह सकते थे, तो तूने सूर्य (रत्न-सेन) के मुख में उन्हें लगाकर कैसे सहा। तुम्हारी कटि इतनी नाजुक है कि चलने में पग रखने से मुड़ जाती है तो वह कैसे रह सकी जब रावण रूप रमण करने वाले रत्नसेन के हाथ लगी। चन्दन, चोवा और सुगन्धि के समान तो तुम्हारा पति है, पर तू इस समय चित्र के समान ठिठक रही है—बताओ कि इस समय तुम्हारा जी कैसा है? तेरे चन्दनादि के सुगन्धित लेप मले दले जा चुके हैं, तेरी आँखें पीले कमल की भाँति निस्तेज हैं। हे पद्मावती! सब

सच-सच कहना, ऐसा कहकर सब सखियाँ पूछताछ करती हुई उसके पीछे पड़ गईं।   —डा० गौतम

× × ×

इस प्रकार के और भी कई स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें घोर शृङ्गारिकता अथवा विलासमयी भावनाओं को वाणी दी गई है। ये वर्णन जायसी की आध्यात्मिक कथा को भारी ठेस पहुँचाते हैं। प्रेम का यह अश्लील उत्कर्ष फारसी साहित्य के लिए प्रशंसनीय हो सकता है, परन्तु भारतीय-साहित्य व नीति में इसे बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता। वैसे इस बात से भी कोई मुख नहीं मोड़ सकता कि यह भी मानव-जीवन का कठोर सत्य है, फिर नैसर्गिकता के साथ कृत्रिम नियमों की मर्यादा क्यों? सत्य का उद्घाटन होना चाहिए और अवश्य होना चाहिए। मानव अपने जीवन के सत्यों से ही यदि अनवगत रहा तो उसकी साधना में गहराई न आ पायेगी और फिर जायसी ने तो इन सबका बड़ा कलात्मक चित्र उपस्थित किया है जिससे विशुद्ध कला (साहित्यिकता) की उन्नति ही हुई है। अस्तु वे उतने दोषी नहीं, और जीवन के दोष गुणों से परे कवि के मंच पर तो बिल्कुल ही दिर्दोष हैं (तथा इन सबसे आगे उनकी साधना का चरम उत्कर्ष तो कुछ और ही है)। फिर भी ऐसी उच्छृङ्खल कला भारतीय साहित्य और समाज के लिए आदरणीय नहीं हो सकती।

जायसी के साथ ही अन्य हिन्दी सूफी कवियों के काव्यों से भी कुछ ऐसे ही स्थल यहाँ उपस्थित करना हम अधिक अप्रासंगिक नहीं समझते हैं। उनके प्रकाश में भी इस प्रसंग को समझने में सहायता मिलेगी। कतिपय स्थल देखिए—

तीन पहर सुख कै दुख मेटा।
चौथ पहर करवट कै लेटा।

तब—

तब बोली पुहुपावति रानी।
मुसकिआइ अंब्रित मुख बानी।

ए पिव तुम्ह निपट निरदई ।
अब काहे कीन्ही निठुरई ।
ऐसन करी जो हाल हमारी ।
जनु हम वैरिनि रही तुम्हारी ।
सांसति कै सब साज नसावा ।
जनु हम किछु तोहार चोरावा ।
दुख देह बहुत सतावो जीऊ ।
तुम अपने सुख कारन पीऊ ।
ता ऊपर सोए देइ पीठी ।
काहे करहु नसत मुख दीठी ।

अब तौ एक घरीनि की मोंहि बाँधेहु जंजाल ।
अब फिरि सोए पीठी दै, कौन चतुरई लाल ॥

× × ×

फिरि कै कुँवर नारि उर लाई ।
एकर उतर दीन्हे मुसकाई ।
जौ न रही तैं वैरिनि मोरी ।
काहे लीन्हे मनचित चोरी ।
प्रेम फाँस माला गर लाई ।

—पुहुपावती

'चित्रावली' में उसमान लिखते हैं—

लै सुजान तव अंक में लाई ।
घूंघुट खोलि रूप अस देखा । सो देखा जोहि सीस सुरेखा ॥
अधर घूंट सो अम्रित पीया । जेहि के पियत अमर भा हीया ॥
राहु गरास कलानिधि काँपा । लोयन पल आनन पट झाँपा ॥
पुनि मनमथ रति फागु सँवारी । खोलि अछूत कनक पिचकारी ॥

रंग गुलाल दोउ लै भरे। रोम तन मोती झरे।
सेद, थँम, रोमांच-तन, आसु पतन सुर भंग।
प्रथम समागम जो कियो, सीतल भा सब अंग॥

—चित्रावली पृष्ठ १०४ : १०

सूरदास लखनवी लिखते हैं—

प्रथम अधर सो अधर मिलाई,
मातौं अहै खेल पर आई।
× × ×
प्रीतम केलि धमार लगाई,
धन कुहुकी होई निरत मचाई।

—नलदमन पृष्ठ ९५

आगे लेखक दमयंती के माता-पिता का संभोग वर्णन देता है—

विहँसत कंत सेज पर गयऊ।
भर अँकवन गहि कंठ लगाई। रहस दसन धनि बीच दिखाई॥
उपजै काम कथा दुहुँ ओरा। मिलि गए एक-एक उठै घनघोरा॥
श्रम जल बूँद झमक जहँ परी। पग बेनी चातुरू रति करी॥
नेवर मोर ऊँच कुहुकाएँ। छुदर कंठ झींगुर झनकाएँ॥
पौन हिलोर उठै झकझोरा। झूलै दोउन केलि-हिंडोरा॥
माझ प्रकट आयौ चौमासा। जंबत छुर भए आक जनासा॥
तरनी जोबन समुंद मँह, नाभि सीय जहँ भाँत॥
स्वाती बूंद आवा यहै, हँस हिरदै मैं साँत॥

—नलदमन पृष्ठ ३१

दुखहरन दास लिखते हैं—

घूँघट खोलि अधर रस चाखा। मैन वियाषा रहै न राखा॥
कंचुक खोलि के अंक मिलायौ। काँपौ अंग उमंग बढ़ावौ॥

नौबत बाजै लागु नगारा। बिछिया घूँघुर झाँझ नकारा ॥
मैन भँडारा जाय उघारा। लेइ कुंजी जनु खोला तारा ॥

—पहुपावती पृष्ठ ३०८

एक दूसरा चित्र दुखहरन दास देते हैं—

अधर से अधर मधुर रस लीन्हा। हिय से हिया लाइ सुख दीन्हा ॥
कर से कर, भुज से भुज गहा। नैन से नैन निरखि छवि रहा ॥
पेट से पेट लंक से लंका। होइ एक सुख प्रेम के अंका ॥
जाँघ से जाँघ पाउँ से पाऊँ। सीस से सीस मिलावा राउँ।
एहि विधि छत्तीस आसन भोगी। औ चौरासी आसन जोगी ॥
कोक कला कै काम नेवारा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सभी कवि संभोग के चित्रण में मर्यादा को छोड़ देते हैं और स्वच्छन्द होकर वर्णन करने लगते हैं। जायसी ने भी ऐसा ही किया—वे भी मर्यादा को भूल गए और जिधर घूमे उधर वर्णन करते चले ही गए। यह ठीक है कि सूफी-साधना में इसे ही चरम उत्कर्ष की संज्ञा मिलती है किन्तु ये वर्णन अश्लीलता से मुक्त नहीं कहे जा सकते। इन वर्णनों में पवित्रता का रंचमात्र भी आभास नहीं है। बरबस इनमें आध्यात्मिकता के दर्शन करना कवित्व की हत्या कही जायगी। इन्हीं स्थलों को दूसरे प्रकार से चित्रित किया जा सकता था जिनमें न रस-विरोध होता और न उत्कर्ष में कोई कमी। साथ ही साथ आध्यात्मिक साधना की पवित्रता भी बनी रहती पर जायसी ने वैसा नहीं किया और अपनी परम्परागत लकीर पर ही चलकर ऐसा घोर शृङ्गारिक एवं पार्थिव वर्णन किया जिससे उनकी आध्यात्मिकता को धक्का पहुँचा।

अस्तु निष्कर्ष रूप में अब हम कहेंगे कि जायसी के इन अत्यधिक विलास-मय वर्णनों ने उनकी आध्यात्मिकता के चित्र को अस्पष्ट कर दिया है जो जायसी जैसे साधक और महाकवि की कला में कलंक सा प्रतीत होता है।

प्रश्न ११—'पद्मावत के संयोग-शृङ्गार की सजीवता में किसी भी सहृदय को विभोर कर देने की पर्याप्त क्षमता है।' स्पष्ट कीजिए।

प्रेम की पीर के अमर गायक कविवर जायसी का पद्मावत शृङ्गार प्रधान काव्य है। वैसे अन्य रसों का भी उसमें यथास्थल समावेश हुआ है किन्तु सम्पूर्ण काव्य में शृङ्गार रस ही प्रमुख रूप से रम रहा है। शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दो मुख्य भेद होते हैं। पद्मावत में इन दोनों रसों को उचित प्रश्रय मिला है। जायसी वियोग पक्ष का जितना मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, उतना संयोग पक्ष का नहीं। इसका प्रधान कारण यह है कि सूफियों के प्रेम में विरह को प्रमुखता दी जाती है। उस परम प्रियतम से भिन्न जीवात्मा तथा सम्पूर्ण प्रकृति की उससे मिलने की उत्कंठा और व्याकुलता विरह रूप में ही चित्रित हुई है। इस अलगाव या विरह से सारी सृष्टि व्यथित है। सभी उस महामिलन के अभिलाषी हैं। सूफी काव्यों में इस पक्ष की बड़ी विशद विवेचना की गई है। संयोग पक्ष का भी वर्णन सूफी कवियों ने किया है और सुन्दर वर्णन किया है—उसमें पर्याप्त रमणीयता है किन्तु इस पक्ष का अपेक्षित सांगोपांग विवेचन नहीं हो पाया है। फारसी शैली के प्रभाव और तीव्र आध्यात्मिक झुकाव ने रस-भंग उपस्थित कर दिया है। कहीं-कहीं तो वर्णन बड़ा ही स्थूल और निकृष्ट कोटि का हो गया है जिससे कवियों की महानता को भारी धक्का भी पहुँचा है। हमारे कविवर जायसी में भी उपर्युक्त सभी गुण-दोष पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। यदि वे फारसी शैली से बुरी तरह प्रभावित न होते और आध्यात्मिकता की झलक बरबस स्थान-स्थान पर देने का दुराग्रह न करते तो उनका शृङ्गार वर्णन (संयोग-शृङ्गार) अधिक स्वाभाविक और उत्कृष्ट रूप में निखर सका होता। फिर भी जायसी के संयोग वर्णन की रमणीयता और सजीवता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि अन्य सूफी कवियों की भाँति जायसी को भी रस शास्त्र का ज्ञान नहीं था और इसी कारण वे उसका साँगोपाँग विवेचन नहीं कर सके तथापि उन्होंने ऐसे स्थलों पर मनोहर वातावरण का सृजन किया है जो लौकिक सौन्दर्य के साथ-साथ पारलौकिक सौन्दर्य का भी भान कराता है। भौतिक प्रणय के द्वारा

उन्होंने लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि की और अन्त तक उसमें लगे रहे, यह सभी स्वीकार करते हैं।

'पद्मावत' की कथा रत्नसेन और पद्मावती तथा नागमती को लेकर चलती है। संयोग शृङ्गार के लिए नागमती और पद्मावती दोनों महत्वपूर्ण हैं। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में 'साधना की दृष्टि से नागमती और पद्मावती में चाहे जो अन्तर हो, साहित्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। दोनों रत्नसेन की प्रिया हैं। जहाँ तक नागमती और रत्नसेन के संयोग का प्रश्न है इसका वर्णन केवल एक स्थल पर आया है—जब रत्नसेन सिंहल से लौटकर नागमती के पास जाता है। परन्तु वस्तुतः वह मिलन भी पूर्ण मिलन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें अधिकांश नागमती द्वारा मान-प्रदर्शन और सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ही व्यक्त हुआ है। देखिये—रात्रि में रत्नसेन जब नागमती के कक्ष में पहुँचता है तो—

नागमती मुख फेरि बईठी। सौंह न करै पुरुख सौं डीठी॥

और उससे कहती है—

ग्रीखम जरत छांड़ि जो जाई। पावस आव कवन मुखलाई॥

तथा—

काह हँसौ तुम मो सौं, किएउ और सों नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोंहि मुख बरिसै मेह॥

सपत्नी पद्मावती के प्रति यह ईर्ष्याभाव तथा पति रत्नसेन के प्रति यह व्यंग भरा प्रेम बिल्कुल स्वाभाविक है, किन्तु संयोग का माधुर्य यहाँ नष्ट हो गया है। रत्नसेन का यह कहना—

"नागमती तू पहिल बियाही। कठिन प्रीति दाहै जस दाही॥
बहुतै दिनन आव जौ पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ॥
काह भएउ तन दिन दस दहा। जौ बरखा सिर ऊपर अहा॥"

तो वातावरण को और भी हल्का कर देता है। रत्नसेन का यह सारा कथन उसका फुसलाना प्रतीत होता है। संयोगकालीन मधुमय वातावरण की सृष्टि में इससे कोई योग नहीं मिलता; किन्तु कवि जब आगे कहता है—

कंठ लाइ कै नारि मनाई। जरी सों बेलि सींचि पलुहाई ॥

तो वातावरण में एक नई जिन्दगी आ जाती है और पहले की उदासी के स्थान पर एक मुस्कान खेल लाती है, भले ही वह क्षणिक होती है। इतना करने पर ही तो—

फरैं सहस साख होइ, दारिउँ-दाख-जँभीर।
सबै पंख मिलि आइ जोहारे, लौटि उहै भइ भीर ॥

× × ×

पलुही नागमती कै बारी। सोने फूल फूलि फुलवारी ॥
संग सहेली नागमति, आपनि बारी माँह।
फूल चुनहिं, फल तूरहिं, रहसि कूदि सुख-छाँह ॥

× × ×

इस तरह हम देखते हैं कि कवि ने रत्नसेन और नागमती के संयोग में पर्याप्त मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक कटुता को प्रदर्शित करते हुए भी आवश्यक सरसता का यथास्थल निर्देश कर ही दिया है जिसकी रमणीयता पाठक के हृदय पर अपनी छाप अंकित किए बिना नहीं रहती।

पद्मावती और रत्नसेन के संयोग पक्ष में हमें प्रमुख रूप से निम्न स्थल मिलते हैं।—वसन्त खण्ड २—विवाह तथा पद्मावती रत्नसेन-भेंट खंड ३—षटऋतु वर्णन।

जहाँ तक वसन्त खंड की बात है उसमें संयोग का पूर्ण विधान नहीं हो पाता। पद्मावती अपनी सखियों के साथ जब रत्नसेन तथा उनके साथ के अन्य योगियों को घेर लेती है उस समय दोनों के दृग मिलते हैं, परन्तु अपूर्व सुन्दरी पद्मावती के मनमोहक रूप को देखकर रत्नसेन मूर्छित हो जाता है। पद्मावती भी तोते के कथनानुसार सहस्रों किरणों वाले सूर्य रूपी रत्नसेन को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाती है, किन्तु रत्नसेन का मूर्छित हो जाना संयोग की सृष्टि में विघ्न डाल देता है। प्रथम मिलन का सारा माधुर्य विनष्ट हो जाता है। राजा के मूर्छित हो जाने पर पद्मावती उसके वक्षस्थल पर इस आशा से चंदन लगा देती है कि शायद वह जग जाय, किन्तु ठंडक पाकर वह और भी सो जाता है।

अंततः पद्मावती इस असफल मिलन की बात उसके वक्षस्थल पर चंदन के अक्षरों में लिख वापिस चली आती है। इस प्रकार मिलन का यह नीरस दृश्य समाप्त होता है। जायसी का साधक रूप ही यहाँ अधिक उभरा है, कवि रूप नहीं। इसी से वर्णन में वह सजीवता नहीं है, हाँ उसका अपना एक अलग आकर्षण अवश्य है जो सहृदय पाठकों को अपनी ओर खींचे बिना नहीं रहता।

संयोग पक्ष का वास्तविक आरंभ तो पद्मावती रत्नसेन के विवाह खंड से ही होता है। देखिये रत्नसेन बारात सजाकर आ रहा है। पद्मावती महल के सबसे ऊपरी भाग पर खड़ी हो रत्नसेन की आती हुई बारात के अपरिमित सौंदर्य और साज-बाज को देख रही है। उसका मन-मयूर आनन्दातिरेक से नाच रहा है। हृदय सरोवर में कामना की चंचल लहरियाँ अठखेलियाँ कर रही हैं और रोम-रोम एक अपूर्व उल्लास से सिहर रहा है। कितना मादक और हृदय ग्राही चित्र है—

हुलसे नयन दरस मदमाते।
हुलसे अधर रंग रस राते॥
हुलसा बदन ओप रवि पाई।
हुलसि हिया कंचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी-बँद टूटे।
हुलसी भुजा, वलय कर फूटे॥
हुलसी लंक कि रावन राजू।
राम लखन दर साजहिं आजू॥
आज चाँद घर आवा सूरू।
आजु सिंगार होइ सब चूरू॥
आजु कटक जोरा है कामू।
आजु विरह सो होइ संग्रामू॥
अंग अंग सब हुलसे, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठावहिं ठाँव विमोही, गइ मुरछा तन आइ॥

यहाँ पर जायसी का कवि जागा है, जिसने साहित्य और मनोविज्ञान को एक साथ वाणी प्रदान की है। वस्तुतः इस वर्णन के शब्द-शब्द में जीवन डोल रहा है।

इसके उपरान्त विवाह होता है और विवाह के बाद पद्मावती-रत्नसेन के मिलन का आयोजन। ऐसे अवसर के उपयुक्त जायसी ने पहले कुछ विनोद का विधान किया है। सखियाँ पद्मावती को छिपा देती हैं और रत्नसेन मिलने को आतुर होता है। सखियों ने शायद ऐसा कुछ छेड़-छाड़ करने के उद्देश्य से ही किया था। परन्तु इस विधान में जायसी को सफलता नहीं मिली है। **"विनोद का कुछ भाव उत्पन्न होने से पहिले ही रसायनियों की परिभाषायें आ दबाती हैं। सखियों के मुख से 'धातु कमाय सिखै तौं योगी' सुनते ही राजा भी धातुवादियों की तरह बर्राने लगता है जिसमें पाठक या श्रोता का मन कुछ भी लीन नहीं होता।"** ऐसा जायसी ने अपनी बहुज्ञता प्रदर्शित करने के लिए ही किया। फिर भी कुछ ऐसे स्थल-विशेष को छोड़कर जायसी ने कई रसपूर्ण स्थल भी प्रदान किए हैं। देखिए पद्मावती जिस समय शृंगार करके राजा के पास जाती है उस समय कवि कैसा मनोहर चित्र खड़ा करता है—

साजन लेइ पठावा, आयसु जाय न मेट।
तन, मन, जोबन साजि कै देइ चली लेइ भेंट॥

इस दोहे में तन, मन और यौवन तीनों का अलग-अलग उल्लेख बहुत ही सुन्दर है। मन का साजना क्या है? समागम की उत्कण्ठा या अभिलाषा। बिना इस मन की तैयारी के तन की सब तैयारी व्यर्थ हो जाती। देखिए, प्रिय के पास गमन करते समय कवि परम्परा के अनुसार शेष-सृष्टि से चुनकर सौंदर्य का कैसा संचार कैसी सीधी-सादी भाषा में किया गया है—

पदमिनि गवन हंस गए दूरी।
कुंजर लाज मेल सिर धूरी॥
बदन देखि घटि चँद समाना।
दसन देखि कै बीजु लजाना॥

खंजन छपे देखि कै नैना।
कोकिल छपी सुनत मधु बैना।।
पहुँचहि छपी कँवल-पौनारी।
जाँघ छपा कदली होइ बारी।।

इस प्रकार जायसी पहले तो सौंदर्य के साक्षात्कार से हृदय के उस आनन्द सम्मोह का दर्शन करते हैं जो मूर्छा की दशा तक पहुँचा हुआ जान पड़ता है। फिर राजा अपने दुख की कहानी तथा प्रेम मार्ग में अपने ऊपर पड़े संकटों का वर्णन करके प्रेम मार्ग की उस सामान्य प्रवृत्ति का परिचय देता है जिसके अनुसार प्रेमी अपने प्रियतम के हृदय में अपने प्रति दया या करुणा का भाव जाग्रत करने का प्रयत्न किया करता है।

जायसी को हावों की सुन्दर योजना प्रस्तुत करने में असफलता मिली है। हाँ पद्मावती के स्वभाव सुलभ कुछ अनुभावों का वर्णन अवश्य सुन्दर प्रस्तुत किया है। तदुपरि कवि ने दोनों का मिलन कराया है जिसमें पर्याप्त सर-सता है।

कहि सत भाउ भएउ कँठ लागू। जनु कंपन सो मिला सोहागू।
चौरासी आसन वर योगी। खट रस विदंक चतुर सो भोगी।।
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चम्पा गहि डार ओनाई।
करी वेधि जनु भँवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के बाना।।
कंचन करी चढ़ी नग जोती। वरमा सौं वधा जनु मोती।।
नारंग जानुं कीर नख देई। अधर आँबु रस जानहु लेई।।
कौतुक केलि करहिं दुख नसा। कुँदहि कुरुलहिं जनु सर हंसा।।
रही वसाइ वासना, चोवा चँदन मेद।
जो अस पदुमिनि रावै, सो जानै यह भेद।।

× × ×

कहौं जूझि जस रावन रामा। सेजि विधंस विरह संग्रामा।।
लीन्ह लंक, कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।।

औ जोबन मैमँत विधंसा । विचला विरह जीव लै नंसा ।।
लूटे अंग अंग सब भेसा । छूटी मंग, भंग भे केसा ।।
कंचुकि चूरि, चूर भै ताने । टूटे हार, मोति छहराने ।।
वारी टाड सलोनी टूटी । बाहूँ कंगन कलाईं फूटीं ।।
चंदन अंग छूट तस भेंटी । वेसरि टूटि, तिलक गा मेटी ।।
पुहुप सिंगार सँवारि जो, जोबन नवल वसंत ।
अरगज जेउ हिय लाइ के, मरगज कीन्हें कंत ।।

× × ×

इसमें सन्देह नहीं कि वर्णन में घोर अश्लीलता के साथ निकृष्टता भी है तथापि उसकी सरसता से अस्वीकार नहीं किया जा सकता । प्रस्तुत प्रश्न में सरसता का परिचय प्राप्त करना मात्र ही हमारा लक्ष्य भी है । वर्णन लौकिक पक्ष में ही अधिक घटता है, इसी नाते आलोचक को यहाँ बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है कि वह किस पक्ष का समर्थन करे । अंततः आचार्य शुक्ल के शब्दों में मैं तो यही कहूँगा कि इस विलासिता के बीच-बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है । राजा जिससे मतवाला हो रहा है वह प्रेम की सुरा है जिसका वर्णन सूफी शायरों ने बहुत किया है ।

सुनु धनि ! प्रेम-सुरा के पिये । करन-जियन-उर रहै न हिए ।
जेहि मद तेहि कहा संसारा । की सो घूमि रहु की मतवारा ।।
जाकह होइ बार एक लाहा । रहै न ओहि विनु ओहो चाहा ।
अरथ दरब सो देह बहाई । की सब जाहु, न लाइ पियाई ।।

अन्त में लेखक ने निम्न मधुर शब्दों के साथ इस मिलन प्रसंग को समाप्त किया है :—

आजु मरम मैं जाना सोई । जस पियार पिउ और न कोई ।

कवि का यह वर्णन आध्यात्मिकता के रंग से रंगा होते हुए भी काफी सरस और सजीव है जो किसी भी सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखता है ।

इसी प्रकार कवि ने षटऋतु वर्णन खण्ड में भी बड़े ही सरस और हृदय ग्राही स्थल प्रस्तुत किए हैं। एक उदाहरण देखिए।

पद्मावती चाहति ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सोहाई।
चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।।
रंग राली पीतम सँग जागी। गरजे गगन चौंकि गर लागी।
सीतल बूँद ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाइ संसारा।।

राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती का पावस की शोभा का कैसा सुखद अनुभव हुआ है। ऐसे ही अन्य ऋतुओं का भी वर्णन (यद्यपि-सभी उन्हीं के रूप में ही हैं तथापि) बड़ा ही हृदयग्राही है।

अस्तु अब हम निष्कर्ष रूप में यह कहेंगे कि जायसी के पद्मावत के संयोग श्रृङ्गार की सजीवता में किसी भी सहृदय को विभोर कर देने की पर्याप्त क्षमता है। यद्यपि जायसी मूलत: वियोग के कवि हैं तथापि संयोग वर्णन में भी जीवन डाल देने की कला वे खूब जानते हैं। यह दूसरी बात है कि उन्होंने अपने संयोग-वर्णनों को अपेक्षित निखार नहीं दिया है, फिर भी उनकी सरसता और सजीवता तो स्तुत्य है ही। पता नहीं संयोग की इस व्यापक भाव-भूमि में उतरने का कवि ने उतना विस्तृत विधान क्यों नहीं किया।

प्रश्न १२—"पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुए भी रसात्मक है।" पद्मावत के सम्बन्ध-निर्वाह को ध्यान में रखते हुए इसका विवेचन कीजिए।

पद्मावत की कथा के इतिवृत्तात्मकता से उसके ऐतिहासिक आधार और रसात्मकता से स्थूल रूप में उसके काल्पनिक आधार की ओर ही संकेत मानना चाहिए। सामान्यतया पद्मावत की कथा को हम इन्हीं दो भागों में विभाजित भी करते हैं १. ऐतिहासिक और २. काल्पनिक। ग्रंथ का उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया है और पूर्वार्द्ध पूर्णतया काल्पनिक आधार पर। इतिहास और कल्पना के इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम हमें उसके कथा-क्षेत्र में उतरना पड़ेगा। पद्मावत की कथा इस प्रकार है :—

गंधर्वसेन सिंहलदीप का राजा था और चम्पावती उसकी रानी। चम्पावती के एक संतान हुई जिसका नाम पद्मावती रखा गया। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। साथ ही साथ पढ़ने में काफी दक्ष भी। पाँच वर्ष की आयु में ही वह बहुत कुछ पढ़ गई। जब वह ग्यारह वर्ष की हुई तो सातखंड के एक महल में अलग रहने लगी। उसके साथ उसकी कुछ सखियाँ भी रहती थीं और हीरामन नाम का एक तोता भी। तोता देश विदेश का घूमा हुआ और अत्यन्त ही पंडित था। पद्मावती उसे बहुत ही प्यार करती थी।

धीरे-धीरे पद्मावती वयस्क हुई परन्तु वैभव के गर्वीले राजा ने उसका व्याह नहीं किया। पद्मावती को इससे बड़ा दुःख हुआ। वह चिंतित रहने लगी। एक दिन उसने हीरामन से अपने काम पीड़ित मन की व्यथा कही। इस पर हीरामन ने उसे सांत्वना दी और कहा कि वह उसके योग्य वर ढूँढ़ेगा; उसे मुक्त कर दिया जाय। जब तक वह लौटकर नहीं आता पद्मावती को धैर्य धारण करना पड़ेगा। कोई दुर्जन इस बात को सुन रहा था। उसने राजा से सारी बात जाकर कह दी। राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने वधिकों को तोता मार डालने की आज्ञा दी। परन्तु पद्मावती ने किसी प्रकार छिपाकर उसके प्राण बचा दिए। वधिकों के लौट जाने पर हीरामन ने पुनः बाहर जाने का आग्रह किया किन्तु प्रेम के कारण पद्मावती ने उसे आज्ञा नहीं दी। संयोगवश पूर्णिमा को पद्मावती मानसरोवर में अपने सखियों के साथ स्नान करने गई। वहाँ वह जलक्रीड़ा में मग्न हो गई। इधर हीरामन पिंजड़ा तोड़ बाहर उड़ गया और जंगल में स्वतन्त्र पक्षियों के साथ रहने लगा। एक दिन एक बहेलिये ने उसे पकड़ लिया और झावे में रखकर ले चला।

× × ×

चित्तौड़ में राजा चित्रसेन राज करता था। उसके रत्नसेन नाम का एक पुत्र था। ज्योतिषियों ने बताया था कि वह पद्मिनी से विवाह करेगा, सिंहलदीप जायेगा। राजा चित्रसेन की मृत्यु के उपरान्त रत्नसेन गद्दी पर बैठा। एक दिन चित्तौड़ का एक बनिया व्यापार के लिए सिंहल पहुँचा। उसके साथ

एक ब्राह्मण भी था। बनिये ने वहाँ अनेक वस्तुएँ खरीदीं। ब्राह्मण ने हीरामन सुए को ही पंडित देखकर खरीद लिया। चित्तौड़ लौटने पर इन सबन अपनी-अपनी वस्तुएँ राजा रत्नसेन के हाथ बेच दीं। हीरामन रत्नसेन के रनिवास में रहने लगा। एक दिन जब रत्नसेन आखेट को गया हुआ था, उसकी रानी नागमती ने हीरामन से सगर्व पूछा **"तोते! सच-सच बतलाओ क्या मुझ जैसी सुन्दरी इस संसार में और भी कोई है?"** हीरामन ने हँसकर कहा, **"रानी सिंहलदीप की पद्मिनी तुमसे कहीं अधिक सुन्दरी है। उसके सौन्दर्य-लावण्य-प्रकाश के सम्मुख तुम रात्रि के समान हो।"** यह सुनकर नागमती बहुत घबराई। उसे यह आशंका हुई कि कहीं तोता पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य की चर्चा राजा से न कर बैठे, और राजा पद्मिनी के रूप पर मुग्ध हो उसे प्राप्त करने चल पड़े, फिर मुझे पिय-वियोग का दुःख उठाना पड़े। इसलिए उसने तोते को एक धाय के सिपुर्द कर दिया कि वह उसे मार डाले, किन्तु धाय ने उसे मारा नहीं अपितु छिपा दिया। राजा ने लौटकर तोता माँगा। नागमती झूठ न बोल सकी। अन्ततः तोता फिर राजा को मिल गया। राजा ने तोते से पद्मावती का रूप तथा नखशिख वर्णन करने को कहा। तोते ने विस्तार में सब बताया। राजा पद्मावती के लिए बेचैन हो उठा, उसे मूर्छा आ गई। अन्त में वह हीरामन के नेतृत्व में सोलह हजार कुंवरों के साथ योगी होकर उसे प्राप्त करने के लिए सिंहलदीप चल पड़ा और मार्ग के अनेक कष्टों को झेलते हुए वहाँ पहुँच ही गया। सिंहल पहुँचने पर नगर के बाहर ही महादेव के मंडप पर ही तोते ने राजा को रोक दिया और उससे कहा कि एकाग्रचित्त से प्रतीक्षा करो माघ पंचमी के दिन पद्मावती यहाँ महादेव जी की पूजा करने आयेगी तब तुम उसका दर्शन पा सकोगे। तदुपरि वह पद्मावती के पास चला गया। राजा पद्मावती के ध्यान में मग्न हो गया।

हीरामन ने जाकर पद्मावती से रत्नसेन के गुणों की बड़ी प्रशंसा की जिसे सुनकर पद्मावती अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह वसन्त पंचमी के दिन तोते के कथनानुसार मन्दिर में गई और रत्नसेन को देखा। रत्नसेन को उसने वैसा ही

पाया जैसा तोते ने कहा था। उधर रत्नसेन ने जब पद्मावती को देखा तो वह मूछित हो गया। वह उसके पास गई और चन्दन से उसके वक्षस्थल पर यह लिखकर चली आई कि **"तूने अभी भिक्षा के योग्य योग नहीं सीखा है, जब समय आया तो तू सो गया।"**

रत्नसेन की जब मूर्छा हटी तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ और जल मरने के लिए उद्यत हुआ। इसी समय उसकी रक्षार्थ देवताओं की प्रार्थना से महादेव और पार्वती ने परीक्षा द्वारा उसका प्रेम सत्य जानकर उसे आश्वासन दिया और एक सिद्धि-गुटिका भी प्रदान किया। इस गुटिका की शक्ति से वह योगियों सहित गढ़ में पहुँच गया और अगाध कुंड में घुसकर वज्र किवाड़ों को तोड़ दिया। प्रातः होते ही राजा ने योगियों को घेर लिया। रत्नसेन की आज्ञा से प्रेम मार्ग में क्रोध को उचित न समझ सभी योगी शांत रहे। राजा गंधर्वसेन ने उन सबको बन्दी बना लिया। यह सुनकर पद्मावती बहुत दुःखी हुई परन्तु तोते के यह कहने से कि रत्नसेन सिद्ध हो गया है वह मर नहीं सकता, उसे शांति मिली।

रत्नसेन को सूली की आज्ञा हुई। एक योगी पर आपत्ति देख महादेव और पार्वती भाट-भाटिन के रूप में वहाँ आये और राजा को बहुत समझाया कि रत्नसेन भी राजा है, वह सर्व प्रकार से पद्मावती का वर होने लायक है। परन्तु गन्धर्वसेन यह सुनकर और भी क्रुध हो उठा। राजा की यह दशा देख अब तो योगियों को भी क्रोध हो आया और वे युद्ध के लिए तैयार हो गए। युद्ध में महादेव, विष्णु तथा हनुमान आदि भी योगियों की रक्षार्थ प्रवृत्त हुए परन्तु जब गंधर्वसेन ने उन्हें पहचान लिया तो वह महादेव जी के पैरों पर गिर पड़ा। अन्त में पद्मावती का विवाह रत्नसेन से कर दिया गया। दम्पति ने सुख पूर्वक काम-क्रीड़ाएँ कीं। राजा के सोलह हजार साथियों का विवाह भी सिंहल की सुन्दरी पद्मिनी स्त्रियों के साथ कर दिया गया। इस प्रकार सबने सुख-चैन में एक वर्ष बिता दिया।

× × ×

अब कवि चित्तौड़ में वियोगिनी नागमती के पास आता है। रत्नसेन के वियोग में नागमती की बड़ी ही करुणाजनक स्थिति हो गई। वह विरह से दग्ध हो सम्पूर्ण विश्व को जलाने लगी। भावावेश में पति-वियोग में विह्वल नागमती जंगल-जंगल फिरने लगी। एक दिन आधी रात को एक विहंगम ने उसके दुख से द्रवित हो उसकी करुण-कथा पूछी। नागमती ने उसे अपनी व्यथा बताई और रत्नसेन तथा पद्मावती के पास संदेश पहुँचाने का उससे निवेदन किया। पक्षी तैयार हो गया। संदेश लेकर वह सिंहल पहुँचा। सिंहल में पहुँचते ही आग लग गई। रत्नसेन वन में आखेट के लिए आया हुआ था। वह एक पेड़ के नीचे बैठा विश्राम कर रहा था। सहसा उसने सुना कि ऊपर बैठे पक्षी किसी नवागंतुक से बात कर रहे हैं। इस पक्षी ने अपना परिचय दिया और नागमती के वियोग की कथा सबको सुनाई। राजा नीचे बैठा हुआ सब सुन रहा था। उसने पक्षी से सारी बात फिर पूछी। पक्षी कहानी सुना उड़कर चला गया। रत्नसेन पुकारता रहा पर वह न लौटा। रत्नसेन आखेट से वापिस आने पर उदास रहने लगा। चित्तौड़ की याद उसे सताने लगी। राजा रत्नसेन की इस उदासी का समाचार सिंहलपति गंधर्वसेन को भी मिला। रत्नसेन ने विदा माँगी। अन्त में शुभ मुहूर्त में बहुत धन-धान्य के साथ पद्मावती को लेकर वह चला।

परन्तु इस यात्रा में भी अनेक बाधाएँ आईं। जहाज अपना मार्ग भूल गया। वहाँ एक मछुए के भेस में कोई राक्षस शिकार कर रहा था। राजा ने उससे राह पूछी। परन्तु वह उसे अतल जल में ले गया और वहाँ जहाज डूब गया। राजा और पद्मावती अलग-अलग हो गए। बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी। वहाँ समुद्र की पुत्री लक्ष्मी खेल रही थी। लक्ष्मी ने उसे अपने पितागृह में रखा। जब रत्नसेन वहाँ आया तो लक्ष्मी ने अपने को पद्मावती बता उसे छलना चाहा किन्तु रत्नसेन ने उसे पहचान लिया। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती के पास ले गई। दोनों मिले और फिर वहाँ से चित्तौड़गढ़ की ओर प्रस्थान किया।

चित्तौड़ में घर-घर उत्सव हुए। नागमती भी बड़ी प्रसन्न हुई। परन्तु कुछ ही दिनों उपरांत वह पद्मावती के प्रति ईर्षा से जलने लगी। एक दिन दोनों रानियों में काफी संघर्ष हुआ और रत्नसेन को बीच में पड़कर उन्हें सन्तुष्ट करना पड़ा। अन्त में नागमती के नागसेन और पद्मावती के पद्मसेन नाम के पुत्र हुए।

यहाँ तक तो पूर्वार्द्ध की कथा चलती है। अब उत्तरार्द्ध में आइये—

चित्तौड़ के दरबार में राघव चेतन नाम का एक बहुत बड़ा पंडित था, जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजदरबार में वाद-विवाद हो गया। राजा ने उसे देश निकाला की आज्ञा दे दी। राघव चेतन दिल्ली चला गया। वहाँ उसने बादशाह अलाउद्दीन से पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य की चर्चा की। रूप का लोभी अलाउद्दीन उसकी बातों में आ गया। उसने राघव चेतन की सलाह से चित्तौड़ में रत्नसेन के पास एक पत्र भेजा जिसमें लिखा कि वह पद्मावती को बादशाही हरम में भेज दे और बदले में जितना राज्य लेना चाहे ले लें। रत्नसेन उस पत्र को पढ़कर बड़ा क्रुद्ध हुआ। दूत वापिस चला गया। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। कई वर्षों तक युद्ध चलता रहा। अन्त में दोनों में सन्धि हुई। बादशाह ने महल देखना चाहा। राजा घूम-घूम कर उसे महल दिखाने लगा। इस प्रकार घूमते हुए वह पद्मावती के महल के सामने पहुँचा और वहीं बैठकर राजा के साथ चौपड़ खेलने लगा। कौतूहलवश पद्मावती झरोखे से देखने लगी। सहसा उसका प्रतिबिम्ब अलाउद्दीन के सामने रखे शीशे पर पड़ा। उसे देखकर अलाउद्दीन के हृदय में पुनः वासना का संचार हो गया। भारतीय हिन्दू परम्परानुसार राजा उसे द्वार तक पहुँचाने आया। अन्तिम द्वार पर अलाउद्दीन ने छल से उसे कैद कर लिया और दिल्ली चला गया। पद्मावती ने गोरा बादल की सहायता से अलाउद्दीन को भी छलकर रत्नसेन को पुनः प्राप्त किया। इसी बीच जब रत्नसेन दिल्ली में कैद था, सुअवसर जान देवपाल ने दूती भेजकर पद्मावती को फुसलाना चाहा किन्तु उसकी दाल न गली। जब रत्नसेन दिल्ली से छूटकर आया, पद्मावती ने देवपाल की बात बताई। रत्नसेन बहुत क्रोधित हुआ। सवेरे ही उसने देवपाल पर चढ़ाई कर दी। वहाँ

द्वन्द युद्ध में वह वीर गति को प्राप्त हुआ। यहीं हमें यह न भूल जाना चाहिये रतनसेन दिल्ली से छूटकर जब चला तो बादल तो उसके साथ हो लिया और गोरा वहीं अलाउद्दीन की फौज से युद्ध करने लगा। एक हजार राजपूत वीरों के साथ वह वीर, मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा सुरक्षित चित्तौड़ पहुँच गया। देवपाल के साथ युद्ध करते हुए जब उसकी मृत्यु हो गई तो गढ़ बादल को सौंप दिया गया और पद्मावती तथा नागमती दोनों रानियाँ राजा रत्नसेन के शव के साथ सती हो गई। अब तक अलाउद्दीन सेना सहित चित्तौड़ आ चुका था। बादल ने वीरता से उसका सामना किया किन्तु अन्त में बेचारा फाटक की लड़ाई में मारा गया। अलाउद्दीन ने सगर्व किले में प्रवेश किया किन्तु उसके हाथ केवल राख आई। उसका स्वप्न महल ढह गया।

× × ×

कथानक का सारांश जान लेने के उपरांत अब हमें यह देखना है कि कथा के उत्तरार्द्ध के ऐतिहासिक आधार में कितना सत्यांश है।

टाड राजस्थान में दिए गए चित्तौड़ गढ़ आक्रमण को पढ़ने से पता चलता है कि विक्रम सं० १३३१ में लखनसी चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। उसकी आयु छोटी थी, इस नाते उसके स्थान पर उसका चाचा भीमसी (भीमसिंह) ही राज्य करता था। भीमसी का विवाह सिंहल के चौहान राजा हम्मीर शंक की कन्या पद्मिनी से हुआ था जो रूप गुण में जगत में अद्वितीय थी। उसके रूप की ख्याति सुनकर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ गढ़ पर चढ़ाई की। घोर युद्ध के उपरांत अलाउद्दीन ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा कि मुझे एक बार पद्मिनी का दर्शन हो जाय तो मैं दिल्ली लौट जाऊँ। इस पर यह ठहरी कि अलाउद्दीन दर्पण में पद्मिनी की छाया मात्र देख सकता है।

इस प्रकार युद्ध बन्द हुआ और अलाउद्दीन बहुत थोड़े से सिपाहियों के साथ चित्तौड़ गढ़ के भीतर लाया गया। वहाँ से जब वह दर्पण में छाया देखकर लौटने लगा तब राजा उस पर पूर्ण विश्वास करके गढ़ के बाहर तक उसे पहुँचाने आया। बाहर अलाउद्दीन के बहुत से सैनिक घात में पहले से ही लगे

थे। ज्योंही राजा बाहर आया वह पकड़ लिया गया और मुसलमानों के शिविर में जो चित्तौड़ से थोड़ी दूर पर था कैद कर लिया गया। राजा को कैद करके यह घोषणा की गई कि जब तक पद्मिनी नहीं भेज दी जायगी राजा नहीं छूट सकता है।

चित्तौड़ में हाहाकार मच गया। पद्मिनी के दुःख का तो कहना ही क्या। किन्तु उसने धैर्य से काम लिया और गोरा बादल की सहायता से अलाउद्दीन को भी छलकर राजा रत्नसेन को छुड़ा लाई। राजपूतों और अलाउद्दीन की फौज में भीषण युद्ध हुआ। अन्त में राजपूत विजयी हुए। अलाउद्दीन अपना सा मुँह लेकर दिल्ली लौट गया। इसी लड़ाई में वीर गोरा भी काम आया। और उसकी पत्नी उसके शव के साथ सती हो गई। सं० १३४६ में अलाउद्दीन ने फिर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। इसी दूसरी चढ़ाई में राणा अपने ग्यारह पुत्रों सहित मारे गए और पद्मिनी ने जौहर कर डाला।

टाड का यह वृत्त राजपूताने में रक्षित चारणों के इतिहासों पर आधारित है। **"दो चार ब्यौरों को छोड़कर ठीक यही वृत्तांत आइने अकबरी में दिया हुआ है। 'आइने अकबरी' में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रत्नसिंह या रतन-सेन) नाम है। रतनसी के मारे जाने का ब्यौरा भी दूसरे ढंग पर है। 'आइने अकबरी' में लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी चढ़ाई में भी हारकर लौटा। वह लौटकर चित्तौड़ से सात कोस पहुँचा था कि रुक गया और मैत्री का नया प्रस्ताव भेजकर रतनसी को मिलने के लिए बुलाया। अलाउद्दीन की बार-बार की चढ़ाई से रतनसी ऊब गया था इससे उसने मिलना स्वीकार किया। एक विश्वासघाती को साथ लेकर वह अलाउद्दीन से मिलने गया और धोखे से मार डाला गया। उसका सम्बन्धी आरसी चटपट चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाया गया। अलाउद्दीन चित्तौड़ की ओर फिर लौटा और उस पर अधिकार किया। आरसी मारा गया और पद्मिनी सब स्त्रियों के सहित सती हो गई।'**

इन दोनों ऐतिहासिक वृत्तों के साथ जायसी द्वारा वर्णित कथा का मिलान करने से कई बातों का पता चलता है। पहली बात तो यह है कि जायसी ने

जो रत्नसेन नाम दिया है वह उनका कल्पित नहीं है, क्योंकि प्रायः उनके समसामयिक या थोड़े ही पीछे के ग्रन्थ 'आइने अकबरी' में भी यही नाम आया है। यह नाम अवश्य इतिहासज्ञों में प्रसिद्ध था। दूसरी बात यह है कि जायसी ने रत्नसेन का मुसलमानों के हाथ से मारा जाना न लिखकर जो देवपाल के साथ द्वन्द युद्ध में कुंभलनेर गढ़ के नीचे मारा जाना लिखा है उसका आधार शायद विश्वासघाती के साथ बादशाह से मिलने जाने वाला वह प्रवाद हो जिसका उल्लेख आइने अकबरी कार ने किया है।

अपनी कथा को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं के ब्यौरों में कुछ फेरफार करने का अधिकार कवि को बराबर रहता है। जायसी ने भी इस अधिकार का उपयोग कई स्थलों पर किया है। सबसे पहले तो हमें राघव चेतन की कल्पना मिलती है। इसके उपरान्त अलाउद्दीन के चित्तौड़ गढ़ घेरने पर सन्धि की जो शर्त (समुद्र से पाई हुई पाँच वस्तुओं को देने की) अलाउद्दीन की ओर से पेश की गई वह भी कल्पित है। इतिहास में दर्पण के बीच पद्मिनी की छाया देखने की शर्त प्रसिद्ध है पर दर्पण में प्रतिविम्ब देखने की बात का जायसी ने आकस्मिक घटना के रूप में वर्णन किया है। इतना परिवर्तन कर देने से नायक रत्नसेन के गौरव की पूर्ण रूप से रक्षा हुई है। पद्मिनी की छाया भी दूसरे को दिखाने पर सम्मत होना रत्नसेन ऐसे पुरुषार्थी के लिए कवि ने अच्छा नहीं समझा। तीसरा परिवर्तन कवि ने यह किया है कि अलाउद्दीन को शिविर में बन्दी होने के स्थान पर रत्नसेन का दिल्ली में बन्दी होना लिखा है। रत्नसेन को दिल्ली में ले जाने से कवि को दूती और जोगिन के वृत्ताँत, रानियों के विरह और विलाप तथा गोरा बादल के प्रयत्न विस्तार का पूरा अवकाश मिला है। इस अवकाश के भीतर जायसी ने पद्मिनी के सतीत्व की मनोहर व्यंजना के अनन्तर बालक बादल का वह क्षात्र-तेज तथा कर्तव्य की कठोरता का वह दिव्य और मर्म स्पर्श दृश्य दिखाया है जो पाठक के हृदय को द्रवीभूत कर देता है। देवपाल और अलाउद्दीन का दूती भेजना तथा बादल और उसकी स्त्री का सम्वाद ये दोनों प्रसंग इसी निमित्त कल्पित किए गए हैं। देवपाल कल्पित पात्र है। पीछा करते हुए अलाउद्दीन के चित्तौड़ पहुँचने

के पहले ही रत्नसेन का देवपाल के हाथ से मारा जाना और अलाउद्दीन के हाथ से न पराजित होना दिखाकर कवि ने अपने चरित नायक की आन रखी है।—(आचार्य शुक्ल)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक कथावस्तु के चार केन्द्र मुख्य रूप से बनते हैं नागमती, पद्मावती और रत्नसेन तथा अलाउद्दीन। स्थानों में तीन नाम आते हैं चित्तौड़, सिंहलदीप और दिल्ली। नागमती चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की विवाहिता थी। पद्मावती पहले प्रेयसी थी पीछे विवाहिता बन गई। सिंहल, चित्तौड़ और दिल्ली तीनों ही ऐतिहासिक स्थान हैं। किन्तु जायसी द्वारा चित्रित सिंहल ऐतिहासिक सिंहल (अथवा वास्तविक सिंहल—लंकादीप) नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ के लोग अत्यन्त ही काले कलूटे होते हैं। अपूर्व सुन्दरी पद्मिनी सिंहल (लंकादीप) की नहीं हो सकती। सिंहल में पद्मिनी की कल्पना गोरखपंथी साधुओं के मस्तिष्क की उपज है।

कथा के उत्तरार्द्ध अंश का ऐतिहासिक परीक्षण कर लेने के उपरांत अब हम पूर्वार्द्ध की ओर चलते हैं। पूर्वार्द्ध की कथा के सम्बन्ध में छानबीन करने से यह पता चलता है कि अवध प्रान्त में पद्मिनी रानी और हीरामन सुए की कहानी अब तक प्रायः उसी रूप में कही जाती है। इतिहास की जानकारी रखने के कारण जायसी ने रत्नसेन अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं, पर कहानी कहने वाले नाम नहीं लेते हैं। केवल यही कहते हैं कि 'एक राजा था', 'दिल्ली का बादशाह था' इत्यादि। यह कहानी बीच-बीच में गा-गाकर कही जाती है। जैसे राजा की पहली रानी जब दर्पण में अपना मुँह देखती है तब सुए से पूछती है।

देस देस तुम फिरौ हौ, सुअटा। मोरे रूप और कहु कोई ?

सुआ उत्तर देता है—

काह बखानौं सिंहल कै रानी। तोरे रूप भरैं सब पानी ॥

अस्तु, यह अनुमान किया जाता है कि जायसी ने उसी प्रचलित कहानी को लेकर बीच-बीच में सूक्ष्म मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुन्दर स्वरूप दे दिया। इस कहानी को कई लोगों ने काव्य के रूप में बाँधा। जैसे—

१. हुसेन गजनवी—किस्सए पद्मावत (फारसी काव्य)

२. राय गोविन्द मुंशी—तुकफतुल कुलूब (फारसी गद्य)

३. मीर जियाउद्दीन तथा गुलाम अली—उर्दू शेरों में लिखा।

अस्तु, अब हम यह कहेंगे कि पूर्वार्द्ध की कथा काल्पनिक होते हुए भी ऐतिहासिक सम्भावनाओं से युक्त है।

यह तो हुई कथा की इति वृत्तात्मकता की चाँच-पड़ताल। अब यह देखना है कि कवि ने सम्बन्ध निर्वाह तथा रसात्मकता की रक्षा करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है।

सन्बन्ध निर्वाह को ध्यान में रखने से हमें निम्नलिखित बातों का पता चलता है।

१—सम्बन्ध निर्वाह अच्छा है। एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की शृङ्खला बराबर लगी हुई है। यद्यपि बीच-बीच में विराम हैं और वे कहीं-कहीं अनावश्यक भी लगते हैं किन्तु उनमें विवरण का लोप नहीं हुआ। इसलिए प्रवाह अखण्ड बना रह गया है।

२—पद्मावत के प्रासंगिक वृत्त—यथा हीरामन तोता खरीदने वाले ब्राह्मण का वृत्तान्त, राघव चेतन का हाल, बादल का प्रसंग—अधिकारिक वस्तु-स्रोत का मार्ग निर्धारित करते हैं। देवपाल का वृत्त भी इसी प्रकार का है। उसने अलाउद्दीन के पुनः चित्तौड़ पहुँचने से पूर्व ही रत्नसेन का अन्त हो जाता है। इस प्रकार इस प्रसंग में भी आधिकारिक कथावस्तु को दिशा मिलती है।

३—पद्मावत की आधिकारिक कथावस्तु घटना प्रधान है। घटना प्रधान प्रबन्ध काव्य में एक 'कार्य्य' होता है। जिसके लिए ही समस्त घटनाओं का आयोजन होता है। पद्मावत में वह 'कार्य्य' पद्मावती का सती होना है। राघवचेतन का प्रसंग प्रमुख कथा को कार्य्य की ओर अग्रसर करता है। रत्नसेन के लौटने में समुद्र मार्ग के तूफान वाली घटना यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कथा को गति तो नहीं देती है किन्तु परोक्ष रूप में वह सहायक सिद्ध होती है क्योंकि

समुद्र में रत्नसेन को जो पाँच रत्न मिले थे, अलाउद्दीन से सन्धि करने के हेतु बनते हैं। बादशाह गढ़ में प्रवेश करता है और फिर रत्नसेन का बंधन होता है। इस प्रकार यहाँ कवि ने बड़े कौशल से सूक्ष्म सम्बन्ध सूत्र रखा है। देवपाल की दूती वाली घटना से पद्मावती के सतीत्व गौरव की अपूर्व व्यंजना का अवकाश मिल जाता है और वही रत्नसेन की मृत्यु का हेतु बनती है जो कि प्रमुख 'कार्य्य' का (पद्मावती के सती होने का) कारण है।

४. **'कार्यान्वय'** के अन्तर्गत कथावस्तु के आदि, मध्य और अन्त तीनों को स्फुट होना चाहिए। पद्मावती की कथा में हम तीनों को अलग-अलग बता सकते हैं।

१. **आदि**—पद्मावती के जन्म से लेकर रत्नसेन के सिंहलगढ़ घेरने तक।

२. **मध्य**—विवाह से लेकर सिंहलदीप से प्रस्थान तक।

३. **अन्त**—राघवचेतन के देश निर्वासन से पद्मिनी के सती होने तक **"आदि अंश की सब घटनायें मध्य अर्थात् विवाह की ओर उन्मुख हैं। विवाह के उपरांत जो उत्सव समागम और सुख भोग आदि का वर्णन है उसे मध्य का विराम समझिए। उसके उपरांत राघवचेतन के निर्वासन से घटनाओं का प्रवाह 'कार्य्य' की ओर मुड़ता है।"**—(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

५. कथा में कुछ अनावश्यक विरामों का भी जायसी ने समावेश किया है जिससे काव्य के सौन्दर्य को धक्का पहुँचा है, और पाठकों को ऐसे स्थलों से अरुचि भी हो जाती है। किन्तु पूरे काव्य पर विहंगम दृष्टि डालने से यह अपराध क्षम्य कहा जा सकता है।

जहाँ तक काव्य की रसात्मकता का प्रश्न है कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कवि का वस्तु वर्णन, और पात्रों द्वारा भाव-व्यंजना दोनों बहुत अच्छे बन पड़े हैं। वस्तु वर्णन के अन्तर्गत निम्न वर्णन दर्शनीय है।

१. सिंहलदीप वर्णन।

२. जलक्रीड़ा वर्णन।

३. सिंहलदीप यात्रा वर्णन।

४. समुद्र वर्णन ।

५. विवाह वर्णन ।

६. युद्ध यात्रा वर्णन ।

७. युद्ध वर्णन .

८. बादशाह भोज वर्णन ।

९. चित्तौड़ गढ़ वर्णन ।

१०. षटऋतु, बारह मास वर्णन ।

११. रूप-सौन्दर्य वर्णन ।

पात्रों द्वारा भाव-व्यंजना में दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है।

(१) कितने भावों और गूढ़ मानसिक विकारों तक कवि की दृष्टि पहुँची है ?

(२) कोई भाव कितने उत्कर्ष तक पहुँचा है ?

जहाँ तक पहले बिन्दु की बात है जायसी में मनुष्य हृदय की अधिक अवस्थाओं का सन्निवेश नहीं मिलता । भावों के भीतर संचारियों का भी सन्निवेश कम ही मिलता है पद्मावत में रति भाव की प्रधानता है ।

दूसरे बिन्दु में जायसी बहुत बढ़े चढ़े हैं । विशेषत: विप्रलंभ पक्ष अधिक पुष्ट है । संयोग पक्ष में भी आकर्षण और सौन्दर्य है पर अपेक्षाकृत कम । एक स्थल देखिए—रत्नसेन से विवाह हो जाने पर पद्मावती अपनी काम दशा का वर्णन कैसे सीधे सादे पर भावगर्भित वचनों द्वारा करती है—

कौन मोहिनी दहुँ हुति तोहीं । जो तोहि विथा सो उतनी मोही ॥
बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ । चातक भइउँ कहत 'पीउ-पीऊ" ॥
जरिउँ विरह जस दीपक-बाती । पथ जोहत भइँ सीत सेवाती ॥
भइउँ विरह दहि कोइल कारी । डारि-डारि जिमि कूक पुकारी ॥

कौन सो दिन जब पिउ मिलै, यह मन राता जासु ।
वह दुख देखै मोर सब, हौं दुख देखौं जासु ॥

दोहे में 'अभिलाषा' का कैसा सच्चा प्रकृत स्वरूप है। वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही और सरस है ।

वर्णन की सरसता का एक और उदाहरण लीजिए। पद्मावती के सिंहल छोड़ने के समय सिंहल के प्रति उसके स्वाभाविक प्रेम की कैसी गम्भीर व्यंजना इन पंक्तियों में है—

गहबर नैन आए भरि आँसू। छाँड़व यह सिंहल कैलासू ॥
छाँडिउँ नैहर, चलिउ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौ तब रोई ॥
छाँडिउँ आपनि सखी सहेली। दूरि गवन तजि चलिउ अकेली ॥
नैहर आइ काह सुख देखा। जनु होइगा सपने का लेखा ॥
मिलहु सखी हम तहवाँ जाहीं। जहां जाइ पुनि आउब नाहीं ॥
हम तुम मिलि एकै संग खेला। अन्त बिछोह आनि गिउ मेला ॥

इसी प्रकार दूती और पद्मावती के संवाद में पातिव्रत की बड़ी ही विशद् व्यंजना हुई है। यथा स्थल अन्य रसों के वर्णन भी बड़े मार्मिक हैं।

नागमती का वियोग वर्णन तो पद्मावत का प्राण बिन्दु ही है। उसकी व्यापकता और महानता में जो कुछ भी कहा जाय अपर्याप्त होगा।

सारांश यह कि जायसी का पद्मावत सरसता से भरपूर है। कथा बड़ी ही मनमोहक और हृदयग्राही है। पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचने में सब प्रकार से समर्थ है। यही कारण है कि पूर्णतः इतिवृत्तात्मक होते हुए भी पद्माबत में रस की अजस्र धार बह रही है। प्रेम का जो दिव्य स्वरूप इसमें उदघाटित हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अस्तु अब हम निःसंकोच रूप से यह कह सकते हैं कि पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुए मी रसात्मक है।

प्रश्न १३—जायसी की रचनाओं में प्रकृति की बड़ी मनोहर झांकी देखने को मिलती है। उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए।

प्रकृति अनादिकाल से ही मानव की सहचरी रही है। उसके जीवन की अनुभूतियाँ प्रकृति की क्रोड़ में ही विकास की विविध शाखाओं से अपना स्नेह-सम्बन्ध जोड़ सकीं हैं। प्रकृति की गतिविधि में मानव का गतिविधि, और मानव की गतिविधि में प्रकृति की गतिविधि प्रारम्भ से ही डोलती आई है।

दोनों में एक-प्राण, दो-देह का सम्बन्ध है। तात्पर्य यह कि मानव और प्रकृति का संयोग पुरातन संयोग है। दोनों जन्म से ही एक दूसरे पर मुग्ध हैं।

कविता-कामिनी के शृङ्गार में प्रकृति ने अपना सर्वाधिक योग प्रदान किया है। देश और काल से प्रभावित होते हुए कवियों ने विविध रूपों में प्रकृति को निहारा है, जिनमें आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, रहस्यात्मक संकेत, अलंकारिक रूप, उपदेश ग्रहण रूप तथा पूर्व पीठिका आदि रूप प्रमुख हैं।

भावुक जायसी के हृदय ने भी प्रकृति के साथ नाना क्रीड़ाएँ की हैं। उनके काव्य में प्रकृति के अनेक सुन्दर और हृदयग्राही स्थल हैं जिनसे उनके सूक्ष्म निरीक्षण और अनुभव शक्ति का पता चलता है। स्थूल रूप में जायसी के प्रकृति चित्रण को निम्न दृष्टि बिन्दुओं से देखा जा सकता है :—

१—अलंकारिक रूप।

२—उद्दीपन रूप।

३—भावात्मक रूप।

४—रहस्यात्मक रूप।

५—उपदेशात्मक रूप।

६—प्रतीकात्मक रूप।

७—वस्तु परिगणन रूप

८—स्वतन्त्र रूप।

१—अलंकारिक रूप—अलंकारिक वर्णनों में अन्य कवियों की भाँति जायसी ने भी प्रकृति को अमोघ अस्त्र के रूप में अपनाया है और उसकी सहायता से अपनी अलंकार योजना में प्राण फूंका है। प्रकृति-प्रांगण में लहराते उपमानों के मनोहर उपवन से उन्होंने मनचाहे पुष्प चुने हैं. देखिए, तोता, राजा रत्नसेन से पद्मावती की श्यामल केश राशि के बीच निकली सेंदुररहित माँग का वर्णन करते समय किस प्रकृति से उपमान लेता है—

बरनौ मांग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढ़ा तेहि नाहीं॥
बिनु सेंदुर अस जानहु दिया। उजियर पंथ रैन मँह किया॥

कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन मह दामिनी परगसी ।।
सुरुज किरिनि जस गगन बिसेखी। जमुना माँझ सरसुती देखी ।।

× × ×

इसी प्रकार क्रमश: ललाट तथा नेत्रों का वर्णन देखिए।

कहौं लिलाट दुइजि कै जोती। दुइजिंहि जोति कहा जग ओती ।।

× × ×

नैन चतुर वै रूप चितेरे। कंवल पत्र पर मधुकर घेरे ।।
समुद तरंग उठहिं जनु राते। डोलहिं तस घूमहिं जनु माते ।।
सरद चंद मँह खंजन जोरी। फिरि-फिरि लरहिं अहोरि-बहोरी ।।

× × ×

सिंहलदीप से पद्मिनी को साथ ले रत्नसेन जब चित्तौड़ वापिस पहुँचा है और रात में नागमती के शयन-कक्ष में गया है तो उस समय नागमती की भाव-व्यंजना प्रकृति के योग से कितनी मनोहर हो उठी है नीचे की पंक्तियों में देखते ही बनती है:—

काह हँसौ पिय मोंसो, किएउ और सो नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख बरसै मेह ।।

× × ×

प्रकृति के सहारे जायसी ने दशा व्यंजना जो प्रस्तुत की है वह भी कम आकर्षक और प्रभावोत्पादक नहीं :—

सरग सीस धर धरती, हिया सो प्रेम समुँद।
नैन कौड़िया होइ रहे, लेइ लेइ उठहिं सो बुंद ।।
गगन सरोवर ससि कंवल, कुसुम तराइन्ह पास।
तू रवि ऊआ भौंर होइ, पौन मिला लेइ वास ।।
कमल जो विगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि पुनि पलुहै, जो पिउ सींचैं आइ ।।

× × ×

पद्मावती का प्रकृति के उपमानों के सहारे धाय से कथन देखिए :—

जोबन चाँद उआ जस, बिरह भएउ संग राहु।
घटति घटत अति खीनभा, कहै न पावौं काहु ॥

× × ×

समासोक्ति के सहारे कवि ने प्रकृति का चित्रण अनेक स्थानों पर किया है। कथा के प्रारम्भ में सिंहलदीप का वर्णन करता हुआ वह वृक्षों की छाया का प्रसंग आते ही अप्रस्तुत की ओर संकेत करता है। स्थल दर्शनीय है :—

घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
राविर सबै मलयगिरि लाई। भइ जग छाँह रैन होइ आई ॥
मलय समीर सुहावन छांहा। जेठ जाड़ लागै तिहि माँहा ॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै। हरियर सबै अकास देखावै ॥
पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू ॥
जेइ वह पाई छाँह अनूपा। फिरि नहिं आइ सहै वह धूपा ॥

अस अमराउ सघन घन, बरनि न पारौ अन्त।
फूलै छहौं ऋतु, जानहु सदा वसन्त ॥

२—उद्दीपन रूपः—इस रूप में जायसी ने दो प्रकार का चित्रण किया है :—

(अ) सुखद रूप उद्दीपन।
(ब) दुखद रूप उद्दीपन।

सुखद रूप उद्दीपन—पद्मावती परिणय के उपरांत षटऋतु वर्णन की भूमिका में, मानसरोवर तथा बसंत वर्णन में सुखद उद्दीपन के चित्र हैं। कतिपय स्थलों द्वारा वर्णन—मनोहरता का आस्वादन कीजिए। राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती को पर्वत की शोभा का कैसा अनुभव हो रहा है :—

पद्मावति चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सोहाई ॥
चमकि बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना ॥

रँग राती पीतम सँग जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी ।।
शीतल बूँद ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाइ संसारा ।।
हरियर भूमि, कुसंभी चोला। औ धनि पिउ संग रचा हिंडोला ।।

नागमती को जो बूँदे विरह दशा में बाण की तरह लगती हैं पद्मावती को संयोग दशा में वे ही बूँदे कौंधे की चमक में सोने की सी लगती हैं।

शरद् ऋतु का आनन्द देखिए :—

आइ शरद् ऋतु अधिक पियारी। नौ कुवार कातिक उजियारी ।।
पद्मावति भै पूनिउँ-कला। चौदह चाँद उइ सिंहला ।।
सोरह-कला सिंगार बनावा। नखत-भरा सूरुज-ससि पावा ।।
भा निरमल सब धरति अकासू। सेज सँवारि कीन्ह फुल-बासू ।।
सेज बिछावन औ उजियारी। हँसि-हँसि मिलहि पुरुष औ नारी ।।
सोन-फूल भइ पुहुमी फूली। पिय धनि सौं, धनि पिय सौं भूली ।।
चख अंजन देइ खंजन देखावा। होइ सारस जोरी रस पावा ।।

एहि ऋतु कंता पास जेहि, सुख तेहि के हिय माँह।
धनि हँसि लागै पिउ गरै, धनि गर पिउ के बाँह ।।

हेमन्त और वसंत के बिना तो यह वर्णन अधूरा ही रह जायगा अतः उसे भी देखिए :—

ऋतु हेमंत संग पियउ पियाला। अगहन पूस शीतल सुख-काला ।।
धनि औ पिउ मँह सीउ सोहागा। दुहुँक अंग एक मिलि लागा ।।
मन सौं मन, तन सौं तन गहा। हिय सौं हिय, विच हार न रहा ।।
जानहु चंदन लागउ अंगा। चंदन रहै न पावै संगा ।।
भोग करहि सुख राजा रानी। उन लेखे सब सिस्टि जुड़ानी ।।
जूझ दुबौ जोवन सौं लागा। बिच हुत सीउ जीउ लेइ भागा ।।
दुइ घट मिलि एकै होइ जाहीं। ऐस मिलहिं, तबहूँ न अघाहीं ।।

हंसा केलि करहिं जिमि, खूँदहिं कुरलहिं दोउ ।
सीउ पुकारि कै पार भा, जस चकई क विछोउ ।।

× × ×

प्रथम वसंत नवल ऋतु आई । सुरितु चैत बैसाख सोहाई ।।
चन्दन चीर पहिरि धनि अंगा । सेंदुर दीन्ह विहँसि भरि मंगा ।।
कुसुम हार ओ परिमल वासू । मलयागिरि छिरका कवि लासू ।।
सौर सुपेती फूलन्ह डासी । धनि औ कन्त मिले सुख वासी ।।
पिउ संजोग धनि जोबन जारी । भँवर पुहुप सँग करहि धमारी ।।
होइ फागु भलि चाँचरि जोरी । विरह जराइ दीन्ह जस होरी ।।
धनि ससि सियरि तपै पिउ सूरू । नखत सिंगार होंहि सब चूरू ।।

जेहि घर कन्ता ऋतु भली, आउ बसन्ता नित्तु ।
सुख बहरावैं देव हरै, दुक्ख न जानहि किन्तु ।।

× × ×

दुखद उद्दीपन रूप—नागमती प्रियतम के विरह में झुलस रही है । उसे प्रकृति का विकास अच्छा नहीं लगता अपितु और भी दुख बढ़ रहा है । जिधर ही उसकी दृष्टि जाती है, उधर ही उसे अपने विरह को उद्दीप्त करने वाली सामग्री दिखाई देती है, असाढ़ के घिरते हुए बादल उसके हृदय में हर्ष का संचार न कर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो उसे मदन की सेना घेरती आ रही हो ।

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा । साजा विरह दुंद दल साजा ।।
धूम साम धौरे घन धाए । सेत धजा वग पाँति देखाये ।।
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा । बुंद-बान बरसहिं घन घोरा ।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरो । कन्त ! उबारु मदन हौं घेरो ।।
दादुर मोर कोकिला, पीऊ । गिरै बीजु, घट रहै न जीउ ।।

× × ×

इसी तरह कार्तिक में शरद ऋतु का शशि उसके विरह को कई गुना बढ़ा देता है ।

कातिक सरद चन्द उजियारी। जग शीतल, हौं विरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा॥
तन मन सेज करै अगि दाहू। सब कहँ चँद, भएउ मोहि राहू॥

× × ×

फागुन का दृश्य देखिए—

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर विरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहिं-झरहिं बन ढाखा। भइ ओनंत फूल फरि शाखा॥
करहि वनस्पति हिए उलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फागु करहि सब चाँचरि चोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी॥

ऐसे ही बारहों महीनों में प्रकृति का विकास नागमती के विरह को उद्दीप्त करता रहता है। पद्मावती के विरह में भी कवि ने यथा स्थल प्रकृति के उद्दीपन रूप का सहारा लिया है।

३. भावात्मक रूप—इस शैली में कवि ने प्रकृति को अपने भावुक हृदय की आँखों से देखा है। भावुकतावश वर्णन अतिरंजित हो गया है, किन्तु प्रकृति का सत्य पूर्ण वेग से उदघाटित हुआ है। यह तो सभी जानते हैं कि समुद्र का वर्णन करके जायसी ने हिन्दी काव्य-साहित्य में एक बड़ा ही मनोहारी और नवीन अध्याय जोड़ा है। उन्होंने सात समुद्रों की कल्पना की है। उसमें से किलकिला समुद्र का वर्णन हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। देखिए कल्पना-प्रसूत अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी कितना भावात्मक और सशक्त है।

भा किलकिला अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा॥
उठै लहर परबत की नाईं। फिर आवै जोजन सौ ताईं॥
धरती लेइ सरग लेहि बाढ़ा। सकल समुद्र जनहुँ भा ठाढ़ा॥
नीर होय तर ऊपर सोई। माथे रंग समुद्र जस होई॥
फिर समुद्र जोजन सो ताका। जैसे भवै कोहार को चाका॥

सागर की भयानकता, वड़ी-वड़ी गम्भीर लहरों, हिलोरों आदि का कितना

सजीव चित्रण है। भँवरों के वर्णन में उसने और भी मनोहरता ला दी है। इसी प्रकार भावात्मक शैली का एक दूसरा उदाहरण लीजिए :—

ताल तलाव बरनि नहिं जाहीं। सूझै वार पार किछु नाहीं ॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। माना हुए गगन महँ तारे ॥
उतरहि मेघ चढ़हि लेइ पानी। चमकहि मच्छ बिजु कै बानी ॥

४. रहस्यात्मक रूप—इस शैली में जायसी ने प्रकृति का अत्यन्त व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रकृति का कण-कण उस परम प्रियतम के अनन्त सौंदर्य से परिवेष्टित देखा है। सर्वत्र उसकी छाया का आभास प्राप्त किया है। देखिए उस परोक्ष ज्योति और सौंदर्य सत्ता की ओर लौकिक दीप्ति और सौंदर्य के द्वारा जायसी कितना सुन्दर संकेत करते हैं :—

बहुतै जोति-जोति ओहि भई।
रवि शशि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जह विहसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी ॥
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नगहीर ॥

प्रकृति के बीच दिखाई देने वाली सारी दीप्ति उसी से है। इस बात का आभास हमें पद्मावती के प्रति कहे गए रत्नसेन के वाक्य से मिलता है।

अनु धनि ! तू निसिअर निसि मांहा। हौं दिनिअर जेहि कै तू छाँहा ॥
चाँदहि कहा जोति औ करा। सुरुज के जोति चांद निरमरा ॥

मानस के भीतर प्रियतम के सामीप्य से उत्पन्न उस अपरिमित विश्व व्यापी आनन्द की व्यंजना में प्रकृति का रहस्यात्मक रूप ही चित्रित हुआ है। देखिए वर्णन कितना हृदयग्राही है :—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥
गा अँधियार रैन-मसि छूटी। भा भिनसार, किरन रवि फूटी ॥
कँवल विगस तह बिहँसी देहीं। भवर दसन-होइ कै लेहीं ॥

५. उपदेशात्मक रूप—प्रकृति का यह रूप कवि की लेखनी से बहुत कम स्थलों पर चित्रित हुआ है । वैसे जहाँ-जहाँ ऐसे स्थल आए हैं । कवि ने उपदेशक रूप में प्रकृति के अनेक पदार्थों द्वारा अपने तात्विक सिद्धान्त प्रकट कराये हैं —

(१) 'पिव-पिव' कर लाग पपीहा ।
तुही-तुही कर गडुरी जीहा ।। (सिंहलद्वीप खण्ड)

(२) जावत पंछी जगत के भरि बैठे अमराऊ ।
आपनि-आपनि भाषा, लेहि दई कर नाउँ ।।

कहीं-कहीं दृष्टान्त की व्यंजना भी मिलती है :—

मुहमद बाजी प्रेम की ज्यों भावै त्यों खेल ।
तिल फूलहिं के संग ज्यो, होइ फुलाहल तेल ।।

एक स्थान पर कवि लोभ को पाप की नदी बताते हुए लिखता है—

लोभ पाप कै नदी अकोरा ।
सत्त न रहै हाथ जौ बोरा ।।

× × ×

६. प्रतीकात्मक रूप—यह शैली बहुत कुछ अंशों में रहस्यात्मक शैली के अंतर्गत ही आ जाती है । किन्तु कहीं-कहीं इसका स्वतन्त्र चित्रण भी मिलता है । नीचे की पंक्तियों में देखिए उस प्रियतम पुरुष के प्रेम से प्रकृति कैसी बिद्ध दिखाई दे रही है—

उन बानन्ह अस को जो न मारा ? बेधि रहा सगरौ संसारा ।।
गगन नखत जों जाहिं न गने । वे सब बान ओहि के हने ।।
धरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ।।
रोव-रोव मानुस तन ठाढ़े । सूतहिं सूत वेद अस गाढ़े ।।
बरुनि चाप अस ओपहँ, बेधे रन बन ठाख ।
सौजहिं तन सब रोआँ, पंखहि तन सब पाख ।।

प्रकृति की ये सभी वस्तुएँ उस व्यापक ब्रह्म के प्रेम बाणों के प्रतीक रूप में चित्रित हैं ।

सिंहल गढ़ को कवि ने परलोक का प्रतीक माना है। वहीं पर आंतकित होकर चन्द्र सूर्य, तथा नक्षत्र-तारे आदि परिभ्रमण करते हैं—

बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी।
औ जमकात फिरै जम केरी॥
धाइ जो वाजा कै मन साधा।
मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥
चाँद सुरुज औ नखत तराई।
तेहि डर अंतरिख फिरहिं सवाई॥

७. वस्तु परिगणन रूप—जायसी द्वारा चित्रित प्रकृति का यही रूप सर्वाधिक नीरस सिद्ध हुआ है। कवि को अपनी बहुज्ञता प्रदर्शन की धुन में वस्तुओं के नाम गिनाने के अतिरिक्त प्रकृति के सौन्दर्य की ओर देखने का ध्यान ही नहीं रह जाता। सिंहलद्वीप का वर्णन देखिए उसमें इस प्रकार के परिगणन का बाहुल्य है। लगता है जैसे कवि ने अपनी भावुक आंखों से इन्हें नहीं देखा है।

फरे आँब अति सघन सोहाये। औ जस फरे अधिक सिरनाए॥
कटहर डार पींड सन पाके। बड़हर, सो अनूप अति ताके॥
खिरनी पाकि खांड़ अस मीठी। जामुन पाकि भँवर अति डीठी॥
नरियर फरे, फरी फरहरी। फुरै जानु इन्द्रासन पुरी॥
पुनि महुवा चुअ अधिक मिठासू। मधु जस मीठ, पुहुप जस वासू॥
और खजहजा अनबन नाऊँ। देखा सब राउन अमराऊँ॥
लवँग, सुपारी, जायफल, सब फर फरे अपूर।
आस पास घन इमिली, औ घन तार खजूर॥

आस पास बहु अमृत वारी। फरी अपूर होइ रखवारी।
नारंग नीबू सुरँग जंभीरा। औ बदाम बहु भेद अँजीरा॥
गलगल तुँरज सदाफर फरे। नारंग अति राते रस भरे॥
किसमिस सेव फरे नौ पाता। दारिउ दाख देखि मन राता॥
लागि सुहाई हार फरयौरी। उनै रही केरा कै घौरी॥

फरे तूत कमरख औ न्योजी। राय करौंदा बर चिरौंजी ॥
संगतरा व छुहारा दीठे। और खजहजा खारे मीठे ॥
पानि देहि खँडवानी, कुवहि खाड़ बहुमेल।
लागी घरी रहट कै, सींचहि अमृत बेल ॥

इसी प्रकार के अनेक स्थल जायसी के काव्य में भरे पड़े हैं जिसने उनके साहित्य की मनोहरता और सरसता में विशेष विघ्न उत्पन्न किया है और कहीं कहीं तो इससे कथाक्रम में भी व्याघात पहुँचा है। वर्णन बड़ा ही नीरस बन पड़ा है।

८—स्वतन्त्र रूप—वस्तु परिगणन की तृष्णा ने कवि को प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण से भी लगभग वंचित ही रखा है। उस क्रम में कवि प्रकृति के सौन्दर्यशाली रूप को जैसे भुला बैठा हो। कुछ थोड़े से स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँ कवि अपनी परिगणन शैली का चित्रण करते हुए सहसा भावुक हो उठा है। ऐसे क्षणों में उसकी लेखनी से प्रकृति के स्वतन्त्र सौन्दर्य का भी कुछ उद्घाटन हो गया है। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे स्थल बहुत कम हैं। उदाहरण के लिए मानसरोदक—सरोवर का एक दृश्य यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

मानसरोदक बरनौ काहा। भरा समुद्र अस प्रति अवगाहा ॥
पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुवासू ॥
लंक दीप कै सिला अनाई। वाधा सखर घाट बनाई ॥
खण्ड-खण्ड सीढ़ी भईं गरेरी। उतरहि चढ़हि लोग चहुँ फेरी ॥
फूला कमल रहा होइ राता। सहस सहस पंखुरिन कर छाता ॥
उलथहिं सीप, मोति उतराहीं। चुगहिं हंस, औ केलि कराहीं ॥

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जायसी के प्रकृति चित्रण में विभिन्न शैलियों का समावेश अवश्य है किन्तु उसमें प्रकृति का वह स्वतन्त्र भव्य-सौन्दर्यशाली रूप नहीं उदघाटित हो सका है जिसकी हम जायसी ऐसे महाकवि से अपेक्षा करते थे। कवि की दृष्टि अपने आध्यात्मिक सौन्दर्य को ढूँढ़ने में इतनी व्यस्त थी उसे प्रकृति के स्वतन्त्र सौन्दर्य की ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिल सका। चित्तौड़ से सिंहल गढ़ तक का विस्तृत

प्रदेश प्रकृति के सौन्दर्य का आगार था किन्तु कवि उस विशद-सौन्दर्य को अपनी कल्पना में आत्मसात करने में समर्थ नहीं हो सका। उसने मनुष्य के आनन्द या दुःख के रंग में रंगी हुई प्रकृति को ही देखा। कवि के ऐसे वर्णनों में तात्विक विवेचन के प्रमुख और प्रकृति को द्वितीय स्थान मिला जिससे उसके काव्य में वह मधुरता, सरलता और मनोहारी छवि न आ सकी जो प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण से आती।

किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि कवि की आँखें प्रकृति सौंदर्य की ओर से एक दम विमुख रही हैं। प्रकृति ही तो उसके प्रियतम की अनन्त छवि का प्रतिविम्ब प्रस्तुत करती है, फिर वह कवि द्वारा उपेक्षित कैसे हो सकती थी। मनुष्य के सुख दुख के साथ कवि ने प्रकृति का जो सौंदर्य उपस्थित किया है वह बड़ा ही आकर्षक बन पड़ा है। प्रकृति के माध्यम से उस अलौकिक दिव्य-सौंदर्य की जो झाँकी उसने प्रस्तुत की है वह प्रशंसनीय है। प्रेम और प्रकृति को एक रंग में रंग कर कवि ने अपने काव्य में नया ही आकर्षण उत्पन्न किया है और यही उसके प्रकृति चित्रण की विशेषता है।

अस्तु अब हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि जायसी की रचनाओं में प्रकृति की बड़ी ही मनोहारी झाँकी देखने को मिलती है।

प्रश्न १४—पद्मावत के रस और अलंकार योजना पर एक संक्षिप्त निबन्ध प्रस्तुत कीजिए।

रस काव्य की आत्मा और अलंकार उसका शृङ्गार है। जिस काव्य में रस का परिपाक जितना ही होता है, वह काव्य उतना ही उत्तम कोटि का होता है। पद्मावत जायसी का महाकाव्य है। ऐसी दशा में उसमें महाकाव्य के अनुकूल समस्त रसों का समावेश आवश्यक है। किन्तु यहाँ हमें यह न भूलना चाहिए कि पद्मावत महाकाव्य होते हुए भी एक शृङ्गार प्रधान प्रेम-काव्य है। कवि का प्रमुख ध्यान प्रेम तत्व को शृङ्गारिक आवरण में व्यक्त करने की ओर ही अधिक रहा है। इससे अपेक्षाकृत अन्य रसों के चित्रण की ओर उसकी दृष्टि कम जा सकी है। वैसे इस सत्य को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता

कि पद्मावत में लगभग सभी रसों का समावेश है। अब हम कतिपय उद्धरणों द्वारा इस तथ्य का निरूपण करेंगे।

श्रृङ्गार रस—श्रृङ्गार के दो पक्ष होते हैं—संयोग श्रृङ्गार और वियोग श्रृङ्गार। वियोग श्रृङ्गार की विस्तृत भूमिका में ही विप्रलम्भ श्रृङ्गार का भी समावेश होता है। पद्मावत में श्रृङ्गार रस के इन दोनों पक्षों का उद्धारन किया गया है। हाँ यह अवश्य है कि इन दोनों में प्रमुखता वियोग श्रृङ्गार की है। इसी नाते पद्मावत को विरह काव्य भी कहा जाता है। वियोग श्रृङ्गार का जैसा भव्य उद्घाटन जायसी करने में समर्थ हुए हैं, वैसा संयोग श्रृङ्गार का नहीं। अब एक एक को अलग-अलग लीजिए।

संयोग श्रृङ्गार—इस श्रृङ्गार पर इसी ग्रंथ में एक भिन्न स्थान पर हम विस्तार में विचार कर चुक हैं, इसलिए यहाँ हम संकेत मात्र करेंगे।

पद्मावत में संयोग के केवल निम्न स्थल आते हैं। १—वसन्त खण्ड में २—विवाह तथा पद्मावती-रत्नसेन भेंट खण्ड में ३—षटऋतु वर्णन में और ४—नागमती-रत्नसेन भेंट के अवसर पर।

वसन्त खण्ड में पद्मावती के अपूर्व सौंदर्य को देखते ही रत्नसेन मूर्छित हो जाता है। इस नाते संयोग का वह वातावरण ही विनष्ट हो जाता है जिसके बीच उसका परिपाक होता। विवाह खण्ड में भी मिलन सुख की स्मृति मात्र से पद्मावती के अंग-अंग हुलसने लगते हैं।

> **अंग अंग सब हुलसे, कोइ कतहूं न समाइ।**
> **ठाँवहि ढाँव विमोही; गई मुरछा तनु आई॥**

परन्तु यहाँ नायक रत्नसेन के न होने से नायिका पक्ष में उन संचारियों का समावेश न हो सका जिनके माध्यम से स्थायी भाव रस अवस्था को प्राप्त होता। अस्तु शुद्ध रस की दृष्टि से यह स्थल भी अपने में सर्वांगीण रूप से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। वैसे चित्रण बड़ा ही मनोहारी और आकर्षक है।

पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में संयोग श्रृङ्गार का पूर्ण परिपाक हुआ है। नायक और नायिका जी खोल कर मिले हैं। बीच में अन्य कोई व्यवधान नहीं उपस्थित हो सका है जो रस विरोध उत्पन्न करता।

षट ऋतु वर्णन पद्मावती के पक्ष में संयोग शृङ्गार का उद्दीपन बन कर आया है। वही ऋतुएँ जो नागमती को पति वियोग से दुख दायिनी प्रतीत होती हैं पद्मावती के संयोगावस्था में सुखप्रदायिनी हो जाती हैं।

नागमती और रत्नसेन के बीच संयोग शृङ्गार का केवल एक स्थल आया है जब कि रत्नसेन सिंहल से लौटकर नागमती के पास जाता है। किन्तु उस समय के वर्णन को भी हम पूर्ण संयोग नहीं कह सकते क्योंकि उसमें भी अधिकांश नागमती द्वारा मान-प्रदर्शन और सपत्नी पद्मावती के प्रति ईर्ष्या भाव ही व्यक्त हुआ है। कवि चाहता तो संयोग शृङ्गार का भव्य चित्रण कर सकता था क्योंकि यहाँ उसके पास समस्त सामग्री थी, परन्तु न जाने क्यों उसने वैसा नहीं किया।

वियोग-शृङ्गार—पद्मावत में वियोग शृङ्गार भी नागमती-रत्नसेन और पद्मावती-रत्नसेन के आश्रय से चित्रित हुआ है। विशेष नागमती का वियोग वर्णन तो कवि की लेखनी से अद्वितीय ही बन पड़ा है। नागमती के वियोग की व्यापकता तथा और गम्भीरता और मार्मिकता बड़ी ही उत्कृष्ट कोटि की है। बारहमासे का वर्णन कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार के उद्दीपन के लिए किया है। यह बारहमासा उसके वियोग को उत्कर्ष प्रदान करता है। प्रत्येक मास की प्रकृति उसकी वियोगाग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित करती है। संयोगावस्था के सभी चित्र उसे तीक्ष्ण बाण से लगते हैं। वह विरह विदग्धा पंख हीन पंछी की भाँति तड़पती रहती है।

उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता। वह बावली सी जंगल में घूमने लगती है। उसे यही चिन्ता है कि किसी प्रकार उसके विरह की यह कथा उसके प्रियतम को मालूम हो जाय। उसे विश्वास है कि उसकी इस दशा को सुनते ही प्रियतम अवश्य लौट आयगा। अस्तु वह वन के पक्षियों से अपनी यह व्यथा-कथा कहती है किन्तु उसके शरीर से विरह की इतनी तेज लपटें निकल रही हैं कि—

जेहि पंखी के नियर होई, कहै बिरह कै बात।
सोइ पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

वियोग का विस्तार जड़ चेतन सब में परिव्याप्त हो रहा है। विरह की मार्मिकता से प्रकृति भी दुखी है।

तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। पखर पाक फाट हिय गोहूँ॥

कवि ने नागमती के विरह में वियोग की अनेक दशाओं का चित्रण किया है। कुछ चित्र देखिए—

उन्माद—पिउ सों कहेउ संदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुँआ हाह लाग।
अभिलाषा—राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौ निहोर कंत बस तोरे।
प्रलाप—हाड़ भये सब कींगरी, नसैं भईं सब तांति।
रोंव-रोंव ते धुनि उठै, कहौं विथा केहि भांति॥
चिन्ता—पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मन्दिर को छावा?

× × ×

बंध नाहि औ कंध न कोई। बात न आव कहौं का रोई॥
साठि नाठि, जग बात को पूछा। बिनु जिउ फिरै मूज तनु छूछा॥
भई दहेली टेक विहूनी। थाँभ नांहि उठि सकै न थूनी॥
कोरौ कहा ठाट नव साजा। तुम बिनु कंत न छाज न छाजा॥

इसी प्रकार अन्य कई दशाओं के चित्र स्पष्ट रूप में मिलते हैं। अब हम एक उद्धरण पद्मावती वियोग से देकर शृङ्गार रस का प्रसंग समाप्त करेंगे—

लक्ष्मी समुद्र-खण्ड में पद्मावती जब रत्नसेन से बिछड़ जाती है उस समय की उसकी दशा देखिए—

खन चेते, खन होइ बेकरारा। भा चन्दन बन्दन सब छारा॥
बाउर होइ परी पुनि पाटा। देहु बहाइ कंत जेहि घाटा॥
को मोंहि आगी देइ रचि होरी। जियत न बिछुरै सारस जोरी॥

इसी प्रकार रत्नसेन के मानस में भी विरह का संचार होता है—

तपि कै पावा मिलि कै फूला । पुनि तेहि खोइ सोइ पथ भूला ॥
कहँ अस नारि जग उजियाराही । कहँ अस जीवन कै सुख छाँही ॥
कहँ अस रहस भोग अब करना । ऐसे जिए चाह भल मरना ॥

जायसी के हृदय की पीर नागमती के विरह वर्णन में पूर्ण उत्कर्ष के साथ व्यक्त हुई है । वियोग का सच्चा चित्र नागमती वियोग में ही मिलता है। फारसी प्रभाव से कहीं-कहीं वीभत्सता तथा अतिशयोक्ति से अस्वाभाविकता भी आ गई है, किन्तु उसकी व्यापकता और मार्मिकता के सम्मुख ये दोष नगण्य हो जाते हैं । जायसी का विरह वर्णन परम्परा युक्त होते हुए भी मानसिक दशाओं तथा विभाव अनुभव से परिपूर्ण है । जिससे रस परिपाक में पर्याप्त सहायता मिली है ।

करुण रस—शृङ्गार के उपरान्त जायसी का कवि सर्वाधिक करुण में ही रमा है । करुण रस का प्रथम दृश्य वहाँ आता है जब रत्नसेन जोगी होकर निकलने लगता है और उसकी माता तथा पत्नी आदि विलाप करती हुई समझाने का प्रयत्न करती हैं :—

रोवत माय न बहुरत वारा । रतन चला, घर भा अँधियारा ॥
बार मोर जो राजहिं रता । सो लै चला सुआ परबता ॥
रोवहिं रानी तजहिं पराना । नोचहिं बार, करहि खरिहाना ॥
चूरहिं गिउ अभरन, उर-हारा । अब कापर हम करब सिंगारा ॥
जाकहँ कहहिं रहसि कै पीऊ । सोइ चला, काकर यह जीऊ ॥
मरै चहहिं पै मरै न पावहिं । उठे आगि, सब लोग बुझावहिं ॥

× × ×

घरी एक सुठि भयउ अंदोरा । पुनि पाछे बीता होइ रोरा ।
टूटे मन नौ मोती, फूटे मन दस काँच ।
लीन्ह समेट सब अभरन, होइगा दुख कर नाच ॥

× × ×

दूसरा दृश्य वहाँ है जब पद्मावती सिंहल से विदा हो रही है ।

रोवति मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जो कंत चलाई ।।
रोवहिं सब नैहर सिंहला। लेइ बजाइ कै राजा चला ।।
तजा राज रावन का केहू। छाँड़ा लंक बिभीषन लेहू ।।
भरी सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सौं भएउ गुरेरा ।।

× × ×

कोउ काहू कर नाहि नियाना। मया मोह बाँधा अरुझाना ।।
कंचन कया सो रानी, रहा न तोला माँसु ।
कंत कसौटी घालि कै, चूरा गढ़ै कि हाँसु ।।

× × ×

जब पहुँचाई फिरा सब कोऊ। चला साथ गुन-अवगुन दोऊ ।।

राजा रत्नसेन की मृत्यु पर भी कवि ने करुण परिस्थिति का दृश्य दिखाया है। स्थल पठनीय है।

(३) वात्सल्य—वात्सल्य का निरूपण वहाँ पर हुआ है जब रत्नसेन के योगी होकर निकलने की सूचना पाकर उसकी माँ का हृदय पुत्र-प्रेम से विह्वल हो पड़ता है।

कैसे धूप सहब बिनु छांहा। कैसे नींद परिहि भुइ माँहाँ ।।
कैसे ओढ़ब काथरि कंथा। कैसे पाँव चलब तुम पन्था ।।
कैसे सहब खिनहि खिन भूखा। कैसे खाब कुरकुट रूखा ।।

ऐसे ही बादल की माँ भी बादल को युद्ध में जाने से रोकती हुई कहती है—

बादल केरि जसौवै माया। आइ गहोसि बादल करि पाया ।।
बादल राय! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा ।।
जहाँ दलपती दल मरहिं, तहाँ तोर का काज ।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज ।।

इस प्रकार वात्सल्य के दृश्य पद्मावत में आये तो हैं पर वे हृदय में करुणा ही अधिक उत्पन्न करते हैं। ऐसा कोई भी पूर्ण वर्णन नहीं जिससे माँ का हृदय पुलक उठे।

भयानक और अद्भुत रस—इन रसों के वर्णन हमें सात समुद्र खण्ड में मिलते हैं :—

भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटे चहुँ ओरा ।।
उठहिं लहर परबत कै नाईं। फिरि आवहिं जोजन सौताईं ।।
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहु भा ठाढ़ा ।।
नीर होई तर ऊपर सोई। माथे रम्भ समुद जस होइ ।।

वीर रस—पद्मावत में वीर रस के चित्रण के, मूल में दो बातें हैं एक तो वीरगाथा काल की परम्परा और दूसरे पद्मावत की कथा का ऐतिहासिक झुकाव। राजा रत्नसेन और राजा गंधर्वसेन के युद्ध वर्णन में, अलाउद्दीन के साथ युद्ध वर्णन में तथा गोरा बादल की वीरता के प्रसंग में ही वीर रस का प्रस्फुटन हुआ है। अलाउद्दीन के साथ वाले युद्ध में वीर रस का उत्कृष्ट स्वरूप सामने आता है।

ओनइ आइ दूनौ दल साजे। हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे ।।
दुऔ समुद दधि उदधि अपारा। दूनौ मेरु खिखिंद पहारा ।।
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले। औ हस्त-हस्ती सहुँ पेले ।।
आँकुस चमक बीजु अस बाजहिं। गरजहिं हस्ति मेघ जनु गाजहिं ।।
धरती सरग एक भा, जूहहिं ऊपर जूह।
कोइ टरै न टारे, दूनौ वज्र समूह ।।
हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहिं। जनु पर्वत-पर्वत सो बाजहिं ।।
× × ×
कोइ हस्ती असवारहि लेहीं। सूँडि समेटि पाम तर देहीं ।।
× × ×
कोइ मैमंत संभारहि नाहीं। तब जानहिं जब गुद सिरजाहीं ।।
गगन रुहिर जस बरसै, धरती बहै मिलाइ।
सिर धर टूटि बिलाहि तस, पानी पंक विलाइ ।।
× × ×

इसी प्रकार युद्धोत्साह में गोरा कहता है—

हौं कहिए धौलागिरि गोरा। टरौं न टारि, अंग ना मोरा॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं। मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं॥
सहसौ ससि सेस सम लेखौं। सहसौ नैन इन्द्रसम देखौं॥

× × ×

होइ नल नील आजु हौं, देहुँ समुंद मँह मेंड़।
कटक साह कर टेकौं, होइ सुमेरु रन बेंड़॥

तात्पर्य यह कि वीर रस के चित्रण में जायसी को पर्याप्त सफलता मिली है।

वीभत्स रस—गोरा-बादल व अलाउद्दीन की सेना में युद्ध होते समय तथा नागमती के रुदन में, तथा पद्मावती की लाल उँगलियों के सौंदर्य वर्णन आदि में हमें वीभत्स रस के दर्शन होते हैं।

नागमती का रुदन देखिए :—

गिरि-गिरि परै करत कै आँसू। बिरह सरागन्हि भूजै माँसू॥

× × ×

इसी प्रकार पद्मावती की लाल उँगलियों के सौंदर्य वर्णन में देखिए—

हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा। रूहिर भरी अँगुरी तेहि साथा॥

रौद्र, शांत तथा हास्य रस—रौद्र रस का वर्णन उस समय आया है जब अलाउद्दीन का पत्र रत्नसेन को मिलता है। किन्तु गहराई में उतरने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ रस का परिपाक नहीं हो पाया है। केवल भाव-मात्र की सृष्टि हुई है।

शांत रस के दृश्य यत्र तत्र कई स्थानों पर आये हैं जैसे जीवन की व्याख्या करता हुआ कवि कहता है :—

मुहम्मद जीवन जल भरन, रहत घरी कै रीति।
घरी जो आइ ज्यों भरी, ठरी जनम गा बीत॥

पद्मावत का अंत शांत रस में ही हुआ है।

राती पिउ के नेह गईं, सरग भएउ रतनार।
जोरे उवा सो अथवा, रहा न कोई संसार।।

जहाँ तक हास्य रस का प्रश्न है उसे नगण्य स्थान मिला है। गम्भीर आध्यात्मिक भावों से भरे होने के कारण पद्मावत में हास्य का कोई उल्लेखनीय स्थल ही नहीं आया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मावत में शृङ्गार, वीर और करुण का ही परिपाक हुआ है शेष रस पूर्ण परिपक्वता को नहीं प्राप्त हुए हैं। रसराज शृङ्गार का ही पद्मावत में प्रमुख स्थान है।

अलंकार-योजना—जायसी ने अधिकतर सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। सादृश्य मूलक अलंकारों से स्वरूप का बोध कराने तथा भावों का उत्कर्ष प्रकट करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। सादृश्य मूलक के अन्तर्गत उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की बहुलता रहती है। इनमें से भी जायसी को हेतूत्प्रेक्षा सर्वाधिक प्रिय थी। इसके सहारे उन्होंने अपनी कल्पना का विस्तार खूब किया है। रूप वर्णन में अलंकारों की भरमार हो गई है। पद्मावती के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन करने में कवि ने अपनी कलम तोड़ दी है। नीचे अब हम कुछ प्रमुख अलंकारों के उद्धरण प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम जायसी का प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा ही लीजिए—

कंचन-रेख कसौटी कसी। जनु घन मँह दामिनी परगसी।।
सुरुज किरन जनु गगन विसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी।।

—वस्तूत्प्रेक्षा

आँख की वरुनियों का वर्णन देखिए :—

वरुनी का वरनौ इमि बनी। साधे बान जान दुइ हनी।।
जुरी राम रावन कै सेना। बीच समुद भये दुइ नैना।।

—वस्तूत्प्रेक्षा

कटि की सूक्ष्मता देखिए :—

मानहु नाल खंड दुइ भए। दुहु बिच लंक तार रहि गए।।

—वस्तूत्प्रेक्षा

× × ×

क्रियोत्प्रेक्षा—

अस वे नयन चक्र दुइ, भँवर समुद उलथाहिं।
जनु जिउ घालिहि डोल महँ, लेइ आवहिं, लेइ जाँहि ॥

हेतूत्प्रेक्षा—

सहस किरिन जौ सुरुज दिखाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई।

× × ×

दारिउ सरि जो न कै सका। फाटेउ हिया दरक्कि।

फलोत्प्रेक्षा—

पुहुप सुगंध करहि एहि आसा। मकु हिरकाई लेइ हम पासा।

× × ×

करवत तपा लेहि होइ चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू ॥

व्यतिरेक—

का सरवरि तेहि देऊँ मयँकू। चाँद कलंकी, वह निकलंकू ॥
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा ॥
सुआ सो नाक कठोर पंवारी। वह कोमल तिल-पुहुप सँवारी ॥

× × ×

वह पदमिनि चितउर जो आनी। काया कुंदन द्वादस बानी ॥
कुंदन कनक ताहि नहिं बासा। वह सुगंध जस कंवल विगासा ॥
कुंदन कनक कठोर सो अंगा। वह कोमल रंग पुहुप सुरंगा ॥

रूपकातिशयोक्ति—

राते कँवल करहि अलि भँवा। घूमहिं माति चहहि अपसवाँ।

× × ×

कँवल कली तू पदमिनि ! गइ निसि भयऊ विहानु ॥
अबहुँ न सपुट खोलसि, जब रे उवा जग भानु ॥
भानु नाँव सुनि कँवल विगासा। फिरि कै भँवर लीन्ह मधुवासा ॥

× × ×

साम भुअंगिनि रोमावली। नाभिहि निकसि कंवल कह चली ।।
आइ दुवौ नारँग बिच भई। देखि मयूर ठमकि रहि गई ।।

पन्नग पंकज मुख गहे, खंजन तहाँ बईठ।
छत्र सिंहासन, राज, धन, ता कँह होई जो दीठ ।।

साँगरूपक—

जोवन-जल दिन दिन जस घटा। भँवर छपान, हंस परगटा ।।

× × ×

अब कुछ अर्थालङ्कारों के भी उदाहरण लीजिए—

धरती बान वेधि सब राखी, साखी ठाठ देहि सब साखी ।।

निदर्शना एवं यमक—

× × ×

तारे गिनत छिपंह सब तारे। छिन न छिपहं पुतरी के तारे ।।

तद्गुण अलंकार—

नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर ।।

दृष्टान्त—

मुहमद बाजी प्रेम की ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलयाल तेल ।।

× × ×

निदर्शना—

जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई ।।
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ।।
जहँ जहँ विहंस सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकी जोति परगसी ।।

विभावना—

जीउ नाहि पै जिए गुसाईं। कर नाही पै करै सवाई ।।

सन्देह अलंकार—

मनहुँ चढ़ी भौरन्ह कै पाँती । चन्दन-खाँभ बास कै माती ।।
की कालिन्दी विरह सताई । चलि पयाग अरइल बिच आई ।।

अनुप्रास—

सिथिल न चंचल बड़ा न छोटा । तरुन न बूढ़ा लटा न मोटा ।।
बहुर न थोरा सजा न फूटा । मिला न बिछुरा जुरा न टूटा ।।

उपमा अलंकार—

कया कपूर हाड़ जनु मोती । तेहि ते अधिक दीन्ह विधि जोती ।
× × ×
सुरुज कान्ति करा जसि, निरमल नीर सरीर ।
× × ×

उपर्युक्त कुछ थोड़े से अलंकारों के उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने अलंकारों का प्रयोग अर्थ विस्तार और भावों के उत्कर्ष के लिए बड़े ही सुन्दर ढंग से और अधिक संख्या में किया है। किन्तु हमें यहाँ यह न भूलना चाहिए कि उन्होंने परम्परा पालन का ध्यान भी बहुत रक्खा है। इससे कहीं-कहीं भद्दी परम्परा का चित्र भी आ गया है। नीचे हम दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे इस तथ्य का उद्घाटन बड़ी ही सरलता से हो जाता है। प्रथम उदाहरण में सामग्री वीर रस की है और उसमें उन्होंने शृङ्गार का आरोप किया है। दूसरे उदाहरण में सामग्री शृङ्गार-रस की है, उसमें उन्होंने वीर रस का आरोप किया है। प्रथम उदाहरण स्त्री के रूपक में तोप का वर्णन लीजिए—

कहौं सिंगार जैसि वे नारी । दारू पियहिं जैसी मतवारी ।।
सेन्दुर आगि सीस उपराहीं । पहिया तरबिन चमकत जाहीं ।।
कुच गोला दुई हिरदय लाई । अंचल धुजा रहे छिटकाई ।।
रसना लूक रहहि मुख खोले । लंका जरै सो उनके बोले ।।
अलक जँजीर बहुत गिउ बाँधे । खींचहि हस्ती, टूटहि काँधे ।।
वीर सिंगार दोउ ऐके ठाऊँ । सत्रु-साल गढ़-भंजन नाऊँ ।।

नीचे का दूसरा उदाहरण परिणाम अलंकार का है। बादल युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए तैयार है, ऐसे अवसर पर उसकी नवागता पत्नी उससे वाद-विवाद करते हुए कहती है—

जौ तुम चहहु जूझि, प्रिय ! कीन्ह सिगार जूझ मै साजा ॥
जोबन आई सौहं होई रोपा। पिघला विरह कालदल कीपा ॥
भौंहे धनुष नयन सर साँधे। बरुनि बीच काजर बिष बाँधे ॥
अलक फाँस गिउ मेलि असूझा। अधर अधर सो चाहहि जूझा ॥
कुंभस्थल कुच दोऊ मैमंता। पेलौं सौह सँभारहु कंता ॥

× × ×

उपर्युक्त दोनों वर्णन कितने रस विरोधी हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि फारसी प्रभाव और परम्परा मोह ने ही जायसी के अलंकारिक वर्णन में वीभत्सता उत्पन्न की है। जहाँ इससे विरक्त रह कर स्वतन्त्र रूप से उन्होंने अलंकारों का वर्णन किया है वहाँ उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है और उससे उनके काव्य की श्री वृद्धि हुई है।

प्रश्न १५—"पद्मिनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौंदर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न करने वाला है।" जायसी के रूप वर्णन की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए !

पद्मिनी जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' की नायिका और उनके सूफी धर्मानुसार ब्रह्म की लौकिक प्रतीक है। उसके सौन्दर्य वर्णन के माध्यम से उन्होंने उस चिरंतन महाज्योति के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन किया है। वस्तुत: रूप सौन्दर्य वर्णन ही पद्मावत की कथा का मूलाधार है। अस्तु जायसी ने पद्मावती के रूप का बहुत ही विशद वर्णन उपस्थित किया है। अब हमें यह देखना है कि उनके रूप वर्णन के वे कौन्-कौन से आकर्षण-विन्दु हैं जिन्हें देखते ही पाठक की दृष्टि सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न हो जाती है।

'पद्मावत' में रूप-सौन्दर्य वर्णन की योजना आठ स्थलों पर की गई है। उनमें से भी दो स्थलों पर अलौकिक सौन्दर्य समन्वित, पद्मावती के स्त्री रूप का वर्णन विशेष उल्लास और उत्साह से किया गया है। वे दोनों प्रमुख स्थल **निम्न हैं :**

१—तोते द्वारा राजा रत्नसेन के सम्मुख।

२—राघव चेतन द्वारा बादशाह अलाउद्दीन के सम्मुख।

दोनों वर्णन नखशिख प्रणाली पर हैं (यद्यपि फारसी शैली से प्रभावित होने के नाते जायसी ने उसे शिख-नख रूप में उपस्थित किया)। अंग-प्रत्यंगों के वर्णन के लिए प्रमुखतः सादृश्य मूलक उपमानों का विधान किया गया है। अधिकतर उपमान परम्परा प्रचलित ही है। हाँ कुछ उपमान फारसी साहित्य के प्रभाव से भी आ गए हैं और कुछ लोक गृहीत तथा कुछ नवीन मौलिक उपमान हैं।

पद्मिनी के सौन्दर्य को कवि ने दिव्य-सौन्दर्य के रूप में देखा है। इसी नाते गर्भ-काल से ही उस अलौकिक-सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत करने में वह सतर्क है। कवि का संकेत देखिए :—

प्रथम सो जोति गगन निरमई।
पुनि सो पिता माथे मनि भई॥
पुनि वह ज्योति मातु घट आई।
तेहि ओदर आदर बहु पाई॥
जस औधान पूर होइ तासू।
दिन-दिन हिए होइ परगासू॥
जस कंचल झीने मँह दीया।
तस उजियार दिखावै हीया॥

—जन्म खण्ड

दिव्य-सौन्दर्य शालिनी का जन्म हो गया :—

भए दस मास पूरि भै घरी। पद्मावति कन्या औतरी॥
जानहु सुरुज किरन हुति काढ़ी। सूरज करा घाटि वह बाढ़ी॥

भा निसि माँह दिन कै परगासू । सब उजियार भएउ कवि लासू ॥
अते रूप भइ कन्या, जेहि सरि पूज न कोई ।

अलौकिक-रूपा पद्मावती के रूप-वर्णन के निम्नलिखित आकर्षण-बिन्दु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

(अ) पद्मावती का पारस रूप ।

(ब) रूप सौन्दर्य का सृष्टि-व्यापी प्रभाव तथा लोकोत्तर-कल्पना ।

(स) अप्रस्तुत-विधान ।

(द) यौवन-भार-भरिता पद्मिनी का नख-शिख ।

(य) रूप-सौन्दर्य के उपमान ।

(फ) उपमान-रूपों का सौन्दर्य ।

(अ) पद्मावती रूप को कवि ने पारस-रूप की संज्ञा दी है । उस पारस-रूप की चर्चा 'पद्मावत' में स्थान-स्थान पर आई है । मानसरोवर खण्ड की अन्तिम पंक्तियों में पद्मावती के पारस-रूप की व्यंजना देखिए :—

कहा मानसर चाह सो पाई । पारस-रूप इहाँ लगि आई ।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे । पावा रूप, रूप के दरसे ॥
मलय समीर बास तन आई । भा शीतल गै तपनि बुझाई ॥
बिगसे कुमुद देखि ससि रेखा । भै तेहि रूप जहाँ जो देखा ॥
पाए रूप, रूप जस चहा । शशि मुख सब दरपन होइ रहा ॥
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर ॥

"पद्मावती के हँसते ही चन्द्र किरण सी आभा फूटी, इससे सरोवर के कुमुद खिल उठे । यहीं तक नहीं, उसके चन्द्रमुख के सामने वह सारा सरोवर दर्पण सा हो उठा अर्थात् उसमें जो-जो सुन्दर वस्तुएँ दिखाई पड़ती थीं वे सब मानों उसी के अंगों की छाया थीं । सरोवर में चारों ओर जो कमल दिखाई पड़ रहे थे वे उसके नेत्रों के प्रतिबिम्ब थे; जल जो इतना स्वच्छ दिखाई पड़ रहा था वह उसके स्वच्छ निर्मल शरीर के प्रतिबिम्ब के कारण । उसके हास की

शुभ्र कांति की छाया वे हँस थे जो इधर-उधर दिखाई पड़ते थे और उस सरोवर में (जिसे जायसी ने एक झील या छोटा समुद्र माना है) जो हीरे थे वे उसके दशनों की उज्ज्वल दीप्ति से उत्पन्न हो गए थे। पद्मावती का रूप वर्णन करते-करते किस सौंदर्य सत्ता की ओर कवि की दृष्टि जा पड़ी है। जिसकी भावना संसार के सारे रूपों को भेदती हुई उस मूल सौंदर्य सत्ता का कुछ आभास पा चुकी है वह सृष्टि के सारे सुन्दर पदार्थों में उसी का प्रतिबिम्ब देखता है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

जायसी की इन्हीं पंक्तियों की प्रशंसा करते हुए प्रो० शिवसहाय पाठक लिखते हैं "यह है पद्मावती के पारस रूप का लोकोत्तर-सृष्टि व्यापी प्रभाव। जिस प्रकार पारस-पत्थर के स्पर्शमात्र से कुधातु स्वर्ण बन जाती है उसी प्रकार पद्मावती का 'पारस रूप' समस्त सृष्टि को अपने रँग में रँग सकता है। उसी के आलोक से समग्र संसृति आलोकित है। पारस रूप वाली पद्मावती सरोवर के पास तक चली आई, तब सरोवर उन चरणों के स्पर्श करने से निरमल हो गया। 'पावा रूप-रूप के परसे' उस पारस रूप के दर्शन मात्र से सरोवर रूपवान् हो गया। उसकी चन्द्रकला को देखकर कुमुद विकस गए आदि।

इसी प्रकार कवि ने राजा-सुआ संवाद खण्ड में भी पद्मावती के 'पारस रूप' के सृष्टि व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना की है।

सुनि रवि नाव रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु बाता।।
तीन लोक चौदह खंड सबहिं परै मोंहि सूझि।
प्रेम छाँड़ि नहिं लोन किछु जो देखा मन बूझि।।

नीचे की पंक्तियों में, लिलाट कांति के माध्यम से लोकोत्तर तथा सृष्टि व्यापी ज्योति का वर्णन देखिए:—

पारस जोति लिलाटहिं ओती। दृष्टि जो करै होय तेहि जोती।।
ससि और सूर जो निरमल, तेहि लिलाट के ओप।
निसि दिन दौरि न पूजहिं, पुनि-पुनि होंहि अलोप।।

अलाउद्दीन जैसे अधम पात्र को भी दर्पण द्वारा उस पारस रूप का प्रतिभास हो जाता है :—

विहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह दरपन महँ देखी॥
होतहिं दरस, परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना॥

(ब) रूप सौन्दर्य के उपमान—अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की भाँति जायसी ने भी अपनी काव्य-नायिका के चरम-सौन्दर्य का उद्घाटन किया है और उसके लिए उन्होंने सुन्दरतम उपमान ढूंढे हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पद्मावती के रूप वर्णन की विशेषताओं पर विचार करते हुए लिखा है "केशों की दीर्घता, सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार केवल सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उसके लोक व्यापी प्रभाव की ओर संकेत किया है।" इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भी मत कुछ इसी प्रकार का है "केशों की दीर्घता सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उनके प्रभाव की उद्भावना की है। इस छाया और अन्धकार में माधुर्य और शीतलता है, भीषणता नहीं।" वस्तुतः जहाँ कहीं जायसी को अवसर मिला है वे तुरन्त श्लेष समासोक्ति आदि के माध्यम से सृष्टि व्यापी सुन्दर सत्ता की ओर इंगित करने से नहीं चूकते :—

सरवरि-तीर पद्मिनी आई। खोपा छोरि केस मुकलाई॥
ओनई घटा परी जग छाँहा। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहा॥
वेनी छोरि छार जौ बारा। सरग पतार होइ अँधियारा॥

इसी प्रकार पद्मावती के पुतली फेरने से उत्पन्न रस समुद्र को देखिए :—

जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाँहि पल माँहा॥
जबहि फिराहिं गगन गहि बोरा। अस वे भँवर चक्र कै डोरा॥
पवन झकोरहि देहिं हिलोरा। सरग लाइ भुँह लाइ बहोरा॥

मंद मृदु हास का विशद चमत्कारिक प्रभाव तो पारस रूप के अन्तर्गत देख ही चुके हैं। अब भौंहों का वर्णन देखिए :—

भौंहें स्याम धनुक जनु ताना। जासहुँ फेर हनै विष बाना ॥
उहै धनुक किरसुन पर अहा। उहै धनुक राधौ कर गहा ॥
ओहि धनुक रावन संघारा। ओहि धनुक कंसासुर मारा ॥

(पद्मावती के भृकुटि विलास का सृष्टि व्यापी प्रभाव)

वरुनी का वरनौ इमि बनी। साधै बान जान दुइ अनी ॥

"वरुनी को वाणों का रूप देकर संसार के रोम-रोम में उसका अस्तित्व घोषित करना वास्तव में उच्चकोटि का संकेत है।···यह कवि की प्रतिभा की महानता है।"

—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४५८

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा ॥
गगन नखत जो जांहि न गने। वे सब बान ओहि के हने ॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ॥
रवि ससि नखत दियहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ॥
'बेनी छोरि झार जो बारा।' 'रैनि होइ जग दीपक लेसा' ॥

"ऊपर की चौपाइयों से स्पष्ट है कि पद्मावती के रूप वर्णन में जायसी ने सौंदर्य के स्पष्ट व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना की है। लगता है कि जायसी की भावना संसार के समस्त रूपों को भेदती हुई उस अप्रीतम अनन्त मूल सुन्दर सत्ता का कुछ प्रातिभासिक ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी। अतः वे सृष्टि के नाना पदार्थों में उसी का प्रतिविम्ब प्रोद्भासित रूप में देखते हैं।" प्रो० शिवसहाय पाठक, पद्मावत का काव्य सौंदर्य पृष्ठ ६४।

(स) अप्रस्तुत विधान (उपमान रूप)—पद्मावत में प्रयुक्त उपमानों को स्थूल रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है:—

(१) नखशिख वर्णन के उपमान

(२) अन्य विषयों के वर्णनों से सम्बन्धित उपमान।

इन दोनों वर्गों पर प्रकाश डालते हुए प्रो० पाठक लिखते हैं कि "इन दो कोटियों के अन्तर्गत जायसी द्वारा गृहित साहित्यिक परम्परा के रूढ़िगत उपमान, जायसी द्वारा गृहित लोक-परम्परा और लोक-जीवन के उपमान तथा

जायसी के नवीन मौलिक उपमान सम्मिलित हैं। इसी अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत जायसी द्वारा प्रयुक्त भाव वर्णन के उपमान, नखशिख वर्णन के उपमान, तथा वस्तु वर्णन के उपमान भी आ जाते हैं। जायसी ने उत्कृष्ट कोटि के अप्रस्तुत विधान द्वारा पद्मावत के काव्य-सौंदर्य को अपेक्षाकृत अधिक तीव्र बताया है।"

(द) यौवन भार भरिता पद्मावती का नखशिख—जन्म खण्ड में ही जायसी ने पद्मावती के संक्षिप्त नखशिख का बड़ा ही मनमोहक और ललित वर्णन किया है। वर्णन का आकर्षण देखिए :—

भै उनन्त पद्मावत बारी। रचि-रचि विधि सब कला सँवारी ॥
जग वेधा तेहि अंग सुवासा। भँवर आइ लुब्धै चहुँ पासा ॥
वेनी नाग मलयागिरि पैठी। ससि माथे होइ दूइज बैठी ॥
भौंह धनुष साधे सर फेरैं। नयन कुरंग भूलि जनु हेरैं ॥
नासिक कीर कँवल मुख सोहा। पद्मिनी रूप देखि जग मोहा ॥
मानिक अधर, दसन जनु हीरा। हिय हुलसे कुच कनक गँभीरा ॥
केहरि लंक, गवन गज हारे। सुर नर देखि माथ भुंह धारे ॥
जग कोइ दीठि न आवे, आर्छाहं नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी, तप सार्धाहं तेहिं आस ॥

इसमें अप्रस्तुत उपमानों के द्वारा पद्मावती के अप्रतिम रूप का वर्णन किया गया है। कवि ने श्लेष का सहारा लेकर दो-दो अर्थों की निष्पत्ति की है। एक तो इसमें पद्मावती रूपी बाग का चित्रण किया गया है और दूसरे यौवन भार से झुकी कुमारी पद्मावती के अंग-प्रत्यंगों का रूप वर्णन। यहाँ 'बारी' शब्द श्लिष्ट है। बारी का अर्थ बाग भी होता है और बालिका अथवा कुमारी भी।

(य) रूप-सौंदर्य के उपमान—पद्मावत में आठ स्थलों पर नखशिख वर्णन मिलते हैं :—

(१) सिंहल की वेश्याओं का अव्यवस्थित नखशिख।
(२) यौवन भार भरिता पद्मावती का नखशिख (रूप वर्णन)

(३) मानसरोवर में स्नान के लिए उद्यत पद्मावती के केश खोलते समय का संक्षिप्त व्यंजनात्मक नखशिख ।

(४) हीरामन शुक द्वारा रत्नसेन से कथित पद्मावती का नखशिख (रूप वर्णन) ।

(५) लक्ष्मी-समुद्र खण्ड में व्यथित, मुरझाई और क्लाँत पद्मावती का नखशिख ।

(६) नागमती और पद्मावती के वादविवाद में आत्मप्रशंसा रूप में वर्णित नखशिख ।

(७) पद्मावती का नागमती से आत्मश्लाघारूप में वर्णित सौंदर्य ।

(८) अलाउद्दीन से राघव चेतन द्वारा कथित पद्मावती का नखशिख ।

इनमें से प्रथम को छोड़ शेष सभी पद्मावत से सम्बन्धित हैं । इन सभी स्थानों पर जायसी ने शरीर के विभिन्न अंगों उपांगों के लिए जिन उपमानों के प्रयोग किए हैं वे समष्टि रूप में निम्नलिखित हैं ।

(१) **केशराशि**—जिसके लिए नाग, नागिन, कस्तूरी, प्रेम जंजीर, भ्रमर तथा राहु आदि प्रयुक्त हुए हैं ।

(२) **मस्तक (मांग)**—यमुना में सरस्वती, वीरबहूटी, विद्युत, आरक्त अस्ति कंचन रेखा, सूर्यकिरण, वग पंक्ति, राग रंजित, मधु ऋतु आदि ।

(३) **ललाट**—सूर्यकिरण, द्वितीया का चन्द्र, पारस ज्योति आदि ।

(४) **भौंह**—धनुष, आदि ।

(५) **नेत्र**—रक्त कमल, खंजन, तुंशा, तरंग मानिकमय सरोवर, आदि ।

(६) **बरुनी**—राम रावण की सेना, संधान किया गया वाण ।

(७) **नासिका**—शुक, सेतु बंध, आर्स, तिल पुष्प आदि ।

(८) **अधर**—दुपहरिया फूल, विद्रुम, माणिक्य, सूर्य (प्रातः कालीन) रक्त रंजित आर्स ।

(९) **दाँत**—हीरा, दाड़िम, विद्युत, श्याम, मकोय आदि ।

(१०) **रसना**—अमृत कौंप, सरसुती की जीभ आदि ।

(११) कपोल—खाँड़ के लड्डू, कमल, गेंद नारंग, नारंग आदि ।
(१२) तिल—घुंघुची का काला मुँह, भ्रमर, विरह की स्फुलिंग तथा अग्निवाण व ध्रुव आदि ।
(१३) श्रवण—नक्षत्र खचित चन्द्र, सूर्य, सीप आदि ।
(१४) मुख—चन्द्र तथा पद्मनाल आदि ।
(१५) ग्रीवा—कम्बु, सुराही, मयूर, घिरिन परेवा, तमचुर आदि ।
(१६) भुजा—कनक दण्ड, कदली गात, पद्मनाल, चंदन खंभ आदि ।
(१७) हथेली—कमल ।
(१८) स्तनद्वय (उरोज)—कंचन लड्डू, कनक कचौड़ी, कंचन बेल, नारंगी, जंभीर, श्रीफल, अग्निवाण, तुरंग, लट्टू आदि ।
(१९) कुचाग्र भाग—श्याम छत्र ।
(२०) रोमावलि—श्याम सर्पिणी ।
(२१) कटि—भृंग, कमल नाल के रेशे, केहरिलंक ।
(२२) नाभि—सागर भँवर ।
(२३) पीठ—मलयगिरि ।
(२४) उर—कदली स्तम्भ ।
(२५) जाँघ—केरा खँभ ।
(२६) चरण—कमल ।
(२७) गति—गजगति, हंसगति ।

उपमान रूपों का सौन्दर्य—उपर्युक्त समस्त बातों की चर्चा करते हुए प्रो० पाठक लिखते हैं कि "संक्षेप में नखशिख और रूप वर्णन में प्रयुक्त हुए उपमाओं की दो कोटियाँ हैं (१) प्रकृति से गृहीत उपमान (२) अन्य सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्धित उपमान । उक्त नखशिख वर्णन में अधिकांशतः उपमान प्रकृति से गृहीत हैं । कमल भ्रमर, चन्द्र, सूर्य प्रकृति उपमान प्रकृति क्षेत्र से गृहीत हैं; खंभ प्रभृति उपमान अन्य सांसारिक वस्तुओं से गृहीत उपमानों की कोटि में आते हैं । अन्य सांसारिक वस्तुओं से गृहीत उपमानों की संख्या

अपेक्षाकृत कम है। मांग के लिए आर्सधार, नासिका के लिए १. सेतुबंध और २. तलवार एवं उरोज के लिए क्रमशः कमल के लड्डू और लट्टू।

उपमानों के चयन में कतिपय स्थलों पर जायसी की मौलिकता तथा स्वतन्त्र उन्मुक्त नवीन कल्पना शक्ति ने सौन्दर्य को जीवंत रूप प्रदान किया है। मौलिक उपमानों के आनयन में जायसी परम्परागत उपमानों की सीमित परिधि से ऊपर उठे हुए तथा मुक्त हैं। जायसी के मौलिक उपमान प्रधानतः प्रकृति से गृहीत न होकर अन्य सांसारिक पदार्थों से गृहीत हैं।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन बड़े ही मनोयोग से किया है। वह पाठकों को सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न करने वाला है। अपूर्व सुन्दरी पद्मिनी का सौन्दर्य जायसी की तूलिका से बहुत सुन्दर और उचित रूप में आंका गया है। कहीं-कहीं वर्णन में अतिशयोक्ति अवश्य आ गई है पर वहाँ भावात्मक दृष्टि अथवा अनुभूति-पक्ष की प्रधानता है। इस प्रकार जायसी का रूप वर्णन उक्त दोष से बच जाता है। पद्मिनी का आकर्षण लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि में पूर्ण समर्थ है।

प्रश्न १६—'जायसी का पद्मावत एक विरह-काव्य है।' इस कथन की तर्क संगत विवेचना करते हुए बताइए कि उनकी आध्यात्मिकता ने इसे कुरूप तो नहीं बनाया !

जायसी एक सूफी कवि हैं। प्रत्येक भारतीय सूफी कवि ने अपनी कविता को, सूफी धर्म के सिद्धान्तों को जनता तक पहुँचाने का माध्यम बनाया है। सूफी साधना में अखिल सृष्टि एवं प्रकृति को उस परम प्रियतम की प्राप्ति के लिए उत्कंठित और व्यथित रूप में चित्रित किया गया है। सारी प्रकृति उसके विरह में दुखी है क्योंकि वह उस प्रियतम का अभिन्न अंश थी और पता नहीं किस कारणवश उसका उससे विछोह हो गया।

''धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोहू,' ॥

—जायसी

चूंकि सारी सूफी साधना उस परम प्रियतम के विरह की साधना है, इसलिए सम्पूर्ण सूफी साहित्य में उसी का स्वर प्रधान है। पद्मावत काव्य का सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूरे काव्य में विरह तत्व ही प्रमुख होकर बोल रहा है। रत्नसेन रूपी जीवात्मा पदमावती रूपी ब्रह्म अथवा बुद्धि के विरह में तड़पती हुई चित्रित की गई है। गुरु रूपी सुग्रा के द्वारा उस के विरह यज्ञ में ज्ञान की आहुति पड़ती है जिससे तड़पन-शिखा प्रज्वलित होती है। पदमावती को प्राप्त कर लेने के उपरांत रत्नसेन उसके संयोग का पूर्ण सुखोपभोग भी नहीं कर पाता कि तब तक कवि नागमती से अगाध विरह-सागर की गाथा छेड़ बैठता है। फलतः विवश होकर रत्नसेन को पदमावती सहित सचिन्त मस्तिक से चित्तौड़ लौटना पड़ता है। सिंहलगढ़ से चित्तौड़ लौटते समय मार्ग में रत्नसेन का जहाज राक्षस द्वारा तूफान में डाल दिया जाता है जहाँ पद्मावती और रत्नसेन का विछोह हो जाता है। जहाज नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। बड़ी कठिनाइयों के उपरांत समुद्र की कन्या लक्ष्मी की कथा के साथ कवि दोनों का पुनर्मिलन कराता है। समुद्र से पाँच रत्न प्राप्त कर रत्नसेन और पदमावती चित्तौड़ पहुँचते हैं। वहाँ कुछ दिनों के उपरान्त ही राघवचेतन का निकाला होता है, वह अलाउद्दीन के दरबार में जाकर पदमावती के अपूर्व सौन्दर्य का बखान करता है। रूप का लोभी अलाउद्दीन उसके उकसाने से चित्तौड़ पर आक्रमण कर देता है। काफी लम्बा संघर्ष चलता है। रत्नसेन बन्दी होता है, पदमावती तथा गोरा बादल के बुद्धि-कौशल से वह पुनः छूटता है। अन्त में देवपाल से युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु होती है और दोनों रानियाँ उसकी शव के साथ सती हो जाती हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण कथा को पढ़ने के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

१—पद्मावती रूपी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए सभी बेचैन हैं। समस्त जड़-चेतन की विरह-व्यथा में रत्नसेन के वियोग को कवि ने प्रखरता प्रदान की है। रत्नसेन और पद्मावती ही इस विस्तृत विरह कथा के केन्द्र बिन्दु हैं।

२—नागमती के विरह के आँसुओं से पद्मावत की आत्मा भीगी हुई है।

३—भारतीय सांस्कृतिक बिन्दु जो नागमती के माध्यम से काव्य में चित्रित हुआ है, विरह की स्याही से ही लिखा गया है ।

४—प्रकृति का विरह व्यथित रूप ही काव्य में प्रमुख रूप से चित्रित हुआ है । संयोगकालीन प्रकृति उतने व्यापक, विशद तथा सजीव रूप में चित्रित नहीं हुई है जितने विशद रूप में विरहकालीन प्रकृति ।

५—काव्य के अत्यंत मार्मिक और अधिकाधिक संवेदनशील स्थल विरह के प्रसंग ही हैं जिनके द्वारा काव्य में प्राण-प्रतिष्ठा हुई है ।

६—पद्मावत के शब्द-शब्द, प्रत्येक घटना और वर्णन में जायसी का विरहाकुल हृदय डोलता नजर आता है यही कारण है कि संयोग के स्थल बहुत कम हैं और जो हैं भी उनमें कवि का हृदय पूर्णतः नहीं रम सका है ।

७—विरह के वर्णन जायसी ने बड़ी ही सावधानी, लगन और एक निष्ठा के साथ किये हैं ।

८—पद्मावत की मूल कथा का आरम्भ विरह से होता है और उत्कर्ष तथा अन्त भी विरह में ही हुआ है ।

९—पद्मावत में वियोग शृंगार की प्रधानता है और इसी का काव्य में पूर्ण परिपाक भी हुआ है । अस्तु काव्य का मूल रस वियोग शृंगार (विरह) ही कहा जायगा ।

१०—सम्पूर्ण काव्य को पढ़ने के बाद एक ऐसी शान्ति का अनुभव होता है जो दर्द, तड़प तथा टीस और आकुलता आदि उपकरणों से निर्मित हुई है । एक वाक्य में इसे यों कहा जा सकता है कि पद्मावत काव्य विरह-काव्य है ।

इतना स्पष्ट हो जाने के उपरांत अब हमें यह देखना है कि पद्मावत के विरही-स्वरूप (विरह-तत्व) को उसकी आध्यात्मिकता ने कहीं विकृत तो नहीं किया है ।

इस दृष्टि से पद्मावत पर जब हम विचार करते हैं तो हमें यह कहना पड़ता है कि पद्मावत की आध्यात्मिकता ने उसके विरही स्वरूप (अर्थात् शुद्ध विरह-काव्य-तत्व) को निश्चय ही विकृत कर दिया है । यदि कवि ने

पद्मावत को अपनी आध्यात्मिकता के प्रचार का माध्यम न बनाया होता तो काव्य का स्वरूप और भी निखरा होता, सरसता बढ़ी होती और काव्य-सिद्धांतों की अधिकाधिक रक्षा हुई होती। परन्तु दुःख है कि कवि ने वैसा नहीं किया (करता भी कैसे, क्योंकि उसके काव्य-प्रणयन का प्रमुख उद्देश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार था)। परिणाम स्वरूप काव्य के प्रवाह में बड़ा विघ्न पड़ा है, उसकी प्रगति और विकास में व्याघात पहुँचा है। कथा बोझिल सी लगती है, अभिव्यक्ति में शैथिल्य आ गया है और साथ ही साथ स्वाभाविकता को भी भारी चोट पहुँची है। अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ काव्य के साथ कवि की आध्यात्मिकता का मेल नहीं हो सका है जिससे कथा प्रवाह में जो बाधा पड़ी है वह तो पड़ी ही है, काव्य-सौन्दर्य में पर्याप्त विकृति आ गई है। वहाँ कला का रूप निखर नहीं सका है। पाठक ऐसे स्थलों पर एक विचित्र खीझ और नीरसता का अनुभव करता है। योग और रसायन के वर्णनों में तो यह स्थिति प्रायः सभी स्थानों पर आई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि की आध्यात्मिकता के दुराग्रह से उसके कवित्व को भारी क्षति पहुँची है। धर्मान्धता ने भले ही कवि को अपनी इस कमजोरी की ओर ध्यान न देने दिया हो परन्तु सामान्य पाठक तथा जिज्ञासुओं को यह कमी सदैव खटकेगी।

अन्त में निष्कर्ष और सारांश रूप में अब हम यह कहेंगे कि पद्मावत एक विरह काव्य है परन्तु उसके प्रणेता के अध्यात्मिक दुराग्रह ने काव्य सौन्दर्य को भारी क्षति पहुँचाई है, उसका वास्तविक स्वरूप विकृत हो गया है।

प्रश्न १७—लौकिक प्रेम के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक-प्रेम की गंभीर-व्यंजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य है—स्पष्ट कीजिए।

जायसी ने अपने पद्मावत के अन्त में लिखा है—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह कछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माँहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा?॥

नागमती यह दुनियाँ-धंधा। बाँचा सोई न एहि चित बंधा।।
राघवदूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
प्रेम-कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।
तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि मँह मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि।।

अर्थात् रत्नसेन और पद्मावती की प्रणय-कथा साधारण मानवीय-प्रेम कथा न होकर आत्मा और परमात्मा के प्रणय की कथा है। जीवात्मा रूप रत्नसेन, ब्रह्म रूप पद्मावती को प्राप्त करने के लिए जिन-जिन कष्टों का सामना करता है वे सब एक सूफी साधक के मार्ग की कठिनाइयाँ हैं। सिद्धि को प्राप्त करने के हेतु इन सभी विषय-स्थलों से प्रत्येक सूफी साधक को गुजरना पड़ता है। सूफी-साधना में जगत और प्रकृति का बहिष्कार नहीं हुआ है वरन् उसके कण-कण में ब्रह्म के अपरिमित सौन्दर्य का दर्शन किया गया है। जीवन और जगत का सौन्दर्य उस परम ब्रह्म का सौन्दर्य है। तात्पर्य यह कि लौकिक सौन्दर्य के माध्यम से ही पारलौकिक सौन्दर्य का उद्घाटन समस्त सूफी साधकों और कवियों का अभिप्रेत रहा है। जायसी उन सभी कलाकारों के सिरमौर हैं। उनका पद्मावत इस तथ्य का जीता-जागता प्रमाण है।

ग्रंथ-नायिका पद्मावती के अपरिमित सौन्दर्य में जायसी ने उस परम प्रियतम के अपरिमित सौन्दर्य के दर्शन किए हैं और उसकी विशालता, व्यापकता तथा गम्भीरता का बड़ा ही चमत्कारिक और हृदय स्पर्शी उद्घाटन किया है। पद्मावती का चरम सौन्दर्य वर्णनात्मक और भावनात्मक दोनों रूपों में चित्रित हुआ है। वैसे तो सम्पूर्ण पद्मावत में उसकी छटा विद्यमान है किन्तु दो स्थल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१—चित्तौड़-दरबार में तोते द्वारा राजा रत्नसेन के सम्मुख पद्मावती के रूप-सौन्दर्य (नखशिख-शिखनख) का प्रभावशाली वर्णन और

२—दिल्ली-दरबार में राघवचेतन द्वारा अलाउद्दीन के सम्मुख उसके (पद्मावती) रूप-सौन्दर्य का मनोमुग्धकारी वर्णन।

ग्रन्थ का यह अपूर्व-रूप-सौन्दर्य-वर्णन ही प्रेम-कथा का मूलाधार है। तोते द्वारा पद्मावती के मादक-रूप का वर्णन सुनकर ही रत्नसेन उसकी प्राप्ति के लिए लालायित होता है और उसकी यह लालसा धीरे-धीरे पूर्व राग—तथा परिपक्व प्रेम में परिणत हो जाती है। यदि सूए ने रत्नसेन के सम्मुख, पद्मावती के अपरिमित सौन्दर्य का उद्घाटन न किया होता तो शायद इस प्रेम-कथा का श्रीगणेश ही न हो पाता। सभी सूफी-काव्यों में इस परम्परा का मसनवी शैली के आधार पर निर्वाह हुआ है। जायसी के पूर्ववर्ती और परवर्ती सभी सूफी-काव्य इसके प्रमाण हैं। अस्तु, जायसी ने भी अन्य सूफी कवियों की भाँति इस रूप-सौन्दर्य को अपनी प्रेम-कथा का आधार बनाया। आइए अब इस लौकिक रूप-सौन्दर्य वर्णन के माध्यम से उस पारलौकिक-सौन्दर्य अथवा प्रेम की मनहर झाँकी का रसास्वादन करें। अमर प्रेम के संदेश-वाहक जायसी की कुशल लेखनी से रूप और प्रेम का जो चित्र उतरा है वह सर्वथा श्लाघनीय है।

पद्मावती सखियों सहित मानसरोवर पर स्नान करने पहुँची। वहाँ वह उनके साथ केलि करने लगी, तब सखियाँ उससे नैहर-सुख एवं प्रेम का महत्व बतलाती हुई कहती हैं—

ऐ रानी मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जौं खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम, कित यह सरवर-पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथ। कित मिलि कै खेलब एक साथ॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न आवै देहीं॥
पिउ पियार सब ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निवाह॥

इस छन्द में जायसी आध्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत करते हैं। नैहर से उनका तात्पर्य इस संसार से है। जीव को इस संसार में चार दिन ही रहना है, फिर परलोक को गमन करना है। यहाँ संसार रूपी मानसरोवर के पास जीव को अनेक प्रकार के आमोद और प्रमोद के साधन हैं, पर अन्त में उस पार अवश्य जाना है जहाँ प्रियतम परमेश्वर है। उस लोक का पता नहीं कैसी

बीतेगी। सास ननद के कटु वचन से तात्पर्य यह है कि वहाँ कर्मों की गणना होगी और जीवन के गुणों अवगुणों की ही आलोचना होगी। मुसलमानों के मत से पुनर्जन्म नहीं होता, इसी से जायसी लिखते हैं "दारुण-ससुर न आवै देहीं।" अन्तिम दोहे में अपने प्रेम-पंथ की झलक भी उन्होंने एक ही शब्द "पिउ-पियार" में दे दी है। सूफी प्रेम में सुख और आनन्द की उतनी कल्पना नहीं है जितनी पीड़ा की, इसलिए वे कहते हैं कि सबसे अधिक तो प्रियतम का प्यार है जिसकी उलझनें और आशंकाएँ अनुमानित नहीं हो सकतीं। कबीर ने भी इस लोक को नैहर और परलोक को ससुराल कहा है। —डा० गौतम

खेलि लेइ नैहर दिन चारी।
पहिली पठौनी तीनि जन आये, नाऊ, ब्राह्मण बारी॥
दुसरी पठौनी पिय आपुहि आये, डोली, बाँस, कहारी॥
धरि बहियाँ डुलियाँ बैठावैं, कोउ न लगत मोहारी॥
अब कर जाना बहुरि न अवना, इहै भेंट अंकवारी॥
—कबीर

तालाब-तट पर खड़ी पद्मावती का सौन्दर्य देखिए—

सरवर तीर पद्मिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई॥
ससि मुख अंग मलयगिरि वासा। नागिनि झाँपि लीन्ह चहुँपासा॥
ओनई छटा परी जग छाँहाँ। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ॥
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा॥
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महँ चँद देखावा॥
दसन दामिनी, कोकिल भाखी। भौंहैं धनुष गगन लेइ राखी॥
नैन खँजन दुइ केलि करेंही। कुच-नारंग मधुकर रस लेंही।
सरवर रूप विमोहा, हिए हिलोरहिं लेइ।
पांव छुवै मकु पावौं, एहि मिस लहरहिं देइ॥

सरवर का रूप-विमुग्ध हो हिय में हिलोरे लेना देख सूर के बसुदेव द्वारा कृष्ण को ले जाते समय यमुना का उन पावन-चरणों के स्पर्श के लिए तरंगाकुल होना याद आ जाता है।

सखियों सहित स्नान करते समय पद्मावती—

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन-जोति नग-हीर ॥

तोते द्वारा पद्मावती के रूप वर्णन (नख-शिख) की एक झाँकी देखिए—

भँवर केस वह मालति रानी । विसहर लुरहि लेंहि अरघानी ॥
बेनी छोरि झारु जौ बारा । सरग पतार होइ अँधियारा ॥
कोंवल कुटिल केस नग कारे । लहरन्हि भरे भुअँग विसारे ॥
बेधे जानि मलयगिरि वासा । सीस चढ़े लोटहिं चहुँपासा ॥
घरवारि अलकैं विष भरी । सिकरीं पेम चहैं गिउ परी ॥

अस फँदवारे केस वै, परा सीस गिउ फांद ॥
अस्तौ कुरी नाग सब, अरुझ केस कै बांध ॥

× × ×

वरुनी का वरनौ इमि बनी । साधे बान जानु दुइ हनी ॥
उन बानन्ह अस को जो न मारा? बेधि रहा सगरौ संसारा ॥
गगन नखत जो जाँहि न गने । वै सब बान ओहि के हने ॥
धरती बान वेधि सब राखी । साखी ठाढ़ देंहि सब साखी ॥
रोंव रोंव मानुस तन ठाढ़े । सूतहिं सूत वेध अस गाढ़े ॥

वरुनि-बान अस ओपेंह, वेधे रन-वन-ढांख ।
सौजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख ॥

× × ×

जेहि दिन दसन जोति निरमई । बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई ।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ।
जँह जँह विहँसि सुभावहिं हँसी । तँह-तँह छिटकि जोति परगसी ॥
दामिनि दमक न सरवर पूजा । पुनि वह जोति और को दूजा ॥

विहँसत हसत दसन तस चमके, पाहन उठे झरक्कि ।
दारिवं सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि ॥

ऐसे ही विशद सौन्दर्य वर्णन के उपरान्त फिर क्या होता है कि—

सुनतहि राजा गा मुरझाई । जानहु लहर सुरुज कै आई ॥
प्रेम-घाव-दुख जान न कोई । जेहि लागै जानै तै सोई ॥
परा सो प्रेम समुद्र अपारा । लहरहिं लहर होइ बिसभारा ॥
विरह-भौंर होइ भांवरि देई । खिन जीउ हिलोरा लेई ॥
कठिन मरन ते पेम-बेवस्था । ना जिउ जियै, न दसवँ अवस्था ॥

जनु लेनिहार न लेहिं जिउ, हरहिं तरासहिं ताहिं ।
एतनै बोल आव मुख, करै "तराहि-तराहि" ॥

—प्रेम खण्ड

× × ×

सुऐ कहा मन समुझहु राजा । करत पिरीत कठिन है काजा ॥
तुम राजा चाहहु सुख पावा । जोगहि भोगहि कत बनि आवा ॥

साधन्ह सिद्ध न पाइअ, जौ लहि साध तप्प ।
सोइ जानहि बापुरे, जो सिर करहिं कलप्प ॥

× × ×

तू राजा का पहिरसि कंथा । तोरे घटहिं माँह दस पंथा ।
काम, क्रोध, तिस्ना, मद, माया । पांचौ चोर न छाड़हिं काया ॥
नव सेधैं ओहि घर मझिआरा । घर मूसहि निसि कै उजियारा ॥

अबहू जागु अयाने, होत आव निसु भार ।
पुनि किछु हाथ न लागहिं मूसि जांहि जब चोर ॥

× × ×

सुनि सो बात राजा मन जागा । पलक न मार पेम चित लागा ॥
नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूँगा । जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा ॥
हिए की जोति दीप वह सूझा । यह जो दीप अँधियार भा बूझा ॥
उलटि दिस्टि माया सौं रूठी । पलटि न फिरी जानि कै झूठी ॥
जो पै नाहीं अस्थिर दसा । जग उजार का कीजै बसा ॥

गुरू विरह चिनगी पै मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला ॥
अब कै फनिग भृङ्गि कै करा। भँवर होइ जेहि कारन जरा ॥
फूल फूल फिरि पूछौं, जौं पहुँचौं ओहि केत ।
तन नेवछावर कै मिलौं, ज्यों मधुकर जिउ देत ॥

—प्रेम खण्ड

× × ×

तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहे वियोगी ॥
तन विसँभर मन बाउर रटा। अरुझा पेम, परी सिर जटा ॥

—जोगी खण्ड

बीहड़ मार्ग के अनेक संकटों और कष्टों को पार कर राजा सिंहलगढ़ पहुँच गया ।

और तब—

पूँछा राजा कहु गुरु सूआ । न जानौ आजु कहाँ दिन ऊवा ॥
पवन वास सीतल लै आवा। कया दहत जनु चंदन लावा ॥
कबहुँ न अैस जुड़ान सरीरू। परा अगिनि मँह मलै समीरू ॥
निकसत आव किरिन रवि रेखा । तिमिर गए जग निरभर देखा ॥
उठे मेघ अस जानहु आगें। चमकै बीजु गगन पर लागें ॥
तेहि ऊपर जस ससि परगासू । औ सो कचप चिन्ह भएउ गरासू ॥
और नखत चहुँ दिसि उजियारे। ठाँवहि ठांव दीप अस बारे ॥
औरु दछिन दिसि निअरें, कंचन मेरु देखाव ।
जस बसंत रितु आवै, तस वाग जस पाव ॥

योग मार्ग में सिद्धि प्राप्ति के पूर्व आनन्द का आविर्भाव होता है, अनहद नाद सुनाई पड़ता है, ज्ञान का प्रकाश सर्वत्र दिखाई पड़ता है, सारे वातावरण में दैवी सुगन्ध आती है। कबीर ने इसी स्थिति का निरुपए इस प्रकार किया है—

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहर गम्भीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर।।

उसी उल्लासमय स्थिति का निरुपण जायसी ने उक्त पद में किया है।

—डा० मनमोहन गौतम

रत्नसेन को यहीं छोड़ दीजिए और आइए अब पद्मावती के पास चलें—

राजा के योग का अप्रत्यक्ष प्रभाव पद्मावती पर पड़ रहा है। वह उसके प्रेमवश हो गयी और उसे वियोग सताने लगा। रात्रि में उसे नींद नहीं लगती, शय्या काटने दौड़ती है। शीतलता प्रदायक चन्द्रमा, चंदन आदि उसे अंगार से लगते हैं। वह उसके गंभीर विरह में जलने लगती है। रात, कल्प के समान बड़ी मालूम पड़ती है। क्षण-क्षण का समय युग-युग के समान बड़ी कठिनाई से कटता है। जब रात नहीं कटती तो वीणा ले लेती है कि शायद संगीत में रात कट जाय, पर वीणा का स्वर सुनकर चन्द्रमा का वाहन मृग स्वर पर मुग्ध होकर ठहर जाता है इस प्रकार रात का बीतना और कठिन हो जाता है—

गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि वाहन तब रहै ओनाई।।
पुनि धनि सिंह उरे है लागै। ऐसी बिथा रैनि सब जागै।।
कहा सो भँवर कँवल रस लेवा। आइ परहु होइ घिरिन परेवा।।
सो धनि बिरह पतंग होइ, जरा चाह तेहि दीप।
कंत न आवहु भृङ्गि होइ, को चंदन तन लीप।।

सूरदास ने भी इसी प्रकार राधा की आकुलता के वर्णन क्रम में लिखा है—

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिन होत चंद को हरिबो।।

पद्मावती की यह अवस्था देख उसकी धाय समझाती है—

जब लगि पिउ न मिलै तोहिं, साधु पेम कै पीर।
जैसे सीप सेवाति कँह, तपै समुद मँझ नीर।।

(यहाँ जायसी ने सूफी मतानुसार प्रिय मिलन से पूर्व प्रेम की पीर का संकेत किया है।)

इसी बीच सुआ पहुँच जाता है और उसके प्रति रत्नसेन की गम्भीर आसक्ति का विशद वर्णन करता है। रत्नसेन की अनुरक्ति और उसके संकटों का विवरण सुन पद्मावती का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और वह उसके प्रेम में विभोर हो उठती है।

सुनि कै विरह चिनगि ओहि परी। रतन पाव जौ कंचन करी।।

× × ×

हीरामन जौ कही रस बाता। सुनि कै रतन पदारथ राता।।

पद्मावती को सब समझा बुझा हीरामन पुनः रत्नसेन के पास लौटता है—

आवा सुआ बैठ जँह जोगी। मारग नैन, वियोग वियोगी।।
आइ पेम रस कहा सँदेसू। गोरख मिला, मिला उपदेसू।।
तुम्ह कँह गुरु मया बहु कीन्हा। लीन्ह अदेस, आदि कँह दीन्हा।।
सबद एक होइ कहा अकेला। गुरु जस भृङ्गि, फनिग जस चेला।।
भृङ्गि ओहि पंखिहि पै लेई। एकहि बार छुए जिउ देई।।
ताकँह गुरू करै असि माया। नव अवतार देइ, नै काया।।
होइ अमर अस मरि कै जीया। भँवर कमल मिलि कै मधु पीया।।
आवै रितू बसंत जब, तब मधुकर तब बासु।
जोगी जोग जो इमि करहिं, सिद्धि समापति तासु।।

इस प्रकार कथा आगे बढ़ती है। अनेक लड़ाई झगड़े और वादविवाद के उपरान्त दोनों का विवाह होता है और फिर बंधन मुक्त हो दोनों मिलते हैं। देखिए प्रथम समागम के अवसर पर पद्मावती के मुँह से कैसे व्यंग गर्भित वाक्य जायसी ने कहलवाये हैं—

मानचिन्ह पिउ कापौं मन माँहा। का मैं कहब, गहब जौ बाहाँ।।
बारि बैस गहै प्रीति न जानी। तरुनि भई मैमंत भुलानी।।
जोबन गरब न किछु मैं चेता। नेह न जानौ साम कि सेता।।
अब सो कंत जौ पूँछिहि बाता। कस मुख होइहि, पीत कि राता।।

इसी प्रकार पद्मावती के विदाई के समय का दृश्य देखिए—

रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोइ न टेक जौ कंत चलाई ॥
भरी सखी सब; भेंटत फेरा। अंत कंत सौं भएउ गुरेरा ॥
कोउ काहू कर नाहि नियाना। मया मोह बाँधा अरुझाना ॥
जब पहुँचाइ फिरा सब कोउ। चला साथ गुन औगुन दोऊ ॥

सिंहल से चित्तौड़ जाते समय समुद्र में राक्षस और लक्ष्मी की कथा के प्रसंग में अनेक ऐसे मार्मिक स्थल आये हैं जो आध्यात्मिक प्रेम की स्पष्ट झलक देते हैं। चित्तौड़ के अल्पकालीन निवास के उपरान्त ही राघवचेतन का निष्कासन और दिल्ली दरबार में उसका रूप वर्णन करना, अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण व सन्धि आदि के प्रसंग भी इस दिशा में हमारे सहायक हैं।

दर्पण में पद्मावती का प्रतिविम्ब, अलाउद्दीन द्वारा देखे जाने का दृश्य देखिए—

बिहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साहि दरपन महँ देखी ॥
होतहि दरस परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना ॥
राजा भेदु न जानै झाँपा। भैविख नारि, पवन बिनु काँपा ॥

× × ×

इसी प्रकार रत्नसेन के दिल्ली में कैद रहने पर पद्मावती का विलाप भी पठनीय है—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। केहि पूछहुँ को कहै सँदेसू ?
जो कोइ जाइ तहाँ कर होइ। जो आवै किछु जान न सोई ॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गवउ सो बहुरि न आवा ॥

अलाउद्दीन तथा देवपाल की दूती और पद्मावती के प्रसंग में प्रेम की बड़ी गंभीर व्यंजना जायसी ने प्रस्तुत की है। उन्हें जहाँ कहीं भी अवसर मिला है पारलौकिक प्रेम का संकेत करने में नहीं चूके हैं। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है **"एक प्रबन्ध के भीतर शुद्ध भाव के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबन्धों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखाई पड़े, जायसी का मुख्य लक्ष्य है। क्या संयोग, क्या वियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक**

स्वरूप का आभास देने लगता है जगत के समस्त व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होते हैं।"

पद्मावती और रत्नसेन के लौकिक प्रेम की सिद्धि का मार्ग बताते हुए जायसी ने जीव और ब्रह्म के चिरन्तन मिलन का मार्ग स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया है। सूफी मत की शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत चारों अवस्थाओं की ओर संकेत करना भी वे नहीं भूले हैं—

चारि बसेरे जो पढ़ै सतसों उतरै पार।

इस प्रकार उन्होंने योगमार्ग की साधना का सहारा लेकर अपने ग्रंथ को एक अन्योक्ति काव्य बना दिया है। वर्णित प्रेम-कथा के बीच-बीच में अनेक स्थानों पर संसार की नश्वरता, शरीर की क्षणभंगुरता, साधना की जटिलता तथा प्रेम की सर्वश्रेष्टता आदि की ओर संकेत करते रहे हैं। लौकिक प्रेम कथा तो उनके आध्यात्मिक विचारों के प्रकट करने का एक माध्यम मात्र थी। सारी प्रेम-कथा आध्यात्मिक संकेतों से भरी हुई है। भले ही वर्णन कसौटी पर सर्वत्र खरा न उतरता हो परन्तु कवि की रुझान प्रमुख रूप से उधर ही थी इसे तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। अब हम कतिपय ऐसे स्थलों के उद्धरण मात्र देकर इस प्रसंग को समाप्त करते हैं।

विरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिउ दिवस जरै ओहि तापा।

× × ×

परबत समुद अगम विय, बीहड़ धन वन ढाँख।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह, ना मोंहि पाव न पाँख॥

× × ×

पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाव कहौं केहि सोई॥

× × ×

करि सिंगार तापर का जाऊँ ? ओहि देखहुँ ठावँहि ठाऊँ॥
जौ जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन मन सो नहि होइ निनारा॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौ तहाँ नाहि कोउ आना॥

× × ×

हौं रे पथिक पखेरू, जेहि बन मोर निबाहु।
खेलि चला तेहि वन कँह, तुम अपने घर जाहु।।

× × ×

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा।।
गा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि छूटी।।
'अस्ति-अस्ति' सब साथी बोले। अंध जो अहे, नैन निज खोले।।

× × ×

ओहि मिलान जो पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई।।
है आगे परबत कै बाटा। विसम हार, अगम सुठि घाटा।।
विच-विच नदी खोह औ नारा। ठाँवहि ठाँव वैठ बटमारा।।

× × ×

गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया। पुरुष देखु ओही कै छाया।।
पाइय नाहि जूझ हठि कीन्हे। जेइ पावा तेहि आपुहि चीन्हे।।
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तँह फिरहि पांच कोतवारा।।
दसँव दुआर गुपत एक ताका। अगम चढ़ाव, बाट सुठि बांका।।
भेदै जाइ कोइ वह घाटी। जो लह भेद चढ़ै होइ चाँटी।।
गढ़ तर कुंड सुरंग तेहि माँहा। तहं वह पंथ, कहौं तोहि पाँहा।।
दसँव दुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।।

× × ×

अन्तिम उद्धरण सिंहल की हाट का देखिए—

जिन्ह एहि हाट न लीन्ह वेसाहा। ता कँह आन हाट कित लाहा?
कोई करै वेसाहनी, काहू केर बिकाइ।
कोइ चलै लाभ सों, कोइ मूर गँवाइ।।

निष्कर्ष रूप में अब हम यह कहेंगे कि लौकिक प्रेम के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की गंभीर-व्यंजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्न १८—'नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य में एक अद्वितीय कृति है।' समझाइये।

रत्नसेन की प्रथम परिणीता श्यामांगी नागमती का विरह-वर्णन पद्मावत का प्राण-विन्दु है। जायसी का भावुक हृदय इस भारतीय हिन्दू रमणी के पवित्र-आँसुओं में डूब कर अपनी सुध-बुध खो बैठा है। विरह-विदग्ध हृदय की संवेदनशीलता के इस चरम उत्कर्ष को देख ऐसा लगता है जैसे प्रेम के चतुर चितेरे कवि ने नागमती को स्वयं में साकार कर लिया हो और उसके हृदय की व्यथा के रूप में अपने ही हृदय की व्यथा को उँडेलने लगा हो। परम प्रियतम के चिरंतन-वियोगी सूफी-भक्त-कवि का हृदय, अश्रु का जलजात बन गया है। नागमती के विरह-वर्णन में नागमती नहीं व्यथा स्वयं बोलती है।

निर्मोही प्रियतम के प्रवास से ही इस विरहिणी की विरह-कथा का प्रारम्भ होता है। उसके एकनिष्ठ प्रेम और अपूर्व सौन्दर्य की अवहेलना करके किसी अज्ञात रूपसि के प्रणय में उन्मत्त हो उसका पति चला गया। उसके व्यवहार-विश्वास, पूजना-अर्चना तथा धर्म और सेवा को पति की निर्मम अवहेलना की ठेस लगी। वह विचलित हो गई। स्त्री का ऐसा अपमान, जिसमें उसका रूप कुरूप घोषित कर दिया जाय, उसकी यौवन-अभिलाषा को दुत्कार दिया जाय, विश्वास के स्वाभिमान को ठुकरा दिया जाय—और वह भी अपने ही पति द्वारा—नागमती को मिला था। जिस पति ने उसके साथ अनेक वर्षों तक यौवन की कलकेलियाँ कीं, जीवन की इन्द्रधनुषी कल्पनाओं के मधुमय ताने-बाने बुने, उसमें इतनी भी श्रद्धा शेष न रह गई कि मोह-तन्तु को एक झटके से तोड़ किसी कथित स्त्री की रूप-शिखा का शलक बन प्रवासी हो गया, निवेदन तक न सुना। कितना निठुर व्यवहार था। कितनी हृदय-विदारक क्रिया थी। ऐसी दशा में कठोराघात से व्याकुल हो मानिनी नारी के लिए एक ही मार्ग रहता है कि या तो वह जीवन से वैराग्य ले उस जगत प्रभु के चरणों में अपने को समर्पित कर दे अथवा सदैव के लिए इस जीवन लीला का क्रूर-विसर्जन कर दे। अपमान और तिरस्कार की अग्नि में तिल-तिल जलना किसी भी रूप और प्रेम गर्विता को मान्य नहीं। किन्तु प्रणय-सागर के कुशल नाविक जायसी ने

अपनी नागमती को इनमें से किसी भी पंथ की पंथिनी नहीं बनाया, अपितु उसके नारित्व और सतीत्व को एक दिव्य आभा प्रदान की, महाशक्ति दी। कठिन परीक्षा ली और अंत में उसके कुंदन से खरे रमणीत्व को प्रकट कर सहृदय पाठकों को चकित कर दिया।

नागमती का पति-प्रेम विरहावस्था में प्रगाढ़तर हो चला। संयोगकालीन सुखद-केलियों की भाँति यह विरह भी उसके पति ने ही दिया था, इसलिए उसने उसका हँसकर अभिनन्दन किया और इस काल में भी पूर्ण मनोयोग से पति की अराधना की। पथ पर, उसके प्रत्यागमन की आशा से पलकें बिछाये रही, किन्तु जब पूरा वर्ष बीत गया और निर्मोही न लौटा, तो पति परायण का हृदय डोल गया, विकलता रोम-रोम से विद्रोह करने लगी। मन को शंका हो चली कि यह प्रवास कहीं आजीवन प्रवास तो नहीं बन जायगा। वेदना की ज्वाला में हृदय-तन्तु टूट-टूट भस्म होने लगे और सुधि की आँधी प्रबल वेग गामिनी बनी।

"नागमती चितउर-पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा॥
नागर काहु नारि बस परा। तेइ मोर पिउ मोसों हरा॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह?
झुरि-झुरि पींजर हौं भई, विरह-काल मोंहि दीन्ह॥"

विरह व्यथिता राजमहिषी को राजधानी की वर विलास-सज्जा के प्रति रंचमात्र भी आकर्षण न रह गया, समस्त संसार उसे भयावह प्रतीत होने लगा। प्रकृति की सौन्दर्य स्निग्ध कमनीयता, मलयज मोहकता और वासंती कौमार्य आदि सभी कष्टदायक बन गये और जब प्रकृति षट ऋतु बार-बार अपना परिधान बदलती हुई सौन्दर्य-सुषमा से होड़ करने लगी तो नागमती की वेदना त्रिजटा के समान विशाल देह हो गई।

पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा नित बोले पिऊ-पीऊ॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुआ गएउ पिउ नामा॥
विरह-बन तन लाग न डोली। रकत पसीज भीज गई चोली॥

सूखा हिया हार भा भारी। हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी ॥
खन एक आव पेट मँह साँसा। खनहिं जाइ जिउ होइ निरासा ॥
पवन डोलावहिं सींचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला ॥
प्रान पयान होत को राखा। को सुनाव पीतम कै भाखा ॥
आहि जो मारै विरह कै, आगि उठे तेहि लागि।
हंस जो रहा शरीर मँह, पाँख जरा गा भागि ॥

आकाश में पावस के मेघ चढ़ आए; पृथ्वी की तप्त छाती शीतल हो चली। झुलसी हुई प्रकृति हरी-भरी—हो गई। वृक्ष, लता और पुष्प सबकी काया मिलन-आँसुओं से धुल-धुल एक अपूर्व सौन्दर्य बिखेरने लगी। जड़-चेतन उल्लसित हो उठे; पर हाय रे भाग्य ! नागमती का प्रियतम नहीं लौटा। जग को सुखदायक लगने वाले पावस-कण उसके लिए बाण बन गए—"**खडग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुन्द-बान बरसहिं घनघोरा ॥**" विकल नागमती कातर स्वरों में पति को पुकार-पुकार उससे विनय करने लगी—"**कन्त उबारु, मदन हौं घेरी।**"

श्रावण में मेघों ने मरुथल में भी झीलें बना दीं। उन्माद के साथ वर्षा का प्रादुर्भाव हुआ। हृदय में हिलोरें आईं, पवन के साथ झूलते हुए बादलों को देखकर सखियों ने हिंडोला सजा दिया किन्तु नागमती का हृदय हिंडोले के समान झूलकर भी विरह के हाथ में था :—

हिय हिंडोल अस डोलै मोरा।
विरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥

वर्षा के जल ने जल-थल एक कर दिया—वेदना के आँसू भी उतना ही विस्तृत और महान समुद्र भर रहे थे···दोनों को पार करने के लिए पंख अथवा परों की आवश्यकता थी। नागमती ने कहा—

"परबत समुद अगम विच, बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह, ना मोंहि पाँव न पाँख ॥"

रत्नसेन वहाँ अपने पैरों से गया था, और हीरामन पंखों से—नागमती

स्त्री है, उसके पास न तो पाँव हैं और न पंख···वह प्रियतम तक कैसे पहुँच सकती है।

वर्षा समाप्त हो गई और निरभ्र नीलाकाश में शरद का चन्द्रमा शुभ्र क्रीड़ा करने लगा। हंस, सारस, और खंजन लौट आए किन्तु कन्त न फिरे, **"बिदेसहिं भूले'**। विरह के कारण नागमती को चन्द्रमा में अजस्र दाह, राहू का सा डसन और कृष्णपक्ष का सा अंधकार दिखाई पड़ने लगा। प्रिय के बिना आने वाली दीपावली भी उसके मन में आलोक न भर सकी और उसका प्रांगण दीप शिखा के बिना ही सूना रह गया। उसे रतनसेन के अभाव का कष्ट था। और **'सवति दुख दूजा'** के कारण वह और व्याकुल थी। इसलिए अपने दुख की अवधि उसे दीर्घतम प्रतीत होती थी। यदि सवति न होती तो रतनसेन को नागमती की स्मृति स्वभावतः आती किन्तु स्त्री का प्रेम उसे पद्मावती से प्राप्त हो रहा था। इसलिए अपनी स्मृति जागृत कराने के लिए भौंरे और काग से उसने अपना संदेश इस प्रकार कहलाया—

प्रिय सो कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुँआ हम लाग॥"

फागुनी उल्लास ने भू-नभ सब में नवजीवन भर दिया। चतुर्दिक केलि-क्रीड़ायें होने लगीं पर नागमती की दशा और ही थी।

तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर विरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहिं-झरहिं बन ढाखा। भइ ओनंत फूल फरि साखा॥
करहिं बनस्पति हिये उलासू। मो कँह भा जग दून उदासू॥
फागु करहिं सब चाँचरि चोरी। मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जँह पाँव।

कितनी गहरी व्यथा और पति प्रेम की एक निष्ठा है। इसी प्रकार बारहों मास रानी के दुख की उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहे। धीरे-धीरे वह दशा भी आ पहुँची जब वह राजमहल छोड़ वन-उपवन में भटकने लगी। पति वियोग

में बावली रानी नागमती को अपने रानीपन की सुधि न रही और वह सामान्य विरहिणी नारी की भाँति बिलख-बिलख अपना तन मन भस्म करने लगी। जगत माता सीता के खो जाने पर जिस प्रकार भगवान राम एक सामान्य मानव की भाँति बावले हो बन के खग-मृग और मधुकरस्नेनी से उनका पता पूछते फिरे थे (हे खग, मृग, हे मधुकरस्नेनी ! तुम देखी सीता मृगनयनी ?) उसी प्रकार नागमती पति-वियोग में बावली हो बन के सभी पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं से अपना विरह-निवेदन करती फिरने लगी। सारी सृष्टि उसके आँसुओं से भीग गई और हर एक पशु-पक्षी का हृदय उसकी व्यथा से द्रवित हो उठा। वियोगाग्नि की भीषणता का अन्त न था :—

जेहि पंखी के निअर होइ, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

आकाश को कंपा देने वाले उसके विलाप से घोंसलों के बैठे हुए पक्षियों की नींद हराम हो गई—

फिरि-फिरि रोव, कोइ नहिं डोला। आधी रात विहंगम बोला॥
तू फिरि-फिरि दाहै पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी॥

दुर्भाग्य की निविड़-निशा में, पक्षी द्वारा दया और सहानुभूति के इन शब्दों को सुन नागमती ने अपनत्व के भाव से कहा :—

चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न संदेसा टेक।
कहौं विरह-दुख आपन, बैठि सुनहु दंड एक॥

पंक्षी संदेशा ले जाने को तैयार हो जाता है। अब मान, गर्व आदि से रहित, सुख भोग की लालसा से अलग और नम्र, शीतल तथा विशुद्ध प्रेम के प्रतिबिम्ब से आलौकित पति-परायणा का संदेश सुनिए :—

पद्मावति सौं कहेउ, विहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मों कँह हिए दुंद दुख-पूरा॥
हमहुँ वियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर-जीऊ॥
मोंहि भोग सो काज न, बारी। सौंह दिस्टि कै चाहन हारी॥

कितनी मृत भावना है और साथ ही कितने सरल उद्गार हैं। एक स्त्री के हृदय की व्यथा को दूसरी स्त्री ही समझ सकती है इसीलिए नागमती ने पद्मावती के पास संदेश भेजा। रत्नसेन को अपना संदेश तथा दुःख का एक शब्द भी नहीं भेजा। हाँ, रत्नसेन की माता की व्यथा अवश्य उस पक्षी से कही। यहाँ हम देखते हैं कि उसके दृढ़ प्रेम और गहरी आस्था के साथ-साथ स्त्री जन्य मान का अभिमान भी कवि ने सुरक्षित रक्खा है दग्ध होकर भी नागमती प्रिय को अपनी अवस्था से दुःखी नहीं करना चाहती। पति की सुख शान्ति की भावना के लिए एक भारतीय आदर्श हिन्दू रमणी की सी उसमें पवित्रता है।

नागमती का विरह भारतीय नारी का विरह है। इसीलिए उसमें उपेक्षित गाम्भीर्य है जहाँ कहीं कवि पर फारसी प्रभाव अधिक आ पड़ा है वहाँ कुछ वीभत्सता अवश्य आ गयी है पर उससे नागमती के मूल-विरह-प्रसंग पर कोई आघात नहीं पहुँचता। नागमती की व्यथा का जो विशद और सजीव चित्र कवि ने उपस्थित किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। नारी की संवेदना अपनी सीमा छू रही है और हृदय के वेग की व्यंजना उत्कर्ष पर है।

प्रकृति के परिवर्तन में मानवीय भावनाओं का आरोपकर कवि ने उसके प्रति अपनी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि का परिचय दिया है। बारहमासे के वर्णन में उसकी इस विलक्षण प्रतिभा का स्पष्ट बोध होता है। उसमें विरह-ताप के वेदनात्मक स्वरूप की अत्यन्त विशद व्यंजना को प्रकट करने में कवि को अधिकाधिक सफलता मिली है। विरह वर्णन में कवि का सदैव यह प्रयत्न रहा है कि विरह-ताप की मात्रा को न प्रकट कर वह संवेदना ही अधिक प्रकट करे। कवि के इस प्रयत्न ने ही उसके वर्णन को अतिशयोक्ति और उदात्मकता के भारी अपराध से बहुत कुछ मुक्ति दिला दी है।

नागमती के विरह-वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता नागमती का अपने रानीपन को भूल सामान्य नारी की भाँति विरह-व्यथित हो अपने हृदयोद्गारों को प्रकट करना है। रानी के इस स्वरूप को प्रस्तुत करने में कवि की भावुकता अपनी चरम-सीमा का स्पर्श करती है और उसकी काव्य-कला में एक

नवीन आकर्षण आता है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि "जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिन्दू गृहिणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलंभ शृंगार के अत्यन्त समुज्जवल रूप का विकास दिखाया है।" नागमती के विरह-व्यथित वाक्य प्रत्येक पाठक के हृदय को वेध जाते हैं। उसकी व्यथा के प्रति मानव ही नहीं सभी पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं के भी हृदय में करुणा का अपार समुद्र उमड़ आता है। सारी सृष्टि ही उसके आँसुओं से भीग उठती है। यह सामान्य लेखक के वश की बात नहीं, जायसी ऐसे भावुक और महाकवि की सशक्त लेखनी से ही ऐसे स्थल प्रादुर्भूत हो सके।

यही सब विशेषतायें हैं जिनके कारण नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय बन गया है। पद्मावत का तो वह प्राण-बिन्दु ही है। जायसी के हृदय की कोमलता और चरम-संवेदन शक्ति का सच्चा परिचय हमें नहीं मिल पाता यदि उन्होंने नागमती के इस अद्वितीय विरह-वर्णन का सृजन न किया होता।

प्रश्न १६—हिन्दी सूफी प्रेमगाथा काव्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए जायसी के काव्य के आधार पर यह सिद्ध कीजिए कि सूफी कवि अपनी रचनाओं को भारतीय सांचे में ढालते समय भी अपना मूल उद्देश्य कभी नहीं भूले।

हिन्दी साहित्य में सूफियों के प्रेमगाथा काव्य की परम्परा के वर्णन-क्रम में प्रो० द्वारिकाप्रसाद शर्मा 'द्वारिकेश' ने हिन्दी प्रेमगाथा काव्य की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है।

१—ये गाथायें भारतीय काव्य की चरित्र-वद्ध शैली में न होकर फारसी मसनवी शैली में हैं। इनमें मसनवी शैली के अनुसार प्रारम्भ में ईश्वर वंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति तथा तत्कालीन बादशाह की स्तुति है।

२—प्रेमगाथाओं के रचयिता प्रायः सभी मुसलमान कवि हैं। इन्हें हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों, आचार-विचारों, रहन-सहन आदि का भी सामान्य-ज्ञान था जिसका प्रमाण इन ग्रन्थों में मिलता है।

३—इनमें अधिकांश हिन्दुओं की कथाएँ हैं। परम्परा से प्रचलित इन कहानियों को अपना आधार बनाकर इन कवियों ने इतिहास और कल्पना के अद्भुत मिश्रण से सुन्दर प्रेमगाथाओं का सृजन किया है। इतिहास की रक्षा वहीं तक है जहाँ तक वह उनके साध्य अलौकिक की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार इन्होंने हिन्दुओं के घरों की प्रेमगाथाओं को लेकर अपने धार्मिक सिद्धान्तों को व्यक्त किया है।

४—इन कथाओं में लौकिक आख्यानों द्वारा अलौकिक की व्यंजना की गई है। इसका कारण इसलाम का धार्मिक प्रतिबन्ध था। सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है और आत्मा उसी का अंश है। इन गाथाओं के अलौकिक प्रेम में जीवात्मा का परमात्मा के लिए तीव्र प्रेम और साधक के मार्ग की कठिनाइयों का चित्रण है। आत्मा परमात्मा के इस मिलन में शैतान बाधक है। गुरु की सहायता से उसे दूर कर साधक ईश्वर की प्राप्ति करता है। इन कथाओं का प्रतिपाद्य विषय यही प्रयत्न और प्राप्ति का वर्णन है।

५—इन कवियों का केन्द्र अवध प्रांत था। इसीलिए इनकी भाषा भी अवधी है। किन्तु इसमें तुलसीदास की-सी अवधी की साहित्यिकता का अभाव है। कथानक में रूढ़ियों का व्यवहार किया गया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती आई हैं, जैसे चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन, सुकसारिका द्वारा नायिका का वर्णन सुनकर आसक्त होना, पशु पक्षियों के वार्तालाप से भावी घटनाओं की सूचना, मन्दिर या चित्रशाला में मिलन आदि।

६—सभी ने प्रायः दोहा और चौपाई छंदों में ही अपने काव्य की रचना की है। जायसी एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में इन छंदों के प्रवर्तक ही माने जाते हैं।

(प्रो० द्वारिकेश के इस कथन से मैं सहमत नहीं क्योंकि इन छंदों की परम्परा पहले से ही चली आ रही थी। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक देखें)—दानबहादुर पाठक।

७—इनके प्रेम के चित्रण में विदेशीपन के साथ-साथ भारतीय शैली की भी छाप है। इसी से जायसी ने प्रारम्भ में नायक को प्रियतमा (ईश्वर) की प्राप्ति में प्रयत्नशील दिखाकर बाद में नायिका (प्रियतमा) के प्रेमोत्कर्ष का भी प्रदर्शन किया है। पद्मावत में उन्होंने पद्मावती के सतीत्व तथा उत्कृष्ट पति प्रेम आदि के दृश्य दिखाकर भारतीय पद्धति का परिचय दिया है।

८—इन कवियों ने किसी विशेष सम्प्रदाय का खंडन-मंडन नहीं किया। उन्होंने सरल भाषा और साधारण शैली में केवल अपने साम्प्रदायिक भावों की अभिव्यक्ति को ही प्रधानता दी है। इसी से उनकी अभिव्यक्ति में आडंबर का प्रदर्शन नहीं है।

९—इन्होंने अधिकतर प्रबन्ध काव्य लिखे हैं। उनमें कथा की रमणीयता के साथ सुव्यवस्थित सम्बन्ध निर्वाह भी है। परन्तु उन्होंने वस्तु वर्णन या कथा-प्रवाह को वहीं तक महत्व दिया है जहाँ तक वह उनके उस अलौकिक प्रेम के अभिव्यंजन में सहायक है।

१०—इनकी भाव व्यंजना अपना विशेष महत्व रखती है। इन्होंने मानव हृदय के अत्यन्त सूक्ष्म भावों में बैठकर रति और शोक आदि के अत्यन्त भावपूर्ण अर्थात् मार्मिक वर्णन किए हैं।

११—ये सभी कवि यद्यपि मुसलमान थे किन्तु इन पर भारतीय अद्वैतवाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। इन्होंने वैष्णवों से अहिंसा की भावना ली। उपनिषदों के 'प्रतिविम्बवाद' की झलक जायसी में कई स्थानों पर मिलती है। संतों के समान उन्होंने हठयोग की क्रिया को भी उसी रूप में ग्रहण किया।

१२—आचार्य शुक्ल के शब्दों में सूफियों के काव्य में रहस्यवाद की बड़ी सुन्दर और सरल व्याख्या हुई है। उसमें संतों के रहस्यवाद की-सी नीरसता और शुष्कता नहीं है। सूफ़ियों ने प्रेम द्वारा अव्यक्त सत्ता को प्रकट किया है।

संक्षेप में प्रेमगाथाओं की सामान्य विशेषताएँ यही हैं। परन्तु स्पष्ट रूप से इस काव्य की ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का समन्वय कराने का आंशिक रूप से सफल प्रयास किया है। जहाँ तक जायसी के काव्य-विशेष की बात है

ये सभी विशेषताएँ उनके काव्य में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। सच्चे अर्थों में इन सभी विशेषताओं का प्रतिनिधित्व उन्हीं का काव्य करता है।

सूफी कवियों का दृष्टिकोण काफी उदार था, यही कारण था कि अनेक हिन्दु मुसलमानों की ओर आकर्षित हुए और उनसे प्रेम भाव रखने लगे। इन कवियों ने भारत में जन्म लिया था, यहाँ की रीति-नीति, रहन-सहन तथा सामाजिक और धार्मिक वातावरण से परिचित थे। ऐसी दशा में यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि सूफी काव्य पर भारतीयता की स्पष्ट छाप पड़ती। सूफी काव्यों की आत्मा भले ही विदेशी रही हो परन्तु कलेवर बहुत कुछ भारतीय था, इसमें दो मत नहीं। अपने इस कथन के प्रमाण में मैं निम्नलिखित बातें कहना चाहूँगा :—

१—रचना का विषय भारतीय था, जिसमें हिन्दू घरानों की लोक प्रचलित कथाओं को अपनाया गया।

२—भारतीय हिन्दू घरानों की इन कथाओं को प्रस्तुत करने के लिए इन कवियों ने भारतीय अवधी भाषा का ही प्रयोग किया। (लिपि भले ही फारसी रही हो)। वह भाषा उस समय की लोक प्रचलित ठेठ बोल चाल की भाषा थी।

३—प्रायः सभी काव्य दोहे-चौपाई छंदों में लिखे गए जो भारतीय छंद हैं।

४—भारतीय साहित्य के प्रभाव के साथ-साथ इनमें भारतीय दर्शन तथा हठयोग आदि की क्रियाओं का भी समावेश है।

५—इन काव्यों में भारतीय समाज की अनेक मान्यताओं का बड़ा ही मर्मस्पर्शी और हृदय ग्राही वर्णन हुआ है। विशेषतः जायसी तो इस कला में दक्ष ही हैं।

पद्मावत के अमर प्रणेता जायसी ने अपना कथानक भारतीय हिन्दू परिवारों से लिया। रत्नसेन पद्मावती और नागमती का परिचय हिन्दू चरित्रों का प्रतिनिधित्व करता है।

पद्मावत की भाषा तो अवधी है ही जिसका माधुर्य अपनी समकक्षता में अन्य किसी को नहीं ठहरने देता। तुलसी की भाषा में साहित्यिक परिनिष्ठता भले ही है परन्तु जायसी की-सी मधुरता नहीं।

सम्पूर्ण पद्मावत दोहे और चौपाई छंदों में लिखा गया है। अखरावट में एक छंद सोरठे का प्रयोग अधिक है। जायसी के काव्य पर भारतीय दर्शन और हठयोग का पूरा-पूरा प्रभाव है। नीचे की पंक्ति में देखिए अद्वैतवाद की कैसी स्पष्ट झलक है :—

हौं-हौं कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई ॥

—पद्मावत

इसी प्रकार आखिरी कलाम की यह पंक्ति देखिये :—

सबै जगत दरपन कर लेखा। आपन दरसन आपहि देखा ॥

अद्वैतवाद की अनेक बातों का स्पष्ट उल्लेख जायसी के काव्य में हमें मिलता है।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है सभी सूफी कवि हृदय से उदार थे, जायसी में वह तत्व चरम उत्कर्ष पर था। उनके हृदय की संवेदनशीलता और उदारता सर्वथा सराहनीय है। इसी से वे तत्वतः उस ब्रह्म तक पहुँचने वाले अनेक मार्गों की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु जन्म और संस्कारों से मुसलमान होने के कारण उनकी आस्था सर्वाधिक अंश में इस्लाम धर्म पर ही रही। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उनका उदार हृदय सभी मार्गों की उपयोगिता तो स्वीकार करता था किन्तु इस्लाम अथवा सूफी धर्म के प्रचार का मुख्य उद्देश्य रखने के कारण इस्लाम के प्रति ही अपनी सर्वाधिक अवस्था व्यक्त करने के लिए विवश हुआ नीचे की पंक्तियों में इस कथन का स्पष्ट उल्लेख है—

विधना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवाँ जेते ॥
जेइ हेरा तेइ तहँ वै पावा। भा संतोष समुझि मन गावा ॥
तेहि मँह पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनो जग छाज बड़ाई ॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमत कविलास बसेरा ॥
लिखि पुरान विधि पठवा सांचा। भा परमान दुवौ जग बांचा ॥
सुनत ताहि नारद उठि भागै। छूटै पाप पुन्नि सुनि लागै ॥

पद्मावत में जायसी ने भारतीय समाज का जो मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया वह उनके काव्य की विशेषता ही कही जायगी। नागमती में भारतीय

हिन्दू रमणी का आदर्श रूप और पद्मावती में पति-प्रेम की एक निष्ठता एवं सतीत्व की भव्य-आभा का दिग्दर्शन करा जायसी ने अपने विशाल हृदय और उसकी चरम संवेदनशीलता का परिचय दिया है। भारतीय समाज की अनेक रीति-नीतियों, एवं परम्पराओं का बड़ा सफल चित्रण पद्मावत में हुआ है।

यह सब कुछ होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जायसी अथवा उनकी परम्परा के अन्य प्रेमगाथाकारों का काव्य भारतीय आदर्श एवं सांस्कृतिक व धार्मिक उद्देश्यों को लेकर लिखा गया था। इस सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में स्पष्ट रूप से हमें भी यह कहना पड़ेगा कि 'समस्त कथा में सूफी सिद्धान्त बादल में पानी की बूँद की भाँति छिपे हुए हैं।' सूफी साधक की चारों अवस्थाओं (१) शरीअत (२) तरीकत (३) हकीकत और (४) मारिफत का बड़ा स्पष्ट और सैद्धान्तिक विवेचन पद्मावत में हुआ है। साधक के मार्ग के जो सात मुकाम होते हैं उनका भी स्पष्ट उल्लेख है। रत्नसेन जीवात्मा का प्रतीक और पद्मावती बुद्धि एवं ब्रह्म की प्रतिमूर्ति है। ग्रंथ के अन्त में कवि ने **'तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पदमिन चीन्हा'** के कथन द्वारा अपने मूल उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है। जिसके पढ़ लेने के उपरांत हमारी सारी शंकाएँ निर्मूल हो जाती हैं और यह भावना दृढ़ हो जाती है कि पद्मावत के द्वारा कवि ने सूफी साधना का प्रचार किया है। उसे इससे अधिक प्रभावशाली और सरलमार्ग दूसरा नहीं मिला, इस नाते भारतीय काव्यात्मक ढाँचे में अपनी सूफी आत्मा को बड़े मनहर और आकर्षक रूप में उसने पिरोया। हिन्दू धर्म एवं देवी देवता सब ही जो यथा स्थान उल्लेख में आये वे कोई विशेष महत्व नहीं रखते। यों ही आ गए हैं। भारतीय समाज का चित्र आना स्वाभाविक था क्योंकि बिना उसके वे अपने उद्देश्य को हिन्दू पाठकों के हृदय में उतारने में सफल नहीं होते। महान प्रतिभाशाली और मेधावी होने के नाते जायसी के काव्य में दृष्टिकोण की उतनी संकुचितता नहीं जितनी अन्य कवियों में है। आखिरी कलाम और अखरावट में उनका धार्मिक रूप स्पष्टतया उनके मूल उद्देश्य की ओर संकेत करता है।

जायसी के अतिरिक्त अन्य सभी सूफी प्रेम गाथाकारों—कुतुबन, मंझन,

उसमान तथा नूरमुहम्मद आदि—ने यही कार्य किया। भारतीय काव्यात्मक ढाँचे में वे अपने धर्म और साहित्यिक विशेषताओं को पिरोते रहे। अपने इस मूल उद्देश्य को वे कभी नहीं भूले। सब ने सूफी एवं इस्लाम धर्म और साधना की स्पष्ट विवेचना की। कथानक भारतीय था इस नाते चरित्रों में भारतीयता का पुट आये बिना न रहा। हमारी श्रद्धा स्वाभावतः उनके प्रति इसी कारण उमड़ पड़ती है।

अस्तु उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर हमें यह कहने में अब कोई संकोच नहीं है कि हिन्दी सूफी कवि अपनी रचनाओं को भारतीय साँचे में ढालते समय भी अपना मूल उद्देश्य कभी नहीं भूले।

प्रश्न २०—रत्नसेन, अलाउद्दीन तथा पद्मावती और नागमती का संक्षिप्त चरित्र चित्रण कीजिए।

रत्नसेन—जंबूदीप के चितौड़ देश के चौहान वंशी महाराज चित्रसेन का पुत्र और पद्मावत-महाकाव्य का धीरोदात्त दक्षिण नायक है। उसके बाल्यकालीन जीवन की कोई भी झाँकी पद्मावत में नहीं मिलती। हीरामन को अत्यधिक मूल्य में भी खरीद सर्व-प्रथम वह अपने चरित्र के कलाप्रेमी एवं गुणग्राहक स्वरूप का परिचय देता है। तदुपरि उसके द्वारा पद्मावती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुन वह पद्मावती पर मुग्ध हो जाता है। स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि वह तोते के निर्देशन में पद्मावती की प्राप्ति हेतु योगी बन जाता है। पद्मावती की प्राप्ति हेतु योगी बन घर से निकल पड़ना उसके प्रेम की दृढ़ता और महान् संकल्प का द्योतक है। बीहड़ मार्ग के अनेक संकटों और आपत्तियों को सहन करते हुए वह सिंहलगढ़ पहुँच दुर्ग में प्रवेश करता है और काफी संघर्षों एवं परीक्षाओं के उपरान्त अंततः पद्मावती को प्राप्त कर लेता है। इन सभी विषम-परिस्थितियों में समरस भाव से अपने लक्ष्य की ओर गतिशील रहना उसके चरित्र की उज्ज्वलता का प्रमाण है।

वह एक आदर्श-प्रेमी है। उसके प्रेम में पर्याप्त गम्भीरता, एकनिष्ठता तथा गहराई और सच्चाई है। वह पद्मावती की प्राप्ति हेतु प्राणोत्सर्ग के लिए भी उद्यत हो जाता है और अंततः सूली पर चढ़ने की स्थिति भी आ जाती है।

इस क्रिया में उसके अनेक गुण यथा साहसिकता, धीरता (कष्ट-सहिष्णुता) अहिंसा (विनय, सौजन्य, कोमलता), सत्याग्रह और उत्सर्ग (त्याग तथा बलिदान) आदि प्रस्फुटित हुए हैं। हर प्रकार के अवरोधों का सामना करते हुए भी अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर लेना उसके चरित्र पर भव्य प्रकाश डालता है।

उसे अपनी साधना के प्रति अडिग-विश्वास है, इस नाते वह लोक-धर्म या रीति-नीति की मिथ्या-परवाह नहीं करता। वह अपनी धुन का पक्का है। पद्मावती के अतिरिक्त अन्य किसी की भी उसे चाह नहीं है। इसी से पार्वती आदि की परीक्षाओं में वह ससम्मान उत्तीर्ण होता है; उसे आशातीत सफलता मिलती है।

पवित्र-प्रणय का एकनिष्ठ पुजारी होने के नाते प्रबल-प्रेम के आवेग में उसने जो कुछ भी करणीय-अकरणीय किया है उसका विचार साधारण धर्म-नीति पर करना न्यायसंगत न होगा। अपेक्षाकृत लोकनीति की दृष्टि से देखने से उसे, भावोत्कर्ष की दृष्टि से देखना ही अधिक समीचीन होगा। प्रसिद्ध भाववेत्ता मनोविज्ञानी सैण्ड (Shand) ने भी कहा है "Every Sentiment tends to acquire the virtues and vices that are required by the system... ....These virtues and vices reaccounted such from the different points of view; first from the point of view of society; Secondly, from the point of view of the sentiment itself according to a standard which itself furnishes."—Foundations of Character. (प्रत्येक भाव-रति शोक, जुगुप्सा आदि के कुछ अपने निज के गुण होते हैं जिनमें से लोक-नीति के अनुसार कुछ सदगुण कहे जाते हैं और कुछ दुर्गुण जो उस भाव की लक्ष्य पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं।)

तोते द्वारा पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन सुन उसके लिए समस्त राजपाट तथा अपनी प्राणप्रिया नागमती की प्रीति का कुछ भी विचार न कर उसे छोड़, योगी हो निकल पड़ना और सिंहलगढ़ में चोरों की भाँति प्रवेश करना लोकनीति की दृष्टि से निंद्य कहा जायगा; परन्तु उसके ये कार्य मूल लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हैं। वह अपने आदर्श प्रेम से च्युत नहीं होता,

इसलिए हम उसके इन कार्यों को अनैतिक तथा निंद्य मानने को तैयार नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन से मैं पूर्ण सहमत हूँ कि—"प्रेम के साधन-काल में जो साहस, कष्ट सहिष्णुता, नम्रता कोमलता त्याग आदि गुण तथा अधीरता, दुराग्रह और चोर्य आदि दुर्गुण दिखाई पड़ते हैं वे प्रेमजन्य हैं, वे स्वतन्त्र गुण या दोष नहीं माने जा सकते। यदि ये बातें प्रेमपन्थ के अतिरिक्त जीवन के अन्य व्यवहारों में भी दिखाई गई होतीं तो इन्हें हम रत्नसेन के व्यक्तिगत स्वभाव के अन्तर्गत ले सकते थे।" इसके अतिरिक्त मूल बात तो यह है कि इन सभी कार्यों में कवि ने आध्यात्मिक संकेत प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थ चोरी से गढ़ में घुसना लौकिक अर्थ में ही बुरा है, सांकेतिक अर्थ में वह यौगिक क्रियाओं की अभिव्यंजना करता है।

सिंहल से लौटते समय कवि ने रत्नसेन का जो अर्थ लोभ दिखाया है उसे भी हम सामान्य व्यक्ति के लोभ की श्रेणी में रखने को तैयार नहीं। आचार्य शुक्ल के कथनानुसार "किसी विशेष अवसर पर असाधारण सामग्री के प्रति लोभ प्रकट करते देख हम किसी को लोभी नहीं कह सकते।"

गोरा बादल के चेताने पर भी अलाउद्दीन के छल को छल न समझना और उसके साथ गढ़ के बाहर तक चला जाना राजनीति की दृष्टि से एक राजा द्वारा अपनी सुरक्षा का ध्यान न रखने की अदूरदर्शिता प्रकट करता है किन्तु वैयक्तिक विशेषता के रूप में उससे राजा के हृदय की उदारता और सरलता ही प्रकट होती है।

क्षत्रिय होने के नाते रत्नसेन में जातिगत स्वभाव की स्पष्ट झाँकी हमें देखने को मिलती है। दिल्ली से छूटकर जिस दिन वह चित्तौड़ आता है उसी दिन रात को पद्मिनी से देवपाल की दुष्टता का हाल सुनकर क्रोध से भर जाता है और प्रभात होते ही बिना किसी पूर्व तैयारी के देवपाल को बाँधने की प्रतिज्ञा से कुम्भलनेर पर आक्रमण कर देता है। प्रतिकार की यह प्रबल-वासना रत्नसेन में राजपूतों के जातिगत लक्षण के कारण ही आई है। इसी प्रकार इससे पूर्व अलाउद्दीन के दूत को, रत्नसेन ने, जो उत्तर दिया है उसके द्वारा भी रत्नसेन के चरित्र की विशेषता का स्पष्ट बोध होता है—

"का मोहिं सिंघ दिखावसि आई। कहौं तो सारदूल धरि खाई।।
हौं रन थंभउर नाह हमीरू। कलपि माथ जेहि दीन्ह सरीरू।।
तुरुक जाई कहु मरै न धाई। होइसि इसकन्दर की नाईं।।
कालि होइ जो आगमन, सो चलि आवै आज।"

दो शब्दों में हम यह कहेंगे कि रत्नसेन एक आदर्श उच्चाति उच्च कोटि का प्रेमी, गुणग्राहक, कलाप्रिय, साहसी, उदार व्यक्ति और पद्मावती-महाकाव्य का सर्वगुण समान्वित धीरोदात्त दक्षिण नायक है। यद्यपि उसके चरित्र में कुछ दुर्बलताएँ भी हैं और कुछ स्थलों पर जायसी उसके उदात्त चरित्र तथा नायकत्व की पूर्ण रक्षा नहीं कर सके हैं तथापि उसके गुणों की अपार प्रभावान राशि इन दुर्गुणों और दुर्बलताओं को नगण्य बनाती हुई उसके चरित्र पर भव्य-प्रकाश डालती है।

अलाउद्दीन—अलाउद्दीन पद्मावत-काव्य के प्रतिनायक के रूप में हमारे सामने आता है। रत्नसेन की भाँति ही वह भी पद्मावती के प्रेम में अनुरक्त दिखाई देता है; फिर भी उसके प्रेम को पाठकों द्वारा वह सम्मान नहीं प्राप्त होता जो रत्नसेन के प्रेम को प्राप्त होता है। अलाउद्दीन का प्रेम रत्नसेन के प्रेम की समकक्षता में हेय कहा जाता है। उसे एकनिष्ठ आदर्श प्रेमी के स्थान पर लोभी लम्पट के रूप में देखा जाता है। आइए इस तथ्य के मूलाधार को समझ लें तभी उसके चरित्र का मूल्यांकन करने में हम समर्थ हो सकेंगे।

अलाउद्दीन के विपक्ष में दो बातें प्रस्तुत की जाती हैं—प्रथम तो यह कि पद्मावती दूसरे अर्थात् रत्नसेन की विवाहिता पत्नी है जिससे अलाउद्दीन का उसको प्राप्त करने का दुस्साहस भारतीय समाज की नैतिक दृष्टि में अक्षम्य अपराध है। दूसरी बात यह कि अलाउद्दीन के प्रयत्न उग्र हैं और वासना की गंध से दूषित हैं। उनमें शुद्ध एवं पवित्र प्रेम की सुगन्धि का अभाव है। काव्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने के उपरांत प्रत्येक व्यक्ति इसी निष्कर्ष पर आता है। उपर्युक्त दोनों बातें अलाउद्दीन के लिए बिल्कुल ठीक-ठीक बैठ जाती हैं। इसके विपरीत रत्नसेन के प्रेम में पर्याप्त धीरता, अहिंसा और उत्सर्ग की

भावना का रोमांचकारी समावेश है। अलाउद्दीन के प्रेम में अधीरता, उग्रता और उच्छृँखलता तथा आतंक की प्रखरता है जिससे पवित्र प्रेम की गरिमा विनष्ट हो जाती है।

अलाउद्दीन रूप लोभी है क्योंकि राघव द्वारा पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य की विशद प्रशंसा सुन वह रत्नसेन के पास अपने दूत द्वारा इस आशय का संदेशा भेजता है कि वह पद्मावती को उसके हरम में भेज दे और बदले में जितना राज्य चाहे उतना ले ले; परन्तु रत्नसेन द्वारा आशा के विपरीत उत्तर पाने पर वह चित्तौड़ पर चढ़ाई कर देता है और आठ वर्ष तक उसके चतुर्दिक घेरा डाले रखता है।

कवि ने अलाउद्दीन को शूरवीर के रूप में भी चित्रित किया है। उसके हृदय में वीरों और उनकी वीरता के प्रति उचित सम्मान है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण उस घटना से होता है कि जब अलाउद्दीन के संधि-प्रस्ताव को रत्नसेन ने स्वीकार कर लिया तो सरजा ने अलाउद्दीन की चाटुकारिता अर्थात् चापलूसी में राजपूतों को 'काग' की संज्ञा से सम्बोधित किया। इस पर अलाउद्दीन ने उसे बहुत फटकारा और कहा कि काग वे नहीं वरन् तुम हो—जो धूर्तता करते हो और इधर की बात उधर तथा उधर की बात इधर किया करते हो। 'काग' धनुष पर चढ़े हुए बाण को देखकर भाग जाते हैं परन्तु राजपूत उसे देखते ही शत्रु को युद्ध के लिए ललकार कर खड़े हो जाते हैं। जायसी ने अलाउद्दीन के मुख से ऐसी बात कहलवाकर अपनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

समग्रतः अलाउद्दीन को उदार एवं सरल हृदय हम नहीं कह सकते। वह छली, विश्वासघाती, आक्रामक और जिद्दी है। महान् शासक के अनुरूप गंभीरता का उसमें अभाव है, यही कारण है कि वीर होते हुए भी वह पाठकों की विरक्ति और घृणा का पात्र बनता है।

सबसे बड़ी बात यह कि आध्यात्मिक संकेत में वह माया (असत) का प्रतीक है, फलस्वरूप पाठकों की सहानुभूति, करुणा तथा आदर और प्रेम के द्वार उसके लिए बन्द हैं। यद्यपि जायसी ने कहीं भी उसके साथ पक्षपात या

अन्याय नहीं किया और यथास्थान परिस्थितियों के अनुकूल उसके मनोभावों एवं आचरण का प्रदर्शन किया है, तथापि अलाउद्दीन का चरित्र पूर्णतया नहीं निखर सका है। साँगोपाँग चारित्रिक विवेचन के अभाव में कुछ स्फुट गुण-दोषों के आधार पर हम किसी के प्रति सच्चा न्याय नहीं कर सकते। पद्मावत के प्रतिनायक अलाउद्दीन की ठीक यही स्थिति है।

पद्मावती—काव्य की नायिका पद्मावती प्रथम रत्नसेन की प्रेयसी और बाद में उसकी पत्नी के रूप में चित्रित हुई है। उसका चरित्र भी नायक रत्नसेन की भाँति आदर्शोन्मुख है। सिंहल के आवासकालीन जीवन में उसका स्वरूप एक सच्ची प्रेमिका का है। इस तथ्य का उद्घाटन कवि ने कई बार किया है। प्रमुख रूप से उस समय तो यह अत्यन्त ही स्पष्ट हो जाता है जब रत्नसेन को शूली की आज्ञा होती है देखिए पद्मावती क्या कहती है :—

काढ़ि प्रान बैठों लेइ हाथा। मरे तो मरौं जिऔं एक साथा॥

सिंहल से चित्तौड़ लौटते समय मार्ग में ही उसके आदर्श गृहणीत्व का स्वरूप प्रकट होने लगता है। पुरी में पहुँचने पर राजा रत्नसेन के पास हंस, शार्दूल आदि पाँच वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य कुछ भी पाथेय शेष न रहा तब पद्मावती ने झट उन रत्नों को बेचने के लिए प्रस्तुत किया जो विदा के समय लक्ष्मी द्वारा उसे छिपाकर दिए गए थे। यहाँ पर वह संचय बुद्धिशीला आदर्श गृहणी के स्वभाविक रूप में उपस्थित होती है।

पद्मावती में व्यक्तिगत दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता भी है। इस बात का पता हमें दो स्थलों से विशेषरूप से चलता है। प्रथम स्थल तो वह है जब रत्नसेन ने पंडितों के कहने में आकर राघवचेतन को देश निकाला की आज्ञा दी। पद्मावती को राजा का यह कार्य अच्छा और राज्य के पक्ष में हितकारी न लगा :—

ज्ञान-दिस्टि धनि अगम विचारा।
भल न कीन्ह अस गुनी निकारा॥

अस्तु वह अपने हाथ के कंगन-दान से राघवचेतन को संतुष्ट करने का प्रयत्न

करती है। एक महारानी के रूप में पद्मावती ने यहाँ बड़ी ही दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

द्वितीय स्थल, जिससे रानी की बुद्धिमत्ता एवं साहसिक उद्योग का पता चलता है, वह यह है कि जब रत्नसेन दिल्ली में कैद हो जाता है और रत्नसेन से रूठे हुए गोरा-बादल को मनाने वह स्वयं पैदल उनके द्वार पर जाती है। राजा के सच्चे हितैषी और वीरवर उन दोनों योद्धाओं को पहचानने में उसने बड़ी सावधानी से काम लिया।

उसमें जातिगत स्वभावानुसार प्रेमवर्ग और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या का भाव भी पाया जाता है। वह रूपगर्विता तथा प्रेमगर्विता दोनों है। जैसे ही उसे यह पता चलता है कि प्रियतम नागमती के प्रमद-कानन में विहार कर रहा है, वह तत्काल वहाँ पहुँचती है—और स्त्री सुलभ दुर्बलता के अनुकूल वादविवाद छेड़ बैठती है। विद्वानों ने इस प्रकार के गर्व मान तथा ईर्ष्या और प्रेम को स्त्री जाति के सामान्य स्वभाव के अन्तर्गत लिया है।

पद्मावती पतिपरायणा, एक निष्ठ प्रेमिका एवं पत्नी है। उसकी समस्त कामनाएँ और आशायें रत्नसेन में निहित हैं। उसके प्रेम का जो महान् और सतीत्व का भव्य-रूप पद्मावत में जायसी ने प्रस्तुत किया है वह सर्वथा सराहनीय है। दूती संवाद में पद्मावती के पवित्र और एकनिष्ठ प्रेम की स्पष्ट झाँकी हमें देखने को मिलती है। प्रियतम की मृत्यु का समाचार पाते ही वह सपत्नी नागमती के संग चिता पर प्रियतम की शव से लिपट सती हो जाती है। यहाँ पर कवि ने हिन्दू नारी के चरित्र का चरम उत्कर्ष प्रकट किया है।

पद्मावती दिव्य और पावन-प्रेम की साक्षात प्रति मूर्ति है। उसमें एक आदर्श प्रेमिका, पत्नी और राज्य की रानी के समस्त आवश्यक गुणों का उचित समावेश है। कवि ने उसके रूप और शील का बड़ा ही भव्य एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। वह सम्पूर्ण प्रेम-कथा की केन्द्र बिन्दु है।

नागमती—अत्यन्त सुन्दरी श्यामवर्णा नागमती राजा रत्नसेन की प्रथम पत्नी और काव्य की प्रतिनायिका है। कवि ने सर्वप्रथम उसे रूपगर्विता के रूप में प्रस्तुत किया है।

नागमती रूपवती रानी। सब रनिवास पाट-परधानी ॥
कै सिंगार कर दरपन लीन्हा। दरसन देखि गरब जिनु कीन्हा ॥
बोलहु सुम्रा पियारे-नाहाँ। मोरे रूप कोई जग माहाँ ? ॥
हँसत सुम्रा पँह म्राइ सो नारी। दीन्ह कसौटी म्रोपनिवारी ॥
सुम्रा बानि कसि कहु कस सोना। सिंहलदीप तोर कस लोना ? ॥
कौन रूप तोरी रूपमिनी। दहुँ हौं लोनि, कि वै पदमिनी ? ॥
जो न कहसि सत सुम्रटा, तोहि राजा कै म्रान।
है कोई एहि जगत मँह, मोरे रूप-समान ? ॥

× × × × ×

सुमिरि रूप पदमावति केरा। हँसा सुम्रा, रानी मुख हेरा ॥
जेहि सरवर मँह हंस न म्रावा। बगुला तेहि सर हंस कहावा ॥
लोनि विलोनि तहाँ को कहै। लोनी सोई कंत जहि चहै ॥
का पूछहु सिंहल कै नारी। दिनहि न पूजै निसि-म्रँधियारी ॥

इस पर रानी को चिंता हो जाती है कि :—

जौं यह सुम्रा मंदिर मँह म्रहई। कबहुँ बात राजा सौं कहई ॥
सुनि राजा पुनि होइ वियोगी। छाँड़ै राज, चलै होइ जोगी ॥

इसलिये उस विषय को नष्ट कर देने के लिए धाय को शीघ्रातिशीघ्र बुलाकर मारने का म्रादेश देती है जो स्त्री स्वभाव सुलभ ईर्ष्या तथा म्राशंका से परिपूर्ण है।

पंखि न राखिय होइ कुमाखी। लेइ तहँ मारु जहाँ नहिं साखी ॥

परन्तु विधना विधान कुछ ऐसा था कि सुम्रा बच जाता है।

नागमती में एक म्रादर्श भारतीय गृहिणी की समस्त भावनाम्रों का कवि ने समावेश कर रखा है। देखिये पद्मावती के प्रेम में योगी बन कर घर छोड़कर जाते हुए पति रत्नसेन के प्रति उसका निवेदन किस प्रकार उसके सतीत्व की म्रोर इंगित करता है :—

म्रब को हमहिं करहि भोगिनी। हमहूँ साथ होब जोगिनी ॥
की हम्ह लावहु म्रपने साथा। की म्रब मारि चलहु एहि हाथा ॥

तुम्ह अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहँवा राम तहाँ संग सीता॥
जौं लहि जिउ सँग छाँड़ न काया। करिहौं सेव पखरिहौं पाया॥

—जोगी खंड

नागमती के चरित्र की सब से उज्ज्वल झाँकी हमें उस समय मिलती है, जब रत्नसेन नवपरिणीता वधू पद्मावती के साथ सिंहल में भोग-विलास में रत था; और नागमती यहाँ चित्तौड़ में उसकी अविकल-प्रतीक्षा में विरह-विदग्ध हो रही थी। उसके वियोग-चित्रण में ज़ायसी की लेखनी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। दूसरे शब्दों में इसे हम यों कहेंगे कि नागमती के आँसुओं में डूब कर जायसी की लेखनी ने उसकी वियोग-दशा का वर्णन किया है। नागमती को कवि ने एक आदर्श भारतीय हिन्दू रमणी के रूप में देखा है, और उसके विशाल हृदय की पवित्रता एवं संवेदनशीलता का बड़ा ही मर्म स्पर्शी चित्रण किया है। देखिए नागमती की जोड़ी बिछुड़ गई है, जिसके वियोग में सूखकर वह पिंजर मात्र रह गई है। इस तथ्य को कवि ने कितने कुशल और प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया है:—

सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?
झुरि-झुरि पींजर हौं भई, बिरह-काल मोहि दीन्ह।

वेदना की असीमता देखिए:—

खन एक आव पेट मँह साँसा। खनहि जाइ जिउ होइ निरासा॥
पवन डोलावहि सींचहि चोला। 'पहर एक समुझहि मुख-बोला'॥

फारसी शैली से प्रभावित होने के नाते वर्णन कहीं-कहीं ऊहात्मक अवश्य हो गया है परन्तु उसमें भी व्यंजना की एकरूपता है। कुछ उद्धरण लीजिए:—

(१) जेहि पंखी के नियर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

(२) जँह-जँह ठाढ़ि होई बनवासी। तँह तँह होइ घुघुचि कै रासी॥
बूँद-बूँद मँह जानहु जीऊ। गुंजा गूँजि करै 'पिउ-पीऊ'॥

(३) तेहि दुख भये परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
जानहु अगिनि कै उठहि पहारा। औ सब लागहि अंग अंगारा॥

(४) जरत वजागिनि करु पिउ छाँहा। आइ बुझाउ, अँगारन माँहाँ ॥
लागिउ जरै-जरै नस भारू। फिरि-फिरि भूंजेसि तजिऊ न बारू॥

उसके करुण क्रन्दन को सुनकर पक्षी विह्वल हो गए अन्त में एक पक्षी पूछ ही बैठा :—

इस पर नागमती उससे अपनी विरह व्यथा का निवेदन करती हुई निम्न-संदेशा पद्मावती तक पहुँचाने की याचना करती है :—

पदमावति सौं कहेउ विहंगम। कंत लोभाय रही करि संगम ॥
हमहूँ वियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर—जीऊ ॥
अबहु मया करु करु जिउ फेरा। मोंहि जियाउ कंत देइ मोरा ॥
मोंहि भोग सों काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहन हारी ॥
सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ ॥

इस अस्थिर मनःदशा में भी कितने उद्गार व्यक्त हुए हैं। यहाँ नागमती का चरित्र अपनी उज्ज्वलता के चरम उत्कर्ष पर पहुँचा है। इस स्थल पर एक-निष्ठ आदर्श पतिप्राणा भारतीय गृहिणी का चरित्र-कमल अपना पूरा परिमल बिखेर रहा है। उसकी वियोग दशा द्वारा पति के प्रति उसके गूढ़ गंभीर प्रेम की व्यंजना हुई है।

"पति-परायणा नागमती जीवन-काल में अपनी प्रेम-ज्योति से गृह को आलोकित करके अन्त में सती की दिगंत व्यापिनी प्रभा से दमक कर इस लोक से अदृश्य हो जाती है।"—आचार्य शुक्ल

नागमती के चरित्र के माध्यम से ही जायसी ने भारतीय और फारसी शैली का समन्वय किया है जो उनके साहित्य की अपनी विशेषता है।

प्रश्न २१—महाकवि जायसी और तुलसी की विराट प्रतिभा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

महाकाव्यकार जायसी और तुलसी दोनों भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवि हैं। जायसी ने निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा का प्रतिनिधित्व किया और तुलसी

ने सगुण भक्ति की राममार्गी शाखा का। मुसलमान के घर में जन्म लेने के कारण जायसी में मुस्लिम संस्कार थे, और हिन्दू (ब्राह्मण) घर में जन्म लेने के नाते तुलसी में आर्य जाति के संस्कार विद्यमान थे। दोनों कवियों ने अपने-अपने धर्म, भक्ति और विचारों के प्रतिपादन के साथ-साथ हिन्दी को अनुपम काव्य-ग्रंथ भेंट किए जिनसे भारती के भंडार में स्थायी वृद्धि हुई। दोनों का युग परिस्थितियों की दृष्टि से एक ही था किन्तु जायसी, तुलसी के पूर्ववर्ती और तुलसी, जायसी, के परवर्ती थे। इन दोनों के व्यक्तित्व तथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हम अपनी सुविधानुसार निम्नलिखित बिन्दु निश्चित करते हैं:—

(अ) युग और आविर्भावकालीन परिस्थितियाँ।
(ब) बाल्यकाल तथा शिक्षा-दीक्षा।
(स) प्रणीत काव्य-ग्रंथ और उनके विषय।
(द) ग्रंथों का समग्रत: साहित्यिक मूल्यांकन।
(थ) समाज, धर्म और राजनीति विषयक विचार।
(फ) विशिष्टताएँ और परम्परा में स्थान।

युग की दृष्टि से वह भक्ति युग था। राजनीतिक-वातावरण शान्त हो चुका था। विजयी मुसलमानों ने हिन्दुओं के उत्साह की कमर तोड़ दी थी, अब उनमें मुसलमानों से लोहा लेने का साहस नहीं रह गया था। विजेता मुस्लिम जाति को यहाँ आए अब काफी दिन हो गए थे और हिन्दुओं को उनके साथ रहने का अब अभ्यास हो चला था। फलस्वरूप दोनों एक दूसरे के आचार-विचार, रहन-सहन, तथा व्यक्तित्व और धर्म आदि से परिचित हो चले थे। संघर्षों से दोनों ऊब गए थे और अब वे शान्ति, तथा निर्विघ्न जीवन के लिए लालायित थे। परस्पर समझौते की भावना बढ़ती जा रही थी, परन्तु दोनों के मूल संस्कारों की भिन्नता ज्यों की त्यों थी। धार्मिक क्षेत्र में दोनों जातियों के बीच काफी कोलाहल था। अनेक संप्रदाय और विविध प्रकार के धार्मिक विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाले नेता अपनी-अपनी करामातें दिखा रहे थे जिससे शान्ति का प्यासा जन-हृदय एक विचित्र मृग-मरीचिका में उलझा

दुसह-व्यथा का अनुभव कर रहा था। प्रतिभाशाली, स्पष्ट विचारों और समरस भाव से आकुल जन-हृदय को शान्ति प्रदान करने वाले नेताओं की आवश्यकता थी। सामाजिक दुर्व्यवस्था का चित्र तो अवर्णनीय है। उसकी विश्रृङ्खलता को एक सूत्र में पिरोने वाले नायक का अभाव था। ऊँच-नीच और छोटे-बड़े आदि की भावना प्रबलतर रूप धारण किए समाज को विकृत करने में संलग्न थी। साहित्य का स्वरूप भी अनस्थिर ही था। उसे सुनिश्चित् दिशा देने वाले मेधावी कलाकारों की अपेक्षा थी। उस युग की इन्हीं विषय-परिस्थितियों के बीच कालान्तर से कविवर मलिक मोहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास ने जन्म लिया।

बाल्यकालीन जीवन दोनों कवियों का विचित्रताओं से युक्त था जिनके बारे में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। यहाँ हम व्यर्थ उन किंवदंतियों की सत्यता-असत्यता की गहराई में न जा एक वाक्य में इतना ही कहना चाहेंगे कि दोनों की बाल्यावस्था अनाथों की सी बीती जिसमें अपेक्षाकृत तुलसी का जीवन अधिक कष्टमय रहा।

'मातु-पिता जग जाय तज्यो, विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।'

—तुलसीदास

× × ×

"बारे ते ललात बिललात द्वार-दीन-दीन,
जानत हौं चारिफल चारि ही चनक कों।"

—तुलसीदास

जहाँ तक शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न है उस समय दोनों, उपयुक्त सुविधाओं से वंचित रहे और जायसी को तो यह अभाव जीवन पर्यंत ढोना पड़ा। धीरे-धीरे वयस्क होने के साथ-साथ उनके जीवन की दिशायें भी बदलीं। युवाकाल में पत्नी रत्नावली के मर्मभेदी शब्द बाणों से घायल हो तुलसी ने वैराग्य ले लिया और ज्ञान-तृष्णा की शान्ति हेतु सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान-पीठों एवं तीर्थ स्थानों का परिभ्रमण करते रहे और अन्त में वाराणसी में गुरु शेष सनातन के चरणों

में बैठ १५ वर्ष तक साहित्य तथा धर्मादि का अनवरत गंभीर अध्ययन किया, तदुपरि महाकवि के रूप में सृजन-तूलिका उठाई। प्रतिकूल परिस्थितियों का शिकार जायसी का बाल्यकालीन जीवन विधिवत शिक्षा-ज्ञान का सौभाग्य न प्राप्त कर सका। फलतः विवश हो विश्व की खुली पाठशाला में उसे अनुभव ज्ञान का अवलम्बन लेना पड़ा।

"बालक जायसी अनाथावस्था में इधर-उधर मारा-मारा फिरा। अतः उसको स्कूलीय शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिला, किन्तु ईश्वर प्रदत्त धारणा शक्ति का पूर्णोपयोग उसने किया। उसकी पाठशाला प्रकृति का व्यापक क्षेत्र था, उसके शिक्षक सांसारिक घटनाएँ और व्यापार थे, सहपाठी ज्ञानेन्द्रियाँ और सत्संग थे तथा पुस्तक निर्मल हृदय था जिसमें अनुभूत व्यापारों का परायण होता रहता था। इस प्रकार मननशील जायसी युवावस्था तक शिक्षा प्राप्त कर संसार के समक्ष आया। ऐसे ही निरक्षर सम्राट् अकबर को संसार ने विद्वान माना और उसकी विद्वत्ता को सराहा था।"

—डा० जयदेव (सूफी महाकवि जायसी पृष्ठ ४२-४३)।

जायसी के काव्य ग्रंथों की सूची अन्य कवियों की भांति लम्बी बताई जाती है किन्तु मान्यता अभी प्रमुख रूप से केवल तीन ग्रंथों को ही मिल सकी है।

(१) आखिरी कलाम, (२) पद्मावत, (३) अखरावट।

तुलसीदास के निम्न ग्रंथों को मान्यता मिली हुई है।

१. रामचरित मानस (सं० १६३१) २. दोहावली (सं० १६४०)
३. कवित्त रामायण (सं० १६६५-७१) ४. गीतावली (सं० १६२७)
५. कृष्ण गीतावली (सं० १६२८) ६. विनय पत्रिका (सं० १६४२)
७. रामलला नहछू (सं० १६०३) ८. वैराग्य संदीपनी (सं० १६६६)
९. बरवै रामायण (सं० १६६९) १०. पार्वती मंगल (सं० १६४३)
११. जानकी मंगल (सं १६४३) १२. रामाज्ञा प्रश्न (सं० १६६९)

जहाँ तक इन ग्रन्थों के वर्णय-विषय का प्रश्न है, भक्तिकाल में जन्म लेने के नाते सामान्यतया दोनों ने भक्ति एवं धर्म सम्बन्धी विचारों को प्रधानता

दी । साथ ही काव्य-कला का चरम उत्कर्ष भी प्रकट किया। वैसे तुलसी के साहित्य में विविध विचारों का अक्षय भंडार है किन्तु प्रमुखता जायसी की भांति धार्मिक विचारों की ही है ।

दोनों की कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय सबसे पहला विचार जो हमारे मस्तिष्क में आता है वह यह कि दोनों ही महान प्रतिभाशाली विचारक और भावुक भक्त हृदय सम्पन्न महाकवि हैं। प्रेम के अनन्य पुजारी हैं, अपने-अपने धर्म के अन्ध विश्वासी हैं, मानव चरित्र के कुशल पारखी और जीवन के सूक्ष्म दृष्टा हैं ।

काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष । भावपक्ष में कल्पना तत्व, बुद्धितत्व तथा रागात्मक तत्व का समावेश होता है और कलापक्ष में छंद, भाषा, शब्द और अलंकार योजना, लोकोक्तियाँ तथा मुहाविरों आदि का प्रयोग । इस दृष्टि से दोनों कलाकारों ने महान मेधा शक्ति और सफल कवि कर्म का परिचय दिया है। भाव तथा कलापक्ष के समस्त तत्वों का समुचित और मूल्यांकन की कसौटी पर खरा उतरने वाला प्रयोग किया है । दोनों महान प्रतिभाशाली हैं जिनके हृदय की भावुकता एक दूसरे से होड़ करती हुई आगे चलती हैं ।

छन्दों में जायसी ने आखिरी कलाम और पद्मावत में दोहे चौपइयों का प्रयोग किया है किन्तु अखरावट में दोहे-चौपाइयों के साथ-साथ सोरठे का भी प्रयोग है । तुलसी ने अपने समय की प्रचलित सभी काव्य-शैलियों में रचनायें कीं । चन्द के छप्पय, कबीर के दोहे, सूरदास के पद, जायसी की दोहा-चौपाइयाँ, रहीम के बरवै तथा राजदरबारों में प्रचलित कवित्त-सवैया आदि सभी पद्धतियों को अपने काव्य में स्थान दिया । इस दृष्टि से वे प्रतिनिधि कवि हैं ।

भाषा के श्रेय में तुलसी का अवधी और ब्रजभाषा दोनों पर समान अधिकार है परन्तु जायसी का केवल अवधी पर ही । तुलसी के रामचरित मानस में पश्चिमी अवधी का साहित्यिक रूप मिलता है और बरवै रामायण में पूर्वी अवधी का । जायसी ने बोलचाल की ठेठ पूर्वी अवधी का प्रयोग किया है । तुलसी की भाषा में जो प्राँजलता है वह जायसी की भाषा में नहीं । तुलसी

की भाषा भावानुसारिणी, ओज और माधुर्य से परिपूर्ण है। यत्र-तत्र फारसी और अरबी तथा बुंदेलखण्डी के भी शब्द पाये जाते हैं। जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य "भाषा" का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य निराला है। वह संस्कृत की कोमल-कांत-पदावली पर अवलम्बित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिये हुए है। "मंजु, अमंद" आदि की चासनी उसमें नहीं है। जायसी की भाषा और तुलसी की भाषा में यही बड़ा भारी अन्तर है। जायसी की पहुँच अवध में प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहुते हुए माधुर्य स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुँच दीर्घ-संस्कृत-कवि परम्परा द्वारा परिपक्व चाशनी भाडागार तक भी पूरी-पूरी थी। दोनों के भिन्न प्रकार के माधुर्य का अनुमान नीचे उद्धृत चौपाइयों से हो सकता है—

(१) जब-हुँत कहि गा पँखि सँदेशी। सुनिउँ को आवा है परदेसी॥
तब-हुँत तुम बिन रहै न जीऊ। चातक भइउँ कहत 'पिउ-पीऊ'॥
भइउँ चकोरि सो पंथ निहारी। समुद सीप जस नयन पसारी॥
भइउँ विरह जरि कोइलि कारी। डार-डार जिमि कूकि पुकारी॥
—जायसी

(२) अमिय-मूरि-मय चुरन चारू। समन सकल भवरुज-परिवारू॥
सुकृत संभु तन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद-प्रसूती॥
जन-मन-मंजु-मुकुर-मल हरनी। किए तिलक गुनगन बस करनी॥
श्री गुरु-पद-नख-मनि-गन-जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
—तुलसी

यदि गोस्वामी जी ने अपने "मानस" की रचना ऐसी ही भाषा में की होती जैसी कि इन चौपाइयों की है—

कोउ नृप होइ हमैं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी?॥
जारै जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥

तो उनकी भाषा पद्मावत ही की भाषा होती और यदि जायसी ने सारी "पद्मावत" की रचना ऐसी भाषा में की होती जैसी की इस चौपाई की है—

उदधि आइ तेइ बंधन कीन्हा । हति दशमाथ अमर-पद दीन्हा ॥

तो उसकी और "रामचरित मानस" की एक भाषा होती पर जायसी में इस प्रकार की भाषा कहीं ढूंढ़ने से एकाध जगह मिल सकती है । तुलसीदास जी में ठेठ अवधी की मधुरता भी प्रसंग के अनुसार जगह-जगह मिलती है । सारांश यह कि तुलसीदास जी को दोनों प्रकार की भाषाओं पर अधिकार था और जायसी को एक ही प्रकार की भाषा पर । एक ही ढंग की भाषा की निपुणता उनकी अनूठी थी । अवधी की खालिस, बे-मेल मिठास के लिए 'पद्मावत' का नाम बराबर लिया जायगा । (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) ।

तुलसी की शब्द योजना बड़ी ही मनहर और सशक्त है । वाक्य रचना व्यवस्थित और आकर्षक है । जायसी की वाक्य रचना स्वच्छ होने पर भी तुलसी के समान सुव्यवस्थित नहीं । न्यूनपदत्व के वाक्य दोष अधिक हैं । शब्द योजना भी उतनी शशक्त नहीं । लोकोक्तियों और मुहाविरों का दोनों कवियों ने सफल प्रयोग किया है । अलंकारों में भी दोनों कवि परम्परा के पालक ही अधिक हैं ।

रसों में तुलसी का नवों रसों पर पूर्ण अधिकार है परन्तु जायसी का नहीं । शृङ्गार करुण और वीर रसों के चित्रण में ही उन्हें अधिकाधिक सफलता मिल सकी है । शृङ्गार में वियोग शृङ्गार जायसी का बड़ा ही मार्मिक है । नागमती के विरह वर्णन में न केवल पाठक वर्न सम्पूर्ण प्रकृति संवेदनशील हो उठी है और पशु-पक्षियों के दृगों से भी अश्रु प्रवाहित हो चलता है । 'पद्मावत' रतिभाव का अगाध सागर है, शृङ्गार रस का महाकाव्य है ।

कल्पना की विलक्षणता दोनों कवियों में अपूर्व है । कोई किसी से घटकर नहीं । हां, तुलसी सौन्दर्य और मर्यादा को कभी नहीं भूलते ।

बुद्धितत्व अपेक्षाकृत जायसी से तुलसी में अधिक है । वे मर्यादावादी आदर्श विचारों के सुधारवादी कवि हैं । जायसी इसके विपरीत अपनी प्रेम पीर के अमर गायक ही हैं । जहाँ तक विचारों की बात है तुलसी के साहित्य में जीवन और जगत के विविध अंगों पर पाँडित्य पूर्ण प्रकाश डाला गया है । जायसी में विचारों की उस व्यापकता का अभाव है । शायद उन्होंने इसकी आवश्यकता

ही न समझी हो क्योंकि वे प्रेम मार्ग के धीर पथिक थे। उन्हें अपनी पीर की गहराई और व्यापक संवेदनशीलता की विवेचन सीमा से बाहर निकल जीवन और जगत को इतनी खुली आँखों से देखने का अवकाश ही न मिला; अथवा यह कहिए कि अपने लक्ष्य की तन्मयता में डूबे रहने के कारण उन्होंने इधर देखा ही नहीं। वे अपनी धुन में ही चलते गए, उन्हें तुलसी की भाँति समाज की कोई चिन्ता न थी और न भविष्य के लिये उन्हें कोई सामाजिक आदर्श ही छोड़ जाना था।

तुलसीदास को लोक और शास्त्र का व्यापक ज्ञान था। इसी लिये वे अपने सम्पूर्ण साहित्य में समन्वय की चेष्टा में रत दिखाई देते हैं। लोक और शास्त्र का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, कथा और तत्वज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाँडाल का समन्वय, पांडित्य और अपाँडित्य का समन्वय आदि से उनका रामचरितमानस भरा हुआ है। वे आदर्शवादी थे और अपनी रचनाओं में भावी समाज का ढाँचा उपस्थित करने में प्रयत्नशील रहे यही कारण है कि उनके पात्रों के आचरण में कोई न कोई समाज सृष्टि का विशेष लक्ष्य होता है। उनका प्रत्येक पात्र किसी न किसी सामाजिक भावना का प्रतिनिधित्व करता है।

जायसी ने मानव जीवन की सामाजिक एवं नैतिक भावनाओं को अपने काव्य में शून्यवत् ज्ञान दिया है। इसका प्रधान कारण यह था कि जायसी ने तुलसी की भाँति समाज सुधारक और नीति व्यवस्थापक तथा किसी प्रकार की जातिगत मर्यादा को ध्यान में रख कर अपने काव्य की सृष्टि नहीं की। उन्हें न किसी लोकव्यापी आदर्श की प्रतिष्ठा करनी थी और न भावी समाज का ढाँचा ही तैयार करना था वे तो प्रेम की पीर के गायक थे जिसमें हाल आता है वेदना और तड़प होती है। लौकिक प्रेम उनके उस प्रेम के प्राप्त करने का सोपान है। लौकिक प्रेम के उत्कर्ष में ही उन्हें दिव्य प्रेम की अनुभूति होती है। नैतिकता का बन्धन इस मार्ग में महान् बाधक है। वे लौकिक प्रतिबन्धों से परे मूक हृदय से खेलते हुये अपने उस परम प्रियतम के एकनिष्ठ और दिव्य प्रेम

को प्राप्त कर लेना चाहते हैं। इसके विपरीत तुलसी के प्रेम में मर्यादा है उच्छृङ्खलता और अनैतिकता को वहाँ बिल्कुल स्थान नहीं है। मर्यादा से गिरा हुआ प्रेम,-प्रेम की संज्ञा को सार्थक नहीं करता वह हेय है और उसे वासना की कोटि में स्थान मिलना चाहिए। तुलसी के प्रेम में श्रद्धा का सम्मिश्रण है, जिसने उनके प्रेम को महान् गम्भीरता प्रदान की है।

जायसी ने समाज विषयक यत्र-तत्र जो चर्चायें की हैं वे उनके कथा के प्रसंग वश हैं किसी सामाजिक दृष्टि से नहीं। राजनैतिक विचारों की ओर से जायसी बहुत उदासीन हैं। मसनवी शैली के अनुसार ग्रन्थ रचने के कारण अपने 'पद्मावत' में उन्होंने शाहे वक्त (शेरशाह) की प्रसंशा अवश्य की है पर वह परम्परा पालन मात्र ही है उससे देश की तत्कालीन राजनैतिक दशा पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। जहाँ तक भक्ति और साधना विषयक प्रश्न हैं जायसी मुसलमान सूफी भक्त कवि थे किन्तु उनके काव्य पर हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की भी छाप है वे उदार हृदय और विधि पर पूरी आस्था रखने वाले हैं। वेद, पुराण, कुराण आदि उनकी दृष्टि में कल्याण कारी हैं। वेद विरोधियों के लिए उनका कहना था।

बेद वचन सुख सांच जो कहा।
सो जुग जुग अहि थिर ह्वै रहा॥

अपनी साधना में उन्होंने सभी धर्मों से कुछ न कुछ लिया है उपासना के क्षेत्र में वे भगवान् के निर्गुण रूप के उपासक थे किन्तु सूफी सिद्धान्तों की ओर झुकाव होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासक की सहृदयता पाई जाती है सूफी धर्म उनका अभीष्ट धर्म था और सूफी साधना ही उनकी अभीष्ट साधना थी।

इसके विपरीत तुलसीदास आर्य संस्कारों से सम्पन्न वैष्णव भक्त थे। नवधा भक्ति उनकी वैष्णव साधना के प्राण के रूप प्रतिष्ठापित हुई है। भगवान राम की सगुणोपासना करते हुए उन्होंने जन-जन को नवधा भक्ति का सन्देश दिया और समाज में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करते हुए हिन्दू जाति

में आर्य गौरव का महामंत्र जगाया। उनके राम की साकार उपासना से उनका 'राम नाम' अधिक महत्वशाली है। वे रूप की अपेक्षा नाम को श्रेष्ठ बताते हैं क्योंकि—

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

यह नाम की महिमा है जो निर्गुण और सगुण दोनों उपासकों के बीच समान आदर पाती है। शक्ति, शील और सौन्दर्य से समन्वित उनके मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्म होने के साथ-साथ सामान्य मानव के रूप में भी आचरण करते हैं और लोक-आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं। जायसी के रत्नसेन या पद्मावती द्वारा इस प्रकार की आशा हम नहीं कर सकते। मानव जीवन की जितनी विविध दशाओं का चित्रण तुलसी ने किया है जायसी उतनी सोच भी नहीं सके हैं। प्रेम मार्ग में जिनसे उनका सम्बन्ध हुआ केवल उन्हीं की चर्चा उनको अभीष्ट जान पड़ी।

जायसी भी धार्मिक प्रवक्ता हैं और तुलसी भी, किन्तु तुलसी के प्रवचन में आकर्षण है, व्यापकता और समन्वयात्मकता है, जायसी में इस्लामियत अथवा व्यापक रूप में यों कहिए कि सूफी मत-विशेष की ही स्पष्ट गंध है। उसमें जातीयता का संकोच है।

संस्कृति के पोषक के रूप में आचार्य तुलसी अमर हैं। दोनों में समन्वय की भावना है। जायसी सांस्कृतिक समन्वय के लिए कुछ अधिक प्रयत्नशील हैं। भारत की संस्कृति शाश्वत संस्कृति है, इस नाते तुलसी का अपेक्षाकृत कुछ स्वतन्त्र होना स्वाभाविक है। वैसे तुलसी अपनी संस्कृति के महान् पुनरुद्धारक के रूप में प्रसिद्ध हैं और इसी नाते बुद्ध के बाद उन्हें ही लोक नायक की उपाधि मिली (क्योंकि उनमें सब प्रकार के भावों के प्रतिनिधित्व और समन्वय करने की क्षमता थी।) जायसी ने भी भारतीय कलेवर में सूफी आत्मा को सजाया और उससे अपनी संस्कृति के मधुर बोल सुनवाये पर उनका जादू भारतीयों के बीच उतना कारगर न हो सका।

महाकाव्य के समस्त लक्षणों के अनुसार दोनों ने क्रमशः अपने पद्मावत और रामचरित मानस को बनाने का प्रयत्न किया है । अपनी विशिष्टताओं के कारण रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है । पद्मावत का स्थान हिन्दी में दूसरा है । पर यह भी सत्य है कि रामचरित मानस के प्रणेता में भाषा भाव और विचारों की श्रेष्ठता तथा व्यापकता भले ही अधिक हो किन्तु प्रेम की वह एकनिष्ठता तथा गहराई नहीं जो पद्मावत के प्रणेता जायसी में है । चतुर्दिक सतर्क रहने के कारण गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि निर्विवाद सिद्ध होते हैं और एकांगी दृष्टि रखने के कारण जायसी को उनकी श्रेणी के काव्यकारों में द्वितीय स्थान मिलता है । दोनों महाकवियों ने अपनी-अपनी पावन वाणी से साहित्य की जो श्री वृद्धि की है उसके लिए हिन्दी आजीवन ऋणी रहेगी । ध्यान रहे रामचरित मानस से ३४ वर्ष पूर्व पद्मावत का सृजन हो चुका था । पद्मावत हिन्दी का प्रथम सफल कहाकाव्य है । तुलसी काव्य के क्षेत्र में पद्मावत पथ के अनुगामी हैं इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार एक महान् प्रतिभासम्पन्न विनयशील मेधावी महाकवि के रूप में जायसी अमर हैं और हिन्दी काव्य गगन के पीयूष वर्षी इन्दु तुलसी की गरिमा का तो कहना ही क्या !

प्रश्न २२—रहस्यवाद की परिभाषा, उसके उद्भव तथा विकास की कथा संक्षेप में बताते हुए जायसी और कबीर के रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए ।

रहस्यवाद की कोई स्वतन्त्र परिभाषा नहीं । वह मनोरंजक होते हुए भी बड़ा दुस्साध्य विषय है । उसका विस्तार सागर की भाँति सम्पूर्ण विश्व साहित्य में फैला हुआ है । अगणित कवियों के हृदय से उसकी अजस्र धारा प्रवाहित हुई है जिसके कल-कल निनाद में उन्होंने अलौकिक संगीत का अनुभव किया है । वे उसमें खो गये हैं, अपना भौतिक अस्तित्व भुला बैठें हैं । योगी और यती आदिकाल से ही उसे समझने का प्रयास करते चले आ रहे हैं परन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके । रहस्य रहस्य ही बना रह गया ।

उसे वाणी न मिल सकी; और जो मिली भी वह अटपटी तथा कहीं-कहीं अत्यन्त ही भावात्मक और स्निग्ध पारे की सी गतिमान। बड़े-बड़े मनीषियों और तत्वचिन्तकों की जब यह दशा है तो सामान्य बुद्धि की बात ही क्या हो सकती है। फिर भी जिज्ञासु मन को आश्वस्त करने के लिए विद्वानों ने रहस्यवाद को यथा सम्भव परिभाषाओं की डोर में बाँधने के प्रयत्न किये हैं। जिनमें से कुछ को हम नीचे दे रहे हैं।

"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर ही नहीं रह जाता है।"—डा० रामकुमार वर्मा

"साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है काव्य के पक्ष में वही रहस्यवाद है।"—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

"रहस्यवाद साहित्यिक धारणाओं और मान्यताओं के अनुसार उस मनःप्रवृत्ति का प्रकाशन है जो अव्यक्त और सर्वव्यापी ब्रह्मवाद से परिचित होने के लिए प्रयास करती है। यह प्रवृति मन का गुण है इसका प्रकाशन काव्य में होता है। यह प्रयास जिस भाव साधना के सोपानों से अग्रसर होता है, वह एक उच्च स्तर की मानसिक स्थिति होती है। यह स्थिति साधारण जन के लिए रहस्य है।"—डा० मुंशीराम शर्मा

"रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव स्थिति से उस असीम एवं स्वर्गिक महा अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।"—गंगा प्रसाद पाण्डेय।

एक वाक्य में हम यों कहेंगे कि आत्मा और परमात्मा का सीधा सम्बन्ध जब काव्यमयी भाषा में व्यक्त होता है तो उसे साहित्य में रहस्यवाद के नाम से पुकारा जाता है। उस अप्राप्य ब्रह्म अथवा अज्ञात—अव्यक्त चरम सीमा सत्ता को प्राप्त तथा व्यक्त करने के लिए मानव हृदय व मन ने जो निरन्तर प्रयत्न किये हैं उसे ही रहस्यवाद की परिभाषा मिली है।

इस रहस्यवाद में अद्वैतवाद की भावना काम करती है। 'अहं ब्रह्माऽस्मि' तथा 'सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म' की अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद का आधार है। ब्रह्म और जीव तथा ब्रह्म और जगत की एकता रहस्यवाद के दो छोर हैं। इसी तथ्य की पृष्ठ में अनेक तत्व चिन्तकों और काव्य मनीषियों ने उसे विविध दिशायें देने का प्रयत्न किया है। अद्वैतवाद के दोनों पक्ष मिलकर 'सर्ववाद' की प्रतिष्ठा करते हैं।

भारतीय संतों और भक्तों ने अपनी साधना के लिए पहले पक्ष के लिए अधिक महत्व दिया है परन्तु दूसरे पक्ष की अनुभूति के विना उनकी व्यापक भावना को पूर्णता नहीं मिलती। प्रकृति की प्रत्येक विभूति में, संसार के प्रत्येक—कोमल और कठोर, प्रीतिकर और भयंकर कार्य-व्यापार में उन्हें इस अव्यक्त और परोक्ष सत्ता का आभास मिलता है।

"पहले पक्ष को लेकर भारत और फारस में सूफी और योग मार्ग चले हैं उन पंथों और मार्गों पर चलने वालों का अन्ततः अपनापन खुदा या बन्दे में लय करना ही लक्ष्य है।

दूसरे पक्ष को लेकर भावुक हृदय में एक भाव लोक की सृष्टि हुई जिसमें कहीं ईश्वर को सर्व व्यापक मानकर प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ, घटना और व्यापार में उसकी विभूति और व्यापारों का दर्शन है, तो कहीं ईश्वर को प्रेममय, प्रेमरूप मानकर उसकी लीला का प्रसार है। इसी की परिणति एक दिशा में माधुर्य भावना में हो जाती है।"

—डा० सुधीन्द्र।

आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के दो भेद किये हैं :—

१. साधनात्मक।
२. भावात्मक।

जिस रहस्यवाद का आधार योग है वह साधनात्मक रहस्यवाद है और जिसका आधार भक्ति या सूफी प्रेम सिद्धान्त है वह भावात्मक रहस्यवाद है।

साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत योग के अप्राकृत और जटिल आसन, कर्मकाण्ड, तप और काया कष्ट आदि हैं। इसमें बरबस इन्द्रियों का दमन किया जाता है। और इस प्रकार साधक मन को अव्यक्त तत्थयों का साक्षातकार तथा अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ भगवान के निकट पहुँचने का प्रयत्न करता है। तन्त्र और रसायन भी साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत ही आते हैं पर उनका स्तर अपेक्षाकृत निम्न है।

भावात्मक रहस्यवाद की कई श्रेणियाँ हैं जिसमें से किसी एक रहस्य-भावना को आधार मानकर भक्त सरल एवं मधुर भाव से अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। भक्त और साधक में अगाध विश्वास तथा आत्म समर्पण की भावना बड़ी प्रबल रहती है। इस रहस्यवाद के अन्तर्गत अद्वैत ब्रह्म की ही कल्पना होती है।

इस अद्वैतवाद का प्रतिपादन सर्व प्रथम उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद् भारतीय ज्ञानकाण्ड के मूल हैं। अद्वैतवाद की पृष्ठ भूमि में एक दार्शनिक सिद्धांत है, कवि कल्पना या भावना नहीं। वह मनुष्य के तत्वचिन्तन और बुद्धि प्रयास का फल है।

इस ज्ञान का उदय प्रेमोन्माद या इलहाम के रूप में नहीं हुआ था। वस्तुतः अद्वैतवाद चिन्तन की वस्तु है, भावनामात्र की नहीं। ब्रह्म जीव तथा प्रकृति के रहस्यों को समझने के पश्चात् मनीषियों ने उसके उद्घाटन के जो विविध मार्ग अपनाये उसमें भावना को स्थान मिला। रहस्यवादी भावना भी उद्घाटन के विविध मार्गों में से एक है।

गीता के दशवें अध्याय में सर्ववाद का जो अद्वैतवाद का विकसित रूप है, भावात्मक प्रणाली पर निरूपण है। वहाँ भगवान ने विभूतियों का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। सर्ववाद को लेकर जब भक्त की मनोवृत्ति रहस्योन्मुख होगी तब वह अपने को जगत के नाना रूपों के सहारे उस परोक्ष सत्ता की ओर ले जाता हुआ जान पड़ेगा। इस आधार पर अवतारवाद का मूल भी रहस्य भावना ही ठहरती है। परन्तु रहस्यवाद के सिद्धान्त रूप में

गृहीत हो जाने पर तथा राम कृष्ण के ईश्वर विष्णु के अवतार निश्चित हो जाने पर यह रहस्य दशा समाप्त हो गई ।

श्रीमद्भागवत के उपरान्त कृष्ण भक्ति को जो रूप प्राप्त हुआ उसमें रहस्य भावना को प्रश्रय मिला । भक्तों की दृष्टि से कृष्ण का लोक संग्रही रूप हटने लगा और वे प्रेम मूर्ति मात्र रह गये । अभिप्राय यह कि भक्त लोग उन्हें अपने निजी दृष्टिकोण से देखने लगे । गोपियों का प्रेम जिस प्रकार एकान्त और रूप माधुर्य मात्र पर आश्रित था उसी प्रकार भक्तों का भी हो चला । यहाँ तक कि कुछ स्त्री भक्तों ने भगवान की कल्पना प्रियतम के रूप में की । बड़े-बड़े मन्दिरों और देवदासियों की जो प्रथा थी उससे इस माधुर्य भाव को और भी सहारा मिला । माता-पिता कुमारी लड़कियों को मन्दिरों में दान कर आते थे जहाँ उनका विवाह देवता के साथ हो जाता था । उनकी भक्ति देवता को पति रूप में मानकर ही विकसित हुई । इस पति या प्रियतम के रूप में भगवान की भावना को वैष्णव भक्तिमार्ग में 'माधुर्य भाव' कहते हैं । इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य रूप से रहता है ।

स्वभाव से भारतीय भक्ति रहस्यात्मक नहीं है । इस नाते इस भावना का अधिक प्रचार न हो सका । हाँ, जब सूफी भारत में आये तो उनका प्रभाव भारतीय भक्तों पर पड़ा । मीरा बाई ने ऐसे भक्तों का प्रतिनिधित्व किया । चैतन्य महाप्रभु की मण्डली, सूफियों की भाँति ही कीर्तन करते-करते मूर्छित हो जाती थी । भारतीय भक्ति भावना पर सूफियों के प्रभाव सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत द्रष्टव्य है :—

"मुसलमानी जमाने में सूफियों की देखा-देखी इस भाव की ओर कृष्ण भक्ति शाखा के कुछ भक्त प्रवृत्त हुए । इसमें मुख्य मीरा बाई हुई जो लोक लाज खोकर अपने प्रियतम श्री कृष्ण के प्रेम में मतवाली रहा करती थीं । उन्होंने एक बार कहा था कि "कृष्ण को छोड़ और पुरुष है कौन ?" सारे जीव स्त्री-रूप हैं ।"

सूफियों का असर कुछ और कृष्ण भक्तों पर भी पूरा-पूरा पाया जाता है । चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं । जैसे सूफी कव्वाल

गाते हुए हाल की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु जी की मण्डली भी नाचते-नाचते मूर्छित हो जाती है। यह मूर्छा रहस्यवादी सूफियों की रूढ़ि है। इसी प्रकार मद प्याला उन्माद तथा प्रियतम ईश्वर के विरह की दूरारूढ़ व्यंजना भी सूफियों की बंधी हुई परम्परा है। इस परम्परा का अनुसरण भी पिछले कृष्ण भक्तों ने किया। नागरीदास इश्क का प्याला पी-पीकर झूमा करते थे। कृष्ण की मधुर मूर्ति ने कुछ आजाद सूफी फकीरों को भी आकर्षित किया। नजीन अकबराबादी ने खड़ी बोली के अपने बहुत से पद्यों में श्री कृष्ण का स्मरण प्रेमालंबन के रूप में किया है।

निर्गुण शाखा के कबीर दादू आदि सन्तों की परम्परा में ज्ञान का जो थोड़ा बहुत अवयव है वह भारतीय वेदान्त का है; पर प्रेम तत्व बिलकुल सूफियों का है। इन में से दादू, दरिया साहब आदि तो खालिस सूफी ही जान पड़ते हैं। कबीर में माधुर्य भाव जगह जगह पाया जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि भावात्मक रहस्यवाद का प्रभाव हमारे कबीर परम्परा सन्त कवियों तथा कृष्ण भक्ति शाखा के भक्तिमार्गी वैष्णव कवियों दोनों पर था। इसके साथ-साथ मुसलमानों की सूफी धारा भी देश में प्रवाहित हो रही थी जिसकी विचारधाराओं के मूल में भी हमें इसका आभास मिलता है।

इसी क्रम में श्री यज्ञदत्त शर्मा जी ने अपने ग्रंथ 'जायसी साहित्य और सिद्धान्त' में लिखा है—"साधनात्मक रहस्यवाद का सम्बन्ध ज्ञान निश्रित हठयोगी भावना और ब्रह्म की कल्पना से है। हठयोग, तन्त्र, रसायन इत्यादि की बातें भी साधारण मस्तिष्क के लिये रहस्य की बातें हैं। साधक अपनी साधना के चमत्कार से कुछ विशेष बातें प्रदर्शित करता है, तो वह जनता के लिए रहस्य का विषय है। इन सबका वर्णन और फिर कल्पनात्मक वर्णन, बस यही साधनात्मक रहस्यवाद का विषय है। कबीर ने भारतीय ज्ञान विचारावलि अर्थात् वेदांत और सूफी प्रेम का सम्मिश्रण करके जिस रहस्यवाद की सृष्टि की उसे हम अधिक बल के साथ साधनात्मक रहस्यवाद

ही कहेंगे । इंगला, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी और शरीर के भीतरी चक्रों की चर्चा इस रहस्यवादी धारा में मिलती है । इस विचारधारा में ईश्वर को केवल मन के अन्दर खोजने की भावना रहती है ।

भारतीत भक्त इस काल में ईश्वर की खोज अपने मन में नहीं करता था। भारत में अवतारवाद का प्रचार था और भक्त अपने उपास्य को दिल के एकांत कोने में प्रतिष्ठित न करके उसे बहिर्लोक में प्रतिष्ठित करता था । इसी में भगवान का लोकरंजक स्वरूप निहित था । भारत में भावात्मक रहस्यवाद तेजी से फैल रहा था । इसमें अद्वैत की झलक थी । वहाँ शायरी का तो प्रथम विषय ही यह बन गया । खलीफाओं की कड़ी धार्मिक शासन प्रणाली की कड़ियाँ सूफी फकीरों की मधुर वाणी ने छिन्न-भिन्न कर डालीं । जनता सूफियों के प्रेममय संगीत में वह निकली और प्राचीन रूढ़ियाँ आप से आप टूट कर गिर पड़ीं । जब सूफी मुसलमान भारत में आये तो उन्होंने भारत के वेदांती लोगों से भेंट की । दोनों का विचार-विमर्श हुआ और उसके फलस्वरूप वे सभी प्रभावित हुए । हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म दोनों अपनी विभिन्न शाखाओं में बह निकले । इन शाखाओं की मान्यताओं में कहीं मेल था और कहीं बेमेल । विचित्र बात जो सामने आई वह यह थी कि बहुत-सी मुसलमानी शाखाओं की अपनी मान्यतायें और हिन्दू धर्म की शाखाओं की अपनी मान्यतायें ऐसी मेल खा गईं जितना मेल उन शाखाओं का अपने धर्म की अन्य शाखाओं से नहीं था । इसके फलस्वरूप एक सामान्य भावना ने जन्म लिया । ये मान्यतायें अकबर के 'दीन-इलाही' मजहब की मान्यतायें न थीं, वरन् ईश्वर भक्तों की भावनायें थीं, जिनमें सरलता, मधुरता और कोमलता से सच्चाई को परखने की जिज्ञासा थी, यह भक्ति-भावना थी । इसी सामान्य विचारधारा का प्रभाव हमें कबीर, जायसी, मीरा इत्यादि की कविता में मिलता है । इस सामान्य विचारधारा में वेदांत और सूफीमत का सामंजस्य था, अद्वैती रहस्यवाद का मूल सिद्धान्त जहाँ से रस पाता है, खुराक पाता है—यह वह स्थान था ।"

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने रहस्यवाद के मूल उद्गम, उसके भारतीय

साहित्य तथा भक्ति में प्रवेश और विकास का सांकेतिक परिचय प्राप्त किया है। अब हम जायसी और कबीर के रहस्यवादी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

रहस्यवाद को लेकर जायसी और कबीर के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कोई कबीर को सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी ठहराता है तो कोई जायसी को रहस्यवाद का कुशल नायक मानकर उसके काव्य-सौंदर्य में अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। अधिक नहीं, हम यहाँ दो-तीन विद्वानों के उद्धरण दे रहे हैं जिनसे उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जायगा।

(१) डा० श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ ७५।

(पंचम संस्करण)—"रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों (जायसी आदि) का रहस्यवाद तो उनके प्रबन्ध के बीच-बीच में बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबन्ध से अलग उसका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है।"

(२) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ १६४। (पंचम संस्करण)—"कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है। वे सूफियों की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप-माधुर्य्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के श्रृङ्गार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।"

(३) डाक्टर चन्द्रावली पाण्डेय—"कबीर का रहस्यवाद प्रायः शुष्क और नीरस है, पर जायसी आदि का ऐसा नहीं है।"

इन विद्वानों के मतों को देखने से ऐसा लगता है कि ये अपने-अपने प्रिय कवि को लेकर साहित्य-न्यायालय में वकालत कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि

उनका दृष्टिकोण निष्पक्ष और सर्वांगीण नहीं। इन मतों में एकांगिता स्पष्ट परिलक्षित है।

इतना तो सभी जानते हैं कि साधना के क्षेत्र में कबीर और जायसी दोनों साधनात्मक रहस्यवाद को (जिसमें योग, तंत्र, रसायन, आदि का समावेश होता है) मानते हैं। अन्तर केवल भावना के क्षेत्र में है। कबीर प्रकृति को मिथ्या मानते हैं, इस नाते उनके यहाँ से प्रकृति तिरस्कृत है। परंतु जायसी के यहाँ 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' होने के कारण प्रकृति परमात्मा की झलक का साधन बन गई है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि कबीर में आत्मा और परमात्मा का सीधा सम्बन्ध है, जबकि जायसी में प्रकृति परमात्मा के सौन्दर्य का प्रकाश होने के कारण स्वयं परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। कबीर में ज्ञान प्रेम पर विजयी हुआ है, परन्तु जायसी में प्रेम ने ज्ञान पर विजय प्राप्त की है। इस प्रकार एक ही लक्ष्य तक पहुँचने वाले इन दो साधकों की भावनाओं में पर्याप्त भेद हो गया है। वैसे जहाँ दोनों में प्रेम की तन्मयता की अभिव्यक्ति है वहाँ उनकी उक्तियों को देखकर ऐसा लगता है कि दोनों में कोई भेद है ही नहीं। समानता के लिए पहले हम विरह के उदाहरण लेंगे।

हाड़ भये सब किंगरी, नसें भईं सब ताँति।
रोंव-रोंव ते धुनि उठे, कहौं विथा केहि भाँति॥

—जायसी

सब रग तंत रवाब तन, विरह बजावै नित्त।
और न कोई सुन सकै, कै साईं के चित्त॥

—कबीर

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव॥

—जायसी

यह तन जारौं मसि करौं, ज्यो धूआं जाइ सरग्ग।
मति वे राम दया करैं, बरसि बुझावैं अग्ग॥

—कबीर

करि सिंगार तापर का जाऊँ, ओहि देखहु ठावँहि ठाऊँ ॥
जो जिउ मैं तो उहै पियारा, तन मन सों गहि होय निनारा ॥

—जायसी

सोवो तो सुपने मिले, जागो तो मन मांहि ।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नांहि ॥

—कबीर

कुहुकि-कुहुकि जस कोयल रोई । रकत कै आंसु घुंघुचि बन बोई ।
जँह-जँह ठाढ़ होंहि बनवासी । तँह-तँह होंहि घुँघुचि कै रासी ॥
बुँद-बुँद मँह जानहु जीऊ । गुँजा गुँजि करै पिउ-पीऊ ॥

—जायसी

नैंना नीझर लाइया, रहत वसै निसि जाम ।
पपिहा ज्यों पिउ-पिउ करों, कबरे मिलोगे राम ॥

—कबीर

अब मिलन के कुछ उदाहरण लीजिए:—

देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥
गा अँधियार रैन मसि छूटी । भा भिनसार किरन रवि फूटी ॥
अस्ति-अस्सि सब साथी बोले । अंध जो अहै नैन निज खोले ॥

—जायसी

दुलहिन गावहु मंगलचार ।
हमारे घर आये राजा राम भरतार ॥
तन रत कर मैं मन रत करिहौं, पाँचो तत्त बराती ।
रामदेव मेरे पाहुन आये, मैं जोबन मदमाती ॥
सरिर सरोवर वेंदी करिहौं, ब्रह्मा वेद उचारा ।
रामदेव सँग भाँवरि लैहौं, धनि-धनि भाग हमारा ॥
सुर तेंतीसो कौतुक आये, मुनिवर सहस अठासी ।
कह कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरुष एक अविनासी ॥

—कबीर

तात्पर्य यह है कि जहाँ मिलन और तीव्रता का वर्णन है, जहाँ शुद्ध आध्यात्मिक धरातल पर आत्मा के शोक और हर्ष की व्यंजना है, वहाँ कबीर और जायसी में कोई भेद नहीं। सूफी सिद्धान्तों के परिणाम स्वरूप अभिव्यक्त होने वाली इस समान अनुभूति में कोई एक दूसरे से पीछे नहीं है। कहीं-कहीं तो यह पता लगाना भी मुश्किल हो जाता है कि प्रेम विरह और मिलन की ये सामान्य भावनायें जायसी द्वारा पहले लिखी गईं या इन दोनों की प्रेरणा का स्रोत कोई तीसरा ही है (डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश')।

कबीर शंकर के मायावाद से प्रभावित हैं। उनकी दृष्टि में आत्मा और परमात्मा वस्तुतः एक है। माया के कारण ही दोनों में भिन्नता है। यदि माया का पर्दा बीच से हट जाय तो जीव और ब्रह्म पुनः मूलाकार में आ जाँय। दोनों भागों का एकीकरण हो जाय। देखिए इसी तथ्य को कबीर ने अपने काव्य में कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है :—

जल में कुंभ, कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ कथौ गियानी॥

कबीर को माया से बड़ी चिढ़ है। उनके विचार में वह पिशाचिनी है। वही जीव को सांसारिक आकर्षणों में बाँधे रहती है। इसी से वे कहते हैं—

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोले, बोलै माधुरी बानी।

अथवा

इक डाइन मोरे हिय बसी, निस दिन मोरे हिय को डसी।
या डाइन के लरिका पाँच, निस दिन मोंहि नचावैं नाच॥

(पाँचों लड़कों से तात्पर्य-कामें, क्रोध, मोह, मद, लोभ से है) वस्तुतः जीव भगवान से मिलने के लिए अत्यंत आतुर है परंतु मार्ग में सांसारिक माया-मोह बाधक हैं।

मैं जानू हरि सो मिलूँ, मो मन मोरी आस।
हरि बिच डारे अन्तरा, माया बड़ी पिशाच॥

इस माया को दूर भगाने का एक मात्र साधन वे ज्ञान को बताते हैं। उनका विश्वास है कि इससे मुक्ति पाते ही आत्मा और परमात्मा एक तत्व हो जायेंगे—

"जैसे जलहिं तरंग तरंगिनि, ऐसेहि हम दिखरावेंगे।"

जायसी पूर्णतः सूफी हैं। सूफी मत में भी यद्यपि बंदे और खुदा का एकीकरण हो सकता है, पर उसमें माया को कोई स्थान नहीं। जिस प्रकार अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए एक यात्री को मार्ग में कुछ स्थल पार करने पड़ते हैं, उसी प्रकार सूफी मत में आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र होती है और परमात्मा से मिलने के पूर्व अपनी साधना के मार्ग में उसे चार दशायें पार करनी पड़ती हैं—

१. शरीअत, २. तरीकत, ३. हकीकत, ४. मारिफत। इस 'मारिफत' में जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है। वहाँ आत्मा स्वयं **'फना'** (स्वाधीनता) होकर 'बका' (तद्रूपावस्था) के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का अनुभव होने लगता है और **'अनलहक'** सार्थक हो जाता है। अपने अनुराग में चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार करके ईश्वर से उसी प्रकार मिलती है जैसे शराब और पानी। जायसी ने **'चार बसेरे जो चढै, सत से उतरै पार'** कहकर इसी सूफी साधना की ओर संकेत किया है।

कबीर ने जिसे माया कहा है, सूफी कवियों की साधना का वह प्रमुख माध्यम है। जायसी की दृष्टि समष्टि मूलक है। सम्पूर्ण विश्व में वे उसी अनंत अनादि का व्यापक रूप देखते हैं। इस नाते विश्व की कोई भी वस्तु अनादरणीय व त्याज्य नहीं। देखिए उस परोक्ष ज्योति और सौन्दर्य सत्ता की ओर कैसा हृदय ग्राही मधुर संकेत है—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ जहँ विहँसि सुभावहिं हँसी। तँह तँह छिटकि जोति परगसी।

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥

कबीरदास को बाहर जगत में भगवान की रूप कला नहीं दिखाई देती। वे सिद्धों और योगियों के अनुकरण पर ईश्वर को केवल अन्तस में बताते हैं—

मोको कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलाश में॥

इसी भावना को जायसी ने भी व्यक्त किया है—

पिउ हिरदय महँ, भेंट न होई।
कोरे मिलाव कहौं केहि रोई॥

उस अखंड ज्योति का आभास पाकर जायसी का हृदय किस तरह जगमगा उठता है इसे निम्न पंक्तियों में देखिए—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा।
गा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि फूटी॥
कँवल विगस तस विगसी देही। भँवर दसन होइ कै रस लेही॥

अन्तर्जगत और बाह्य जगत का कैसा अपूर्व सामंजस्य है, कैसी बिंब-प्रतिबिम्ब स्थिति है।

उस प्रेममय के प्रेम से संसृति-प्रकृति किस प्रकार ओतप्रोत है इसके लिए दूसरा उदाहरण देखिए—

उन बानन अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जांहि न गने। ते सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देंहि सब साखी॥
रोंव-रोंव मानुष तन ठाढ़े। सूतहि सूत भेद अस काढ़े।
बरुन चाप अस ओपहँ। वेधे रन-वन ढाँख।
सौजहिं तन सब रोवां, पंखिहि तन सब पाँख॥

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर दोनों एक थे न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है—

धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन बिछोहू॥

समस्त प्रकृति इस विरह-वियोग से पीड़ित है—

सूरज बूड़ि उठा होइ राता। औ मजीठ टेसू बन राता॥
भा बसंत राती बनसपती। औ राते सब योगी यती॥
भूमि जो भीजि भयऊ सब गेरू। औ राते सब पंख-पखेरू॥

प्रकृति के महाभूत उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं—

पवन जाइ तहँ पहुँचे चहा। मारा तैस लोटि भुंइ रहा॥
अगिनि उठी जरि बुझी नियाना। धुँआ उठा उठि बीच विलाना॥
पानि उठा उठि जाइ न छूआ। बहुत रोइ आइ भुंइ छूआ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के माध्यम से जायसी अपना मंतव्य कितने सरस, हृदयग्राही तथा प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त करने में सफल हो सके हैं। प्रकृति को अपने घर से निर्वासित कर देने के नाते कबीर इतने सरस, मनमोहक और प्रभावशाली न बन सके। उनमें नीरसता आ गई।

कबीर का रहस्यवाद हिन्दुओं के अद्वैतवाद और कुछ सीमा तक मुसलमानों के सूफीमत पर आश्रित है। अद्वैतवाद से माया और चिन्तन तथा सूफीमत से प्रेम लेकर उन्होंने अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है।

उस विराट की महा अनुभूति प्राप्त करने के लिए आत्मा को प्रेममय होना पड़ता है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में, वह सांसारिकता का बहिष्कार कर दिव्य और अलौकिक वातावरण में उठती है। वह उस ईश्वर के निकट पहुँच जाती है जो इस विश्व का निर्माण कर्ता है। उस ईश्वर का नाम है सत्पुरुष'। सत्पुरुष के संसर्ग में वह आत्मा उस दैवी शक्ति के कारण हत बुद्धि सी हो जाती है। वह समझ ही नहीं सकती कि परमात्मा क्या है, कैसा है। वह अवाक रह जाती है। वह ईश्वरीय शक्ति अनुभव करती है, पर उसे प्रकट नहीं कर सकती। इसीलिये गूंगे के गुड़ के समान वह स्वयं तो परमात्मानुभव करती है, पर प्रकट में कुछ भी नहीं कह सकती। कुछ समय के वाद जब उसमें कुछ बुद्धि आती है और कुछ जबान खुलती है तो वह एकदम से पुकार उठती है—

कहंहि कबीर पुकारि के, अदभुत कहिए ताहि।

उस समय आत्मा में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वह परमात्मा की ज्योति का निरुपण करने में समर्थ हो सके। वह आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती रहती है। अन्त में वह बड़ी कठिनता से कहती है—

वरनौं कौन रूप औ रेखा, दोसर कौन आहि जो देखा।
ओंकार आदि, नहिं वेदा, ताकर कहहु कौन कुल भेदा॥

× × ×

शून्य सहज स्मृति से प्रकट भई इक जोति।
ता पुरुष की बलिहारी, निरालंब जे होति॥

रमैनी—६

यहाँ आत्मा सत्पुरुष का रूप देखकर मुग्ध हो जाती है। धीरे-धीरे आत्मा, परमात्मा की ज्योति में लीन होकर विश्व की विशालता का अनुभव करती है और उस समय वह आनंदातिरेक से परमात्मा के गुण वर्णन करने लगती है—

जेहि कारण शिव अजहूँ वियोगी।
अंग विभूति लाइ भे जोगी॥
शेख सहस मुख पार न पावैं।
सो अब खसम सहित समुझावैं॥

इतना सब कहने पर अन्त में यही शेष रह जाती है—

तहिया गुप्त स्थल नहिं काया।
ताके शोक न ताके माया॥
कमल पत्र तरंग इक माहीं।
संग ही रहै लिप्त पै नाहीं॥
आस ओस अंडन में रहई।
अगनित अंड न कोई कहई।
निराधार आधार लै जानी।
राम नाम लै उचरै बानी॥

× × ×

मर्म क बांधि लई जगत, कोई न करै विचार ।।
हरि की शक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुश्रा संसार ।।

इसी प्रकार संसार के लोगों को उपदेश देती हुई आत्मा कहती है—

जिन यह चित्र बनाइया, सांचो सो सूरतिहार ।
कहहिं कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहि लेहिं विचार ।।

इस प्रेम की स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि आत्मा स्वयं परमात्मा की स्त्री बनकर उसका एक भाग हो जाती है। यही इस प्रेम की उत्कृष्ट स्थिति है।

एक अंड अंकार ते, सब जग भया पसार ।
कहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भर्तार ।।
—रमैनी २७ ।।

और अन्त में आत्मा कहती है—

हरि मोर पिउ साईं, हरि मोर पीव ।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव ।।
हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया ।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ।। शब्द ११७ ।।

यथा—

जो पै पिय के मन नहिं भाये ।
तौ का परोसिन के दुलराये ।।
का चूरा पाइल झमकाये ।
कहा भयौ बिछुआ ठमकाये ।।
का काजल सेंदुर कै दीये ।
सोलह सिंगार कहा भयौ कीये ।।
अंजन मंजन करै ठगौरी ।
का पचि मरै निगौड़ी बौरी ।।
जो पै पतिब्रता है नारी ।
कैसोहि रहे सो पियहि पियारी ।।

तन मन जोबन सौंपि सरीरा।
ताहि सुहागिन कहैं कबीरा॥

इस रहस्यवाद की चरम सीमा उस समय पहुँच जाती है जब आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा में संबद्ध हो जाती है, दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। यहाँ आत्मा अपनी आकाँक्षा पूर्ण कर लेती है और फिर आत्मा परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है। कबीर उस स्थिति का अनुभव करते हुए कहते हैं।

हरि मरिहै तो हमहूँ मरिहैं।
हरि न मरै हम काहे को मरिहैं।

आत्मा और परमात्मा में इस प्रकार मिलन हो जाता है कि एक के विनाश से दूसरे का विनाश और एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व सार्थक होता है। इस चरमसीमा का पाना ही कबीर के उपदेश का तत्व था। इस तरह रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति हम कबीर की कविता में पाते हैं।

कबीर के रहस्यवाद में ज्ञान अधिक है प्रेम तथा विरह की अभिव्यक्ति कम। इसीसे उनमें नीरसता भी है। वे सर्वत्र पाठक का हृदय रस मग्न नहीं कर पाते। उनकी वाणी अटपटी और जनसाधारण की समझ से परे है। इसी कारण उनकी कविता का प्रभाव सर्वसाधारण पर अच्छा नहीं पड़ा। हाँ इसमें अवश्य कोई सन्देह नहीं कि कबीर की कविता भारतीय परम्परा के अनुसार है। शंकर के मायावाद से तो वे प्रभावित ही हैं। विरह के पदों में स्त्री रूप आत्मा, पुरुष रूप परमात्मा से मिलने को आकुल है। यह भारतीय परम्परा के अनुकूल है। गुरु की महत्ता कबीर ने बड़े जोरदार शब्दों में स्वीकार की है। वस्तुत: कबीर में मुक्त कण्ठ से मुक्त आत्मा को मुक्त ब्रह्म से मिलाने का प्रयत्न है। कबीर ने मसि कागद तो छुआ नहीं था और न कलम ही हाथ गही थी। उनका सारा ज्ञान सुना सुनाया और सद्संगति द्वारा अर्जित था। यही कारण है कि उनकी कविता का बाह्य पक्ष अन्तरिक पक्ष की अपेक्षा अधिक निर्बल है। भाषा तो उनकी खिचड़ी और असाहित्यिक है ही। छंदों की योजना भी कहीं ठीक नहीं है। उनकी कविता पर अनेक लोगों का अनेक प्रकार का प्रभाव है।

जायसी के रहस्यवाद में रमणीयता और सौन्दर्य के साथ-साथ रसमयता है। उच्चकोटि की भावुकता के प्रदर्शन में जायसी पूर्ण सफल हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि उन्होंने लौकिक कथा के माध्यम से पारलौकिक बातों का निरूपण किया है। भौतिक सौन्दर्य में आध्यात्मिक सौन्दर्य की झाँकी देखी है। जायसी के रहस्यवाद में प्रेम की पीड़ा है, तड़पन है, मिलन है और है एकात्मकता।

किन्तु साधनात्मक रहस्यवाद के वर्णनों में जायसी भी कबीर की तरह ही नीरस हैं। एक उदाहरण लीजिए :—

नौ पौरी तेहि गढ़ मँझियारा। औ तह फिरहि पाँच कोतवारा।।
दसंव दुवार गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाका।।
भेदै जाई सोइ वह घाटी। जो लहि भेद चढ़ै ओहि घाटी।।

इसमें नाथ पंथियों का प्रभाव है। इसे झूठा रहस्यवाद भी कहा जा सकता है।

चित्तौड़ गढ़ के वर्णन में कवि ने इसी प्रकार शरीर स्थित सात खण्ड और नौ भँवरी का वर्णन किया है :—

सातौं भँवरी कनक केवारा।
सातौं पर बाजहि घरियारा।।
सात रंग तिन सातौं पँवरी।
तब तिन्ह चढ़ै फिरै नव भँवरी।।

इसी प्रकार की दृढ़ योग की साधना पद्धति और उसकी सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग पद्मावत में स्थान-स्थान पर हुआ है। राजा रत्नसेन तो एक नाथपंथी योगी के ही रूप में चित्रित हुआ है।
यथा :—

कहाँ पिंगला सुखमन नारी। सूनि समाधि लागि गई तारी।।
बूंद समुन्द्र जैसे होई मेरा। गा हेराई अस मिलै न हेरा।।

⊠ ⊠ × ×

जस धँस लीन्ह समुद मर जीया। उघरैं नैन रै जबस दीया ॥
खोजि लीन्ह सो सरग दुवारा। बज्र जो मूँदे जाई उघारा ॥

भावात्मक वर्णनों में जायसी ने कमाल कर दिया है। उनकी दृष्टि व्यापक है। इसी कारण उनकी अनुभूति भी व्यापकता लिए हुए है। सम्पूर्ण संसार उनकी संवेदना में डूबा हुआ है। इसीलिए जीवात्मा स्वरूप रत्नसेन ब्रह्मस्वरूप पद्मावती से मिलने के लिए अकेला नहीं जाता पूरे समाज के साथ जाता है। दूसरी ओर नागमती के वियोग वर्णन में भी हम इसी व्यापकता को पाते हैं। वह पशु पक्षी तथा संम्पूर्ण प्रवृति में अपनी वेदना को फूंक देना चाहती है।

जायसी की यही विशेषता उन्हें अधिकाधिक सरस और संवेदनशील बना देती है। उनके निकट सबकी सहानुभूति रहती है। प्रकृति के कण-कण में अनन्त ज्योतिमय का प्रकाश देखना ही जायसी के रहस्यवाद में मधुरता भर देता है। लोक को साथ रखने से उनकी सरसता सुरक्षित है। कबीर ने प्रकृति को माया कहकर ठुकरा दिया है। इसी कारण वे जायसी की भाँति सरस न बन पाये।

कबीर और जायसी के रहस्यवाद में अन्तर होने का कारण एक और भी है—वह यह कि कबीर शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित थे और जायसी सूफी फकीरों की प्रेम साधना से। ज्ञान और प्रेम में अन्तर स्वाभाभिक ही है, यद्यपि दोनों एक ही लक्ष्य के गामी हैं। गुरु की महत्ता दोनों स्वीकार करते हैं। जायसी का तो पूर्ण विश्वास है कि बिना गुरु के निर्गुण कौन पा सकता है।

दोनों ने गुरु को अत्यधिक महत्व देते हुए उसे साधना मार्ग का प्रदर्शक बताया है। वह साधक के जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सद्ज्ञान द्वारा निवारण करता है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँव।
बलिहारी वा गुरु की जिन गोविन्द दियो बताय ॥

—कबीर

गुरु विरह चिनगी जो मेला ।
जो सुलगाई लेइ सो चेला ॥

—जायसी

गुरु के प्रयत्नों से आत्मा और परमात्मा उसी तरह मिलते हैं जैसे शराब और पानी ।

वस्तुत: भावुकता ने ही जायसी को जनता के अधिक निकट कर दिया । जायसी फारसी और भारती दोनों प्रेम पद्धतियों से प्रभावित हैं । किन्तु कबीर विशुद्ध भारतीय पद्धति से ही, कहीं-कहीं अवश्य सूफियों का प्रभाव स्पष्ट झलक आया है । पर यह निश्चित हैं कि कबीर की रुझान उधर स्थायी रूप से नहीं थी इस प्रकार के कुछ उदाहरण लीजिए :—

हरि रस पीया जानिए कबहूँ न जाय खुमार ।
मैमन्ता घूमत फिरै नाहीं तन की सार ॥
लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गइ लाल ॥

अन्त में डा० त्रिगुणायत के शब्दों में हम कहेंगे कि जायसी और कबीर दोनों हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं एक का रहस्यवाद भारतीय भक्ति मार्ग और श्रुति ग्रन्थ, सिद्धमद, और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित होने के कारण आध्यात्मिक एकान्तिक व्यष्टिमूलक सजीव और वर्णनात्मक है; दूसरे का सूफी साधाना भावना से अनुप्राणित होने के कारण अत्यन्त सरस संकेतात्मक और समष्टिमूलक है । वह प्रेमाख्यान के सहारे अभिव्यक्त होने के नाते मधुर और नाटकीय भी हैं ।

आइये मानवता के एकनिष्ठ पुजारी महाकवि कबीर के निम्न सुन्दर और आध्यात्मिक पद के साथ इस प्रसंग को समाप्त करें ।

जोगिया की नगरी बसै मति कोई ।
जोरै बसे सो जोगिया होई ॥
वही जोगिया के उलटा ज्ञाना ।
कारा चोला नाहीं माना ॥

प्रगट सो कन्था गुप्ता धारी।
तामें मूल सजीवन भारी।।
वा जोगिया की युक्ति जो बूझै।
राम रमै से त्रिभुवन सूझै।।
अमृत बेली, छन-छन पीवै।
कहैं कबीर सो जुग-जुग जीवै।।

प्रश्न २३—पद्मावत एक अन्योक्ति, सूफी काव्यों की विशेषताएँ और सूफी धर्म के तत्व पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

जायसी ने पद्मावत के अन्त में लिखा है:—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुध पदमिनि चीन्हा।।
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनियाँ-धंधा। बाँधा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।

अर्थात् तन रूपी चित्तौड़ का मन रूपी रत्नसेन राजा है। हृदय सिंघल है और पद्मिनी ही प्रज्ञा अथवा ब्रह्म है जिसे प्राप्त करने के लिए सुआ रूपी गुरु की आवश्यकता पड़ती है। बिना गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। नागमती रूपी दुनियाँ धंधा मनुष्य को विविध प्रकार से अपने में बांधे रहती है, जो उसे समझ लेता है उसे मुक्ति मिलती है। साधना के मार्ग में अलाउद्दीन रूपी माया और राघवचेतन रूपी शैतान सबसे बड़े अवरोध हैं। इन्हें हटाकर ही चरम सिद्धि की प्राप्ति की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण कथा एक रूपक (अन्योक्ति) बन जाती है। कुछ विद्वानों का यह कथन है कि उपर्युक्त अंश जायसी कृत नहीं है और जब यह अंश जायसी कृत नहीं है तो फिर सारी कथा को निश्चित रूप से अन्योक्ति ही मान बैठना काव्य और कथा के साथ जबर्दस्ती करना है। इन

विद्वानों को ग्रंथ में आये अनेक पात्र अपने प्रतीकात्मक अर्थ की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ नहीं दिखाई देते। यहाँ तक कि 'पद्मावती' और 'रत्नसेन' के भी प्रतीकों का ठीक-ठीक निर्वाह सर्वत्र नहीं हो पाया है। इन लोगों का यह भी कहना है कि जायसी ने एक सामान्य कथा को काव्यमयी भाषा में प्रस्तुत किया है। उस समय उनका ऐसा अन्योक्ति पूर्ण उद्देश्य नहीं था। भाव और कल्पना के धनी जायसी की लेखनी से कुछ ऐसे मर्म स्पर्शी स्थल अंकित हो गए हैं कि हमें वहाँ अलौकिक सत्ता का आभास होने लगता है। परन्तु ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं और इन्हीं स्थलों के आधार पर सम्पूर्ण 'पद्मावत' को एक अन्योक्ति नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त मत के समर्थक विद्वानों के विरोध में मुझे यह कहना है कि जिस आधार पर उन्होंने पद्मावत के उक्त अंश को प्रक्षिप्त माना है वह कोई विशेष प्रामाणिक आधार नहीं कहा जा सकता। एक गुट का समर्थन पा लेने मात्र से उक्त अंश को मैं प्रक्षिप्त अंश मानने के लिए तैयार नहीं। जायसी साहित्य की अभी अधिकाधिक खोज होनी चाहिए और प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर ही विद्वानों को कोई ऐसा सर्वमान्य निर्णय करना चाहिए। अभी तक जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। उपर्युक्त अंश कितनी पाण्डुलिपियों में है और कितनी में नहीं—यह बात कोई अधिक महत्व नहीं रखती। मेरा तो निवेदन इतना ही है कि काव्य के मूल प्रेरणा-स्रोत को देखा जाय। पद्मावत के प्रणेता को पद्मावत लिखने की प्रेरणा किस बिन्दु से मिली है? पता लगाने पर संभवतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि जायसी का हृदय एक अलौकिक प्रणय की पीर से भरा होने के नाते ही पद्मावत ऐसे महाकाव्य को वाणी दे सका है। 'पद्मावत' लिखने के मूल में पद्मावती और रत्नसेन की सामान्य प्रेम-कथा की भावना का प्राधान्य नहीं दिखाई देता है। अलौकिक प्रेम से अभिभूत होने के कारण ही ऐसे उत्कृष्ट भाव और कल्पना का सृजन कवि द्वारा हो सकता है; और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जायसी एक सूफी भक्त हैं जिसमें शायद दो मत नहीं। सूफी भक्तों का मूल उद्देश्य क्या रहा है? इसे विद्वान भली-भाँति जानते हैं। जायसी अपने मूल लक्ष्य को

भूल जाते यह मैं कैसे मान लूं ? पद्मावत में रूपक (अन्योक्ति) का सांगोंपांग निर्वाह न होने का कारण कवि के शास्त्रीय अध्ययन का अभाव कहा जा सकता है। कवि के जीवन वृत्त वाले प्रश्न में मैं इस पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ। विधिवत् अध्ययन के अभाव में कवि अपने चरित्रों का संतुलन नहीं रख पाया है। एक प्रमुख कारण यह भी है कि इस दिशा में उसका निर्देशक करने वाला कोई नहीं था। केवल अनुभव-ज्ञान के आधार पर इतने विशाल काव्य का प्रणयन करते समय यदि कवि से कहीं-कहीं असंतुलन हो गया है तो इस आधार पर हम उसके मूल लक्ष्य पर आक्षेप नहीं कर सकते। इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा उदाहरण लीजिए—किसी युवती से यदि एक वैज्ञानिक और एक साहित्यकार दोनों प्रेम करें और कोई ऐसा अवसर आये कि उनके प्रेम की माप की जाने लगे तो शायद साहित्यकार को अधिक अंक मिल जायें क्योंकि वह वाणी का धनी है और बेचारे वैज्ञानिक के पास अगाध भावों से भरा, पवित्र प्रेम से परिप्लावित किन्तु मूक-हृदय-मात्र है। जायसी का भी अध्ययन यदि शास्त्रीय ढंग पर हुआ होता तो शायद अपनी इस असावधानी को वे बड़ी चतुराई से छिपा ले गए होते, परन्तु अनाथ जायसी के भाग्य में तो विद्यालय का मुँह देखना भी नहीं बदा था। विश्व की खुली पाठशाला में अनुभव का पाठ, पढ़-पढ़ कर वे विद्वान बने थे और प्रकृति के कण-कण में परम प्रियतम की सत्ता का आभास पाकर महाकवि।

पद्मावत में सूफीमत के साथ-साथ हठयोग आदि का भी पर्याप्त समावेश है। कुछ उदाहरण देखिए :—

चौदह भुवन जे तर-उपराहीं।
ते सब मानुष के घट माँही॥

× × ×

नौ पौरी वाकी नौ खण्डा।
नवौं जो चढ़ै जाइ वरभँगा॥

× × ×

फिरहि पाँच कोतवार सुपौरी।
काँपे पाँव चढ़त वह पौरी ।।
× × ×
गढ़ तस बाँक जैसि तोरि क़ाया,
पुरुष देख ओही कै छाया।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हें,
जेइ पावा ते आपहिं चीन्हें।
नौ पौरी ते गढ़ मँझिधारा,
औ तहें फिरहि पाँव कोतवारा।
दसवँ दुआर गुपुत इक ताका,
अगम चढ़ाव बाट सुठि बांका।
भेदे जाइ कोइ वह घाटी,
जो लह भेद चढ़े होइ चांटी।
गढ़तर कुँड सुरंग तेहि भाँवा,
तँह वह पँथ, कहौं तोहि पाँवा।
दसँव दुआर ताल कै लेखा,
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।

इन पंक्तियों में हठयोगी साधना का चौदहों लोक शरीर के नवद्वार पर (नवपौरी) कुण्डलिनी शक्ति की नवस्थितियों (नवखंड के ब्रह्म रंध्र) (दशवाँ दुआर), पंच-प्राण (पाँच कोतवार), आतमबोध (आपुहि चीन्हें), साधना का दुर्गम मार्ग (अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँका), कुण्डलिनी मार्ग (घाटी) पिपीलिका मार्ग (चढ़े होइ चाँटी), अग्नि चक्र (गढ़तर कुंड), अंतर्मुखी दृष्टि (उलटि दिस्टि) का स्पष्ट संकेत है।

सूफीमत के अनुसार साधना मार्ग की चारों अवस्थाओं (शरीयत, तरीकत, मारिफत, और हकीकत) का स्पष्ट विवेचन हमें पद्मावत में मिल जाता है।

नयौ खंड नव पौरी, औ तँह वज्र केवार।
चारि वसेरे जो चढ़ै, सत सौं उतरै पार ।।

यहाँ चारि बसेरे से चारों अवस्थाओं तथा सत से सात अवस्थाओं की ओर कवि का संकेत है ।

सातों मुकामात रत्नसेन रूपी साधक के मार्ग में आये हैं और साधनामार्ग की समस्त कठिनाइयों को पार करके रत्नसेन ने पद्मावती को प्राप्त किया है ।

'पद्मावत' की रूपक कथा को और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए मैं यहाँ डा० रामरतन भटनागर द्वारा किए गए विवेचन को प्रस्तुत करने का, लोभ संवरण नहीं कर सकता ।

इसमें चित्तौड़ तन है, रत्नसेन मन है । चित्तौड़ रूपी तन में स्थित मन साधारण रूप से लौकिक विषय वासना में लिपटा रहता है । रत्नसेन केवल तन में स्थित है, उसकी वृत्तियाँ कायिक हैं । वह दुनियाँ-धन्धे (नागमती) में लिप्त है । परन्तु ईश्वर की अनुकम्पा से एक दिन उसे नागमती से भी बड़े सौंदर्य का पता चल जाता है । इस दुनियाँ के धंधे से भी बड़ा धंधा मनुष्य के लिए है, वह जान लेता है । उस लक्ष्य के लिये उसके हृदय में आकुलता उत्पन्न हो जाती है परन्तु उस लक्ष्य तक उसका पथप्रदर्शक कौन बने । पथप्रदर्शक बनता है हीरामन तोता (सुआ) वह सूफी साधना के 'गुरू' का प्रतीक है । अनेक बाधाओं को पारकर के गुरू के दिखाये पथ पर बढ़ता हुआ साधक रत्नसेन लक्ष्य की प्राप्ति करता है । परन्तु लक्ष्य कहीं बाहर नहीं है । इसी हृदय (सिंहल) के भीतर अवस्थित सहज सौंदर्य बुद्धि (Intution) ही ही साधक का लक्ष्य है । पहले इस सहज बुद्धि (पद्मिनी) को ही पाना होता है । सूफी परिभाषा में इस संकेत-कोष को इस प्रकार भी रख सकते हैं :—

चित्तौड़ = तन = }
(राजा) रत्नसेन = मन = } सालिक, आबिद की 'अक्ल'

(सुआ) हीरामन = गुरू = मुरशिद

सिंहलद्वीप = हृदय = कल्ब (रूह)

पद्मिनी = सहजबुद्धि = मुआरिफ़ (प्रज्ञा)

नागमती = दुनियाँ-धंधा = नफ़्स

सालिक (साधक) के मार्ग में दो बाधायें हैं, अक्ल (मन) और नफ़्स (नागमती)। वह नफ़्स (नागमती) द्वारा अपने चित्तौड़ में ही लीन रहता है। परन्तु यदि उसे मुरशिद-कामिल (सुआ) मिल जाता है तो वह 'नफ़्स' से छुटकारा पा जाता है और 'कल्ब' या 'रूह' में स्थित 'मुआरिफ' (सहज-बुद्धि, प्रज्ञा) की प्राप्ति की ओर बढ़ता है। नागमती (नफ़्स) भी सुन्दर और मोहक है और पद्मिनी (मुआरिफ़) भी सुन्दर है अतः जायसी ने दोनों को चित्रित किया है। नफ़्स मुरशिद में विश्वास नहीं करती, इसी से नागमती सुए को मार डालना चाहती है। परन्तु एक बार 'मुआरिफ़' का सौन्दर्य साधक (सालिक) ने जान लिया तो वह मुड़ नहीं सकता। वह लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य करेगा। कथा में यदि नागमती की अवतारणा न होती तो नफ़्स की मोहकता और उसके बंधन का चित्रण भी नहीं हो पाता।

परन्तु फिर प्रश्न उठता है, नागमती के विरह और पद्मिनी की प्राप्ति पर नागमती और पद्मावती के रत्नसेन से साथ प्रसन्न रहने और कमलसेन और नागसेन पुत्रों के जन्म का क्या रहस्य है। नागमती का विरह केवल भारतीय साहित्य-परंपरा के कारण पद्मावत में स्थान पा रहा है। रूपक तो है ही। परन्तु जब विशिष्ट पात्र खड़े किए गए हैं तो कथा की आवश्यकता को पूरा करना होगा। 'षटऋतु वर्णन' के बिना कोई काव्य कैसे पूर्ण कहा जा सकता था ? इसी से 'नागमती के विरह' की योजना हुई। उसके पीछे किसी का संकेत ढूंढ़ना बुद्धि विलास ही होगा। हाँ सूफी साधना में विरह का बड़ा महत्व है। इससे नागमती के विरह-वर्णन में स्वतन्त्र रूप से जो प्रेम की पीर प्रकाशित हो गई है, वह तो सूफी परम्परा की चीज है ही। पद्मिनी की प्राप्ति से नागमती के साथ प्रसन्नता पूर्वक रहने का अर्थ केवल यही है कि मुआरिफ़ का उदय होने पर सालिक नफ्सपरस्ती से हट जाता है, उसकी इन्द्रियाँ ईश्वरोन्मुख हो जाती हैं। नफ़्स (नागमती) से भागने की उसे आवश्यकता नहीं होती। कमलसेन और नागसेन का जन्म केवल कथा को सुखद बनाने के लिए है। पद्मावती का पुत्र पद्मसेन या कमलसेन और नागमती का नागसेन है। इससे अधिक कोई रहस्य नहीं है।

उत्तरार्ध में नागमती (नफ़्स) का कोई महत्व नहीं रह जाता। वह पद्मावती (म्वारिफ़) की पोषक या सहगामिनी मात्र है। 'सुश्रा' और 'सिंहल' के प्रतीक भी समाप्त हो जाते हैं। कुछ नये प्रतीक आये हैं। राघव चेतन—शैतान) अलाउद्दीन सुलतान—माया। इन दो प्रतीकों को देकर उत्तर कथा की ओर से जायसी निश्चिन्त हो गए हैं और अर्थ खोलने के लिए पंडित-बुद्धि को चैलेन्ज देते हैं। साधक की नफ़्स—शुद्धि और प्रज्ञा (मुआरिफ) से उसका मेल शैतान को पसन्द नहीं। खुदा और बन्दे के बीच में शैतान है। मुआरिफ खुदा की ओर ले जाती है, अतः शैतान को यह विष लगता है। इसलिए वह बंदे और खुदा (रत्नसेन और पद्मावती) में विछोह डालना चाहता है। वह माया की शरण जता है। सूफी परिभाषा में राघवचेतन शैतान है और अलाउद्दीन—को जायसी ने 'माया' कहा है सूफी दार्शनिक चिंतन में माया को स्थान ही नहीं है। हमारे यहाँ 'माया' जीव-ब्रह्म के बीच का व्यवधान है। माया का अर्थ साँसारिकता भी है जो जीव-ब्रह्म के मिलन में बाधक होती है जो साधक को ऐन्द्रियता की ओर ले जाती है। इस्लाम में 'माया' का स्थान शैतान ने ले लिया है। अलाउद्दीन को 'माया' कहकर जायसी ने भारतीय दार्शनिक चिंतन के एक शब्द को अपना लिया; परन्तु विद्वानों के लिये समस्या खड़ी कर दी। अलाउद्दीन—माया ?

सालिक जब सहज-बुद्धि, प्रज्ञा या मुआरिफ को प्राप्त हो गया तो फिर शैतान और माया का क्या काम ? परंतु जायसी तो कथा की रक्षा करते हुए आगे बढ़ना चाहते थे। यदि वे ३७ वें खण्ड (पुत्रजन्म खण्ड) पर ही कहानी समाप्त कर देते तो प्रतीकों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। परन्तु अलाउद्दीन-पद्मिनी की अत्यंत प्रसिद्ध कथा को वे एक दम आँख की ओट नहीं कर सकते थे। जब वह उत्तरार्द्ध की सारी कथा लिख गये तो उन्हें विवश होकर उसके सूफी-अर्थ करने पड़े। इसी से नए प्रतीक आये। शैतान और (या) माया साधक के प्रज्ञा के आनंद में बाधा डालने के लिये सब कुछ करेगा यही तथ्य है। हो सकता है वह सफल भी हो जाय (जैसा पद्मावत में हुआ है।) परंतु यह किसी निश्चित तथ्य को उपस्थित नहीं करता। साधारण कथा को लेकर उस

पर आध्यात्म पक्ष का आरोप करने में जो कठिनाइयाँ होती हैं वह जायसी को भी हुई।

संक्षेप में मुझे यही कहना है कि **'तन चितउर मन राजा कीन्हा'** वाला अंश प्रक्षिप्त नहीं है। फिर संपूर्ण कथा को एक अन्योक्ति मान लेने में किसी को विरोध नहीं होना चाहिए। क्योंकि पद्मावत की मूल कथा साधना की कथा है, सामान्य कथा नहीं। साधना के मार्ग में पग पग पर तर्क से काम लेना काव्य की हत्या करना है। जिस निराकार भक्ति का मसनवी शैली में जायसी ने प्रतिपादन किया है उसकी महानता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। कवि के शास्त्रीय अध्ययन की कमी, काव्य-गुरु का अभाव, जीवन की अनस्थिरता आदि ने मिलकर पद्मावत में अनेक स्थलों पर उसके प्रतीकों की निर्वाहगति में विघ्न डाला है जिसके लिए कवि को एक दम क्षमा तो नहीं किया जा सकता किन्तु फिर भी उसकी मूल साधना को ध्यान में रखकर हमें उसके प्रतीकों पर विश्वास करना ही पड़ेगा। काव्य और भक्ति मस्तिष्क के साथी न होकर हृदय के अधिक साथी हैं। डा० सुधीन्द्र ने ठीक ही कहा है **"पद्मावत एक विराट अध्यात्मिक रूपक संकेत अथवा "अन्योक्ति" है, जिसमें लौकिक, शारीरिक और बोधगम्य प्रतीक के द्वारा अलौकिक, अशरीरी और ज्ञानातीत ब्रह्म, जीव और उसके चिरन्तन सम्बन्ध अद्वैत की व्यंजना की है।"** पद्मावत अपने में समासोक्ति की अधिकाधिक विशेषताओं को समेटते हुए भी अंततः एक अन्योक्ति काव्य है।

मेरी मान्यतायें

१. पद्मावत की मूल कथा अन्योक्ति है।

२. काव्य में आये हर पात्र की प्रतीकात्मकता का प्रश्न उठा कवि के मूल उद्देश्य पर पर्दा नहीं डाला जा सकता।

३. काव्य में अंकित प्रत्येक पंक्ति अन्योक्ति अर्थ को नहीं ध्वनित करेगी।

४. भक्त साधक होने के साथ-साथ जायसी एक महाकवि भी हैं जो देश काल तथा युग की उपेक्षा नहीं कर सके हैं।

५. काव्य के अपेक्षित विस्तार और कवि की दृष्टि विशदता की ओर से आँख मूँद कर एकमात्र रूढ़िवादिता से अन्योक्ति का अर्थ न ध्वनित किया जा सकेगा।
६. **'तन चित उर मन राजा कीन्हा'** वाला अंश जायसी कृत ही है।
७. जायसी का लक्ष्य महान, युग और साहित्य की माँग के अनुकूल था।

हिन्दी सूफी काव्य की विशेषताएँ :—हिन्दी सूफी-काव्य की विशेषताओं को जानने से पूर्व हमें उसकी पृष्ठि भूमि का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

देश के भाग्याकाश से वीरगाथाकालीन विषय परिस्थितियों के बादल छँटने के उपरांत देश में एक नये वातावरण की सृष्टि हुई। राजनीति और जीवन की नित्य व्यवहारिक गति-विधि से प्रभावित हो हिन्दुओं और मुसलमानों में मेल-जोल के भावों का उदय हुआ। पारस्परिक भेद-भावों को दूर करने के लिये अनेक सन्त और महात्मा आगे आये। इनमें कबीरदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कबीरदास ने धर्म के वाह्याडंबरों से मुक्त हो निर्गुण-उपासना का मार्ग बताया। भेद-भाव से रहित, सामान्य मानवीय गुणों से युक्त जीवन पर बल दिया। उनके पथ का अनुगमन करने वाले अन्य संतों ने भी उनकी इस क्रिया में हाथ बँटाया। मुसलमानों की ओर से यह कार्य प्रेम कहानियाँ लिखकर सूफी संतों ने किया। कबीर आदि ने पारस्परिक भेद-भाव को मिटाने के लिए जो ढंग अपनाया वह तीखा होने के साथ-साथ प्रति क्रियावादी भी था। इससे उन्हें अभीष्ट सफलता न मिली। आचार्य शुक्ल के शब्दों में **"मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदय साम्य का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतुबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एकसा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू और मुसलमाल-हृदय को आमने-सामने करके अजनबीपन**

मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।" इन साधकों ने हिन्दी में एक विशेष प्रकार के साहित्य को लुप्त होने से बचा लिया।

प्रेम कहानियों की यह परम्परा कुतबन शेख से आरम्भ होती है जो सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्पन्न हुए थे। कुतबन के पश्चात् मंझन जायसी, उसमान शेख नवी, कासिमशाह तथा नूर मोहम्मद आदि कई प्रेम गाथाकार हुए। इन सब में 'पद्मावत' के अमर प्रणेता जायसी को सर्वाधिक ख्याति मिली।

प्रेम कहानियों के उक्त सभी लेखक सूफी हैं। इनके काव्यों में सूफी सिद्धांत बादल में पानी की बूंद की भाँति पिरोये हुए हैं। इसी नाते इनको सूफी काव्य कहा जाता है। हमें इन्हीं काव्यों की समष्टिगत विशेषताओं पर प्रकाश डालना है।

इन सभी सूफी काव्यों में काफी समानता है। सबकी मूल प्रेरक भावना एक ही है। हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के प्रयत्न के साथ-साथ परम-प्रियतम और जीव के अनन्त सम्बन्ध का दार्शनिक विवेचन करना ही इन कवियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। सामान्यतया इन सूफी काव्यों की निम्नलिखित विशेषताएें कही जा सकती हैं,—

(१) कथानक भारतीय हिन्दू परिवार से सम्बन्धित कल्पना और इतिहास का मिश्रण।
(२) चरित्रों का हिन्दू संस्कृति के अनुसार निर्माण।
(३) प्रेम पद्धति पर सूफी धर्म का प्रभाव।
(४) फारसी मसनवी शैली पर घटनाओं का संगठन।
(५) वियोग की प्रधानता।
(६) भाव व्यंजना में अनूठापन तथा लोक भाषा का प्रयोग।
(७) समस्त कथा का अन्योक्ति रूप में कथन।
(८) हठयोग का समावेश।
(९) हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय की चेष्टा।
(१०) जीव को पुरुष और ब्रह्म को स्त्री के रूप में ग्रहण करना।

समस्त सूफी काव्यों की यह प्रमुख विशेषता है कि उनकी कथा का आधार हिन्दू परिवार है। पद्मावत, मधुमालती, मृगावती तथा चित्रावली आदि सभी ग्रंथों की कथायें हिन्दू घरानों से सम्बन्धित हैं जिनके द्वारा तात्कालिक भारतीय समाज की रीति-नीति और साँस्कृतिक विकास ह्रास का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। सभी प्रेम कथाओं में कल्पना और इतिहास का सम्मिश्रण है। कवियों ने इतिहास से अपनी रुचि तथा उद्देश्य के अनुकूल प्रेम-कथायें चुनकर और सूफी साधना के सिद्धान्तों पर रुचिर-कल्पना के माध्यम से उनका विकास किया। जायसी का पद्मावत ऐसा ही एक उत्कृष्ट काव्य है। उसका पूर्वार्द्ध काल्पनिक और उत्तरार्द्ध बहुत कुछ ऐतिहासिक आधार पर है। जायसी की मनोहर कल्पना ने उसमें जो प्राण प्रतिष्ठा की है वह अवर्णनीय है।

सभी सूफी कवियों ने अपने पात्रों (विशेषतः नारी पात्रों) का चारित्रिक विकास भारतीय संस्कृति के आधार पर किया है इन काव्यों में वर्णित प्रमुख नारियाँ दिव्य प्रेम और सतीत्व की साक्षात देवियाँ प्रतीत होती हैं। पद्मावत की नागमती का पावन-चरित्र एक आदर्श भारतीय रमणी की जीवन-झाँकी प्रस्तुत करता है। जिसमें हमारी संस्कृति और सामाजिक निष्ठा बोलती है। नागमती को अपने काव्य एवं हृदय की समस्त वेदना दे जायसी भारतीय साहित्य में सदैव के लिए अमर हो गए।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि समस्त सूफी साधना का प्राण प्रेम है। सूफी काव्यों में उसी दिव्य प्रेम की कथा कही गई है। यह प्रेम लौकिक से आरम्भ होकर अलौकिक में परिवर्तित हो जाता है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति ही इन सूफी काव्यों का चरम लक्ष्य है। सूफी-साधना के आधार पर इन प्रेम कहानियों का विकास हुआ है कथा का नायक पुरुष जीव का प्रतीक और नायिका ब्रह्म की। गुरु के द्वारा उस ब्रह्म एवं परम प्रियतम के प्रति पूर्व राग उत्पन्न होता है और फिर उसी के निर्देशन में सूफी-साधना के आधार पर विकसित होता हुआ वह उत्कृष्ट प्रेम में बदल जाता है।

प्रायः सभी प्रेमाख्यानक कवियों का प्रणयन मसनवी शैली पर हुआ है कथा प्रारम्भ विकास और उपसंहार सभी उसी पद्धति का अनुकरण करते हैं

पद्मावत भी उसी शैली का एक उत्कृष्ट काव्य है उसमें मसनवी पद्धति के लिए अपेक्षित समस्त बातों का यथास्थान उल्लेख है।

सभी सूफी काव्यों में संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष की प्रधानता है उसका प्रधान कारण यह है कि यह अखिल सृष्टि उस परम प्रिय के वियोग में शोकाकुल है। सूफी काव्यों में उसी प्रियतम के अनन्य प्रेम की लौकिक आधार पर व्यंजना की गयी है उससे वियोग की प्रधानता स्वभाविक रूप से हो गयी है प्रेम की सच्ची कसौटी संयोग न होकर वियोग ही है। उत्कृष्ट प्रेम की कहानी कहने वाले ये सूफी कवि फिर कैसे इसे भूल जाते।

सूफी ग्रन्थों की भावव्यंजना का अनूठापन अवर्णनीय है ये कवि मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों की स्वाभाविक और विशद व्यंजना प्रस्तुत करते हैं पद्मावत में प्रेम या रीत भाव के अतिरिक्त स्वामिभक्ति, वीर-दर्प तथा पातिव्रत आदि अनेक भावों का जो हृदयग्राही चित्र जायसी ने खींचा है वह उनकी काव्य कुशलता का स्पष्ट प्रमाण है। धीरोदात्त नायक के हृदय की उदान्त भावनाओं-दया, क्षमा, धैर्य, सहनशीलता तथा शूरवीरता आदि का चित्रण देखते ही बनता है वास्तव में इन सभी सूफी काव्यकारों ने अपने ग्रन्थ का नायक अभिजात्य वर्ग का रक्खा है। वे सभी आदर्श प्रेमी दृढ़व्रती तथा वीर और अपूर्व साहसी हैं। लोक भाषा में इन कथाओं का माधुर्य और भी निखर उठा है।

सभी प्रेम कथाएँ प्रायः अन्योक्ति के रूप में कही गयीं हैं अर्थात् लौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक कथा का रहस्य उद्घाटित किया गया है। पद्मावत एक सुन्दर अन्योक्ति काव्य है इसकी चर्चा हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं।

सभी सूफी काव्यों पर हठयोग का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है सूफी धर्म का विकास बताते समय मैंने इस बात का संकेत किया है कि किस प्रकार नाथ पंथ तथा हठयोग का समावेश उसमें सहज ही हो गया था। जायसी के पद्मावत में तो हठयोग का स्पष्ट स्वरूप देखा जा सकता है अनेक स्थल इस बात की प्रमाणिक पुष्टि करते हैं।

सूफी काव्यकारों ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य जो किया वह है हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के समन्वय की चेष्टा। हिन्दू संस्कृति की मूल विशेषताओं को अक्षुण्य रखते हुए इन्होंने अपनी सूफी साधना का प्रदिपादन किया। इन्होंने हिन्दू दर्शन के प्रति अपनी अपूर्व निष्ठा प्रकट की। साथ ही साथ अपनी सूफी साधना के प्रचार व प्रसार के मूल लक्ष्य को भी वे नहीं भूले। जो कुछ भी हो इन मुसलमान सूफी काव्यकारों ने जिस साहित्य की सृष्टि की वह हिन्दू और मुस्लिम दोनों को समान रूप से प्रभावित करने वाला हुआ। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की बोली में पूर्ण सहृदयता से कह कर उनके जीवन की मर्म स्पर्शिणी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी वह जायसी द्वारा पूरी हुई।"

मानव हृदय की सरलतम भावव्यंजना करने वाले इन सूफी काव्यों में ब्रह्म को स्त्री और जीव को पुरुष रूप में ग्रहण किया गया है जायसी के पद्मावत में रत्नसेन आत्मा का प्रतीक और पद्मावती परमात्मा का स्वरूप है। सूफी साधना में जीव को ब्रह्म में लय होने के लिए चार अवस्थायें पार करनी होती हैं। वे हैं शरीकत, तरीकत, मारीफत और हकीकत (सिद्धावस्था)। 'जायसी ने' इसकी ओर स्पष्ट संकेत किया है।

चार बसेरे जो चढ़े सत से उतरे पार।

निर्गुण उपासना का जनता में प्रचार करने के लिये ज्ञान मार्गी सन्तों की शैली उपयुक्त न हो सकी। उस कमी को इन सूफी काव्यकारों ने अपनी प्रेम कथाओं के माध्यम से पूर्ण किया।

सूफी साहित्य ने जीवन में सरलता और पवित्रता का संचार किया और समाज के भावात्मक वैर विरोध को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस साहित्य से भारतीय साहित्य के एक विशेष अंग की पूर्ति हुई जिसका अपना एक निजी महत्व है वैसे इन सूफी कवियों का मूल तथा परोक्ष लक्ष्य चाहे जो

कुछ रहा हो परन्तु प्रत्यक्ष में इन्होंने जिस साहित्य की सृष्टि की उससे हिन्दी की अपूर्व श्री वृद्धि हुई। इस नाते सूफी साहित्य का स्थायी महत्व है।

सूफी साधना के तत्व :—सूफियों के अनुसार अनादि अनन्त स्वरूप ब्रह्म एक है। अखिल सृष्टि उसी ब्रह्म की क्रीड़ा है। सृष्टि के विविध रूपों में वही भासमान हो रहा है। वह सौंदर्य का प्रकाश-पुन्ज है जिसके परिणाम-स्वरूप उसे स्वयं से ही प्रेम हो गया। अस्तु उस महान आत्म-सौंदर्य के अवलोकनार्थ उसने अपने को सृष्टि के नाना रूपों में बिखेर दिया। जीव उसी का अंग है, किन्तु प्रपंच में पड़ा रहने के कारण भेद-वृत्ति से युक्त हो गया है। वह अपने पूर्व स्वरूप को भूल चुका है और अहमन्यतावश विश्व के प्रपंच में लिप्त रहता है।

इस प्रपंच से मुक्त होने के लिए साधक को साधना-पथ का अनुगमन करना पड़ता है। जिस पर वह क्रमश: शरीयत, तरीकत और मारिफत तथा हकीकत अवस्थाओं को प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ अन्तर्यामा भी होती है जिसमें सात कयाम होते हैं। वे सात कयाम और कुछ नहीं सात स्थितियाँ ही हैं। तदनंतर साधक ब्रह्मरंध्र में ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। इस कार्य में उसे 'योग' से भी पर्याप्त सहायता लेनी पड़ती है। योग का समावेश भारतीय सूफीमत की अपनी विशेषता है। वाह्य सूफीमत में ऐसा नहीं है। आइए उक्त चारों अवस्थाओं और सातों कयाम का अब विधिवत अध्ययन कर लिया जाय :—

शरीयत :—यह सूफी साधक की प्रथमावस्था है इस अवस्था में उसमें और एक सामान्य मुसलमान में कोई अन्तर नहीं होता। दोनों शरअ के अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं। हाँ परिणाम में अवश्य अन्तर है और वह यह कि मुसलमान के लिए शरीयत ध्येय है परन्तु सूफी इसके विपरीत आगे बढ़ता है। यदि वह इससे आगे न बढ़े तो सूफी ही नहीं कहा जायगा। इस अवस्था में तो उसे मोमिन की संज्ञा मिली रहती है। मोमिन को शरीयत की मंजिल पार करने में कुछ मुकामात से गुजरना पड़ता है जिनके नाम इस प्रकार हैं—तोबा, जहद, सब्र, शुक्र, रिजाअ, खौफ, तवक्कुल, रजा, फिक्र और मोहब्बत।

सर्वप्रथम मोमिन (अर्थात् अल्लाह के प्यारे) को उन बातों का त्याग तथा पश्चाताप करना पड़ता है जो अल्लाह के रास्ते में बाधक हैं। इन्हें 'तोबा' कहा जाता है। उसे इन बाधाओं से लड़ना पड़ता है जो 'जहद' कहलाती हैं। प्रयत्न में सफल होने पर उसे 'सब्र' का सहारा लेना पड़ता है नहीं तो उसमें 'अंह' के उदय हो जाने की संभावना रहती है अहं साधना का विनाशक है। भुलावा देने के लिए शैतान सदैव तैयार रहता है। इस नाते मोमिन को काफी सतर्क रहना पड़ता है इसलिए अपनी सफलता में उसे अल्लाह का 'शुक्र' मानना पड़ता है। ईश्वर के आदेश पर चलना 'रज़ाअ' उससे भयभीत रहना 'खौफ' जीविका के लिए इधर-उधर न भटकना 'तवक्कुल' तथा तटस्थ होकर ईश्वर का ध्यान करना 'रज़ा' है। इस प्रकार निरन्तर साधना 'फिक्र' से उसमें अल्लाह की मोहब्बत का जन्म होता है 'मोहब्बत' की मंजिल पर पहुँच कर मोमिन 'सूफी' (सालिक) बन जाता है और फिर तरीकत में प्रवेश करने को पाँव आगे बढ़ाता है।

तरीकत :—वस्तुतः यह 'सूफी' की प्रथमा और 'साधक' की द्वितीया-वस्था है। इस समय मोमिन साधक (सालिक) बन जाता है और उसे किसी भेदिए की आवश्यकता पड़ती है। वह भेदिया मुरशिद अर्थात् गुरु होता है जो उसे तरीकत के रहस्यों का परिचय कराता है। पीर या मुरशिद अपने मुरीद (शिष्य) की भगवान के प्रति सच्ची लगन देख उसमें प्रेम की चिनगारी डाल देता है। अब चेले का यह काम होता है कि वह उस चिनगी को सुलगाले।

गुरु विरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाई लेइ सो चेला।

—जायसी

पीर अपने मुरीद की प्रत्येक कमजोरी को भली-भांति जानता है, इसलिए वह उसमें ऐसे भाव भरता है जिससे शिष्य को अपने लक्ष्य की दिशा में गति मिले।

पीर की अनुकंपा, दया, दाक्षिण्य तथा अपनी सच्ची लगन के सहारे इस द्वितीयावस्था को पार कर साधक तीसरी कक्षा में प्रवेश करता है।

मारिफत :—यह ज्ञानावस्था है। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते मुरीद, परम सत्ता के आभास के साथ-साथ उसके सारे रहस्यों की कुंजी भी प्राप्त कर लेता

है। इस अवस्था को 'हाल' की दशा भी कहा जाता है। सूफी की संज्ञा 'सालिक' से अब 'आशिफ' हो जाती है।

यह अवस्था ईश्वरीय कृपा का प्रसाद है **"अतः वह बिना शरीयत और तरीकत के व्याकरण के भी सम्पन्न हो सकता है"** (तसव्वुफ अथवा सूफीमत—आचार्य डाक्टर चन्द्रबली पाण्डेय)। इस अवस्था के उपरांत ही साधक हकीकत में प्रवेश करता है।

हकीकत :—इस अवस्था तक आते-आते साधना में पूर्णता आ जाती है। यह अन्तिम अवस्था है। इसमें साधक **'अनलहक'** का उदघोस करता है। परम सत्ता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर साधक ब्रह्ममय हो जाता है। यही फ़ना की स्थिति है। इस अवस्था को **'मकास'** भी कहा जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय की एक रूपता से भी ऊपर साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त कर मनुष्य पूर्ण बन जाता है। उसकी आत्मा ईश्वर में निवास करती है। यही सूफी का चरम् लक्ष्य **'वका'** है। 'फ़ना' और 'वका' में अन्तर इतना ही है कि **'फना'** में साधक का **'अहंभव'** तिरोहित हो जाता है और तब वह सब प्रकार के द्वन्दों से मुक्त हो उस परम प्रियतम में लय हो जाता है जिसे **'वका'** की स्थिति कहते हैं।

इन चारों अवस्थाओं को अपने यहाँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था कहते हैं।

सूफियों ने उपर्युक्त चारों अवस्थाओं के साथ-साथ चार लोकों की भी कल्पना की है जो नासूत, मलकूत जबरूत और लाहूत की संज्ञा पाते हैं।

"साधारण धार्मिक मुसलमान (मोमिन) प्रथमावस्था में शरीयत का पालन करते हुए नासूत (नर लोक) का सेवन करता है, द्वितीयावस्था में मुरीद 'तरीकत' पर विचरण करता हुआ मलकूत (देवलोक) का निवासी बनता है। तत्पश्चात् 'सालिक' तुरीयावस्था (मारिफत) में जबरूत (ऐश्वर्य लोक) में बिहार करता है अन्त में 'आरिफ'-'हकीकत' अवस्था में लाहूत (सत्य लोक किंवा माधुर्य लोक) में विचरण करता है।" —डा० जयदेव

सूफियों के मुकामात—सूफियों के निम्न सात मुकामात बताये जाते हैं।

१—अबूदिया (यह मोमिन के लिए है)

२—इश्क

३—जहद

४—म्वारिफ

५—वज्द

६—हकीकी

७—वस्ल

जायसी ने भी सूफियों के सात ही मुकामात माने हैं और उनका संकेत 'पद्मावत' तथा अखरावट दोनों में किया है।

"आविद (खोजी) शरीयत की मंजिल में 'तोबा', आदि पड़ावों को पार करके 'इश्क' के मुकाम पर प्रथम मंजिल समाप्त कर देता है। इसके पश्चात् इश्क को लेकर 'सालिक' जहद करते हुए तरीकत की दूसरी मंजिल को 'म्वारिफ' मुकाम पर पूर्ण करता है। अब 'म्वारिफ' के पार आरिफ वज्द प्राप्त करता हुआ 'हकीक' के मुकाम पर तृतीय मंजिल समाप्त करता है। तदुपरान्त 'हक' वस्ल को प्राप्त कर 'फना' के मुकाम पर अपनी यात्रा समाप्त कर देता है। इस यात्रा के समाप्त होने पर उसे शाश्वत आनन्द (बका) की प्राप्ति हो जात है जो सूफियों का ध्येय है।"—डा० जयदेव

इस यात्रा का विवरण निम्नाँकित चार्ट से कुछ अधिक सरलता से समझा जा सकता है :—

क्रम संख्या	अवस्था	लोक	यात्री की संज्ञा	मुकामात		
				प्रारम्भ	मध्य	अन्त
१	शरीयत	नसूत	मोमिन	अब्द	—	इश्क
२	तरीकत	मलकूत	सालिक	इश्क़	जहद	म्वारिफ
३	मारिफत	जबरूत	आरिफ	म्वारिफ	वज्द	हक़ीक
४	हकीकत	लाहूत	हक़	हक़ीक	वस्ल	फ़ना

कुछ लोग अन्तिम अवस्था 'बका' मानते हैं, जो 'फ़ना' के पश्चात् प्राप्त होती है, और अन्तिम लोक 'हाहूत' बताते हैं।

प्रश्न २४—अखरावट में सूफी दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा आखिरी कलाम में निर्णय के दिन का वर्णन है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अखरावट जायसी का सिद्धान्त ग्रन्थ और उनकी अन्तिम कृति है। इसमें उनके दार्शनिक विचारों को वाणी मिली है। उनका चिन्तक मन अपने गम्भीरतम स्वरूप में प्रकट हुआ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस दार्शनिक काव्य ग्रन्थ में उनके दर्शन का स्वरूप क्या है? क्या सूफी दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही कवि का प्रमुख लक्ष्य रहा है? ग्रन्थ का आद्योपांत मनन करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि अखरावट का दर्शन विभिन्न दर्शनों के सार का संगुफन है। उसमें अनेक दर्शन के तत्व आकर मिले हैं परन्तु प्रधानता सूफी दर्शन की है। इसका प्रमुख कारण यही है कि जायसी एक सूफी मुसलमान भक्त कवि थे, फिर यह कैसे सम्भव था कि सूफियों के मूल लक्ष्य को वे भूल जाते, रक्त-गत संस्कारों से दूर चले जाते। हाँ, यह मैं अवश्य कहूँगा कि उनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अन्य सूफी कवियों से अधिक उदार तथा विशद था। वे संकीर्णता से बहुत ऊँचाई पर थे। सूफी होते हुए भी अन्य दर्शन के मूलभूत विचारों को उन्होंने उचित आदर प्रदान किया और उनसे जितना सुविधापूर्वक ग्रहण कर सकते थे ग्रहण भी किए। किसी के प्रति संकुचित भाव उनके हृदय में न थे। आइये अब प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित कवि के दार्शनिक विचारों एवं सिद्धान्तों का विवेचन कर लिया जाय।

ईश्वर जीव और सृष्टि—इस सम्बन्ध में अखरावट का कवि भारतीय वेदान्त से प्रभावित है। कवि की कल्पना है कि प्रारम्भ में केवल एक महाशून्य था और कुछ नहीं था उस महाशून्य में ईश्वर व्याप्त था। उसी महाशून्य से सृष्टि की रचना हुई। इस्लामी रवायतों (कथाओं) में यह है कि महाशून्य

रूपी अल्लाह ने कहा—'कुन्' (अर्थात् प्रकाश हो) और प्रकाश हो गया। अखरावट का कवि भी कहता है

गगन हुता, नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसह अन्धकूप महँ, रचा मुहम्मद नूर॥

उस अल्लाह (साईं, आदि गोसाईं) ने खेल के लिए इस सृष्टि की रचना की। चौदह भुवनों का विस्तार उसी का खेल है और उनमें वही व्याप्त है। इन भुवनों में अठारह सहस्र योनियों के सभी जीव उसी से उत्पन्न हुए हैं।

आदिहु ते जो आदि गोसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाईं॥
जस खेलेस तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा॥
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती॥

मुहम्मद नामक नूर के प्रेम बीज से श्वेत और श्याम दो अंकुर निकले। श्वेत अंकुर से निकलने वाला पत्र धरती बना और श्याम अंकुर से निकलने वाला पत्र आकाश। तदुपरि इसी द्वैत के आधार पर सूरज-चाँद, दिन-रात, पाप-पुण्य, सुख-दुख, आनंद-संताप, तथा नरक-बैकुण्ठ और झूँठ-सच की सृष्टि हुई। फिर उसने इबलीस का निर्माण किया तथा अपनी ही प्रतिमूर्ति के रूप में आदम का। इसके बाद चार फरिश्ते, फिर चार भूतों और अंत में पँच भूतात्मक इन्द्रियों की रचना हुई। इन पंच भूतों और भूतात्मक इन्द्रियों से उसने **'काया'** का निर्माण किया जिसमें बीच-बीच में नव खुले द्वार रखे और दसवाँ द्वार (ब्रह्मरंध्र) बंद रखा। आदम की सृष्टि जब हो गई तो ब्रह्म (अल्लाह) ने इबलीस तथा अन्य फरिश्तों को बुलाया और उनसे कहा कि यह दूसरी सृष्टि है, इसकी बंदगी में सर झुकाओ। सब फरिश्तों ने सर झुकाये परंतु इबलीस (नारद=शैतान) ने नहीं। तब अल्लाह ने उसे दशवें द्वार का रक्षक बनाया। यहीं से नारद का आदम से साथ हो गया और उसने मनुष्य को धर्म मार्ग से बहका कर पापी कर दिया। आदम द्वारा हौवा का सृजन हुआ। शैतान के चक्कर में पड़कर उन्हें स्वर्ग से निकलना पड़ा और फिर धरती पर आकर उन दोनों ने सृष्टि चलाई।

जीव और ब्रह्म का सम्बंध बड़ा न्यारा है जीव की रचना ब्रह्म ने अपनी प्रभुता प्रकट करने मात्र के लिए की।

जौं उतपति उपराजै चहा। आपनि प्रभुता आपु सौं कहा॥
रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। दरसा सहस अठारह बुंदा॥
सोइ अंस घटै घट मेला। औ सोइ वरन-वरन होइ खेला॥
भए आपु औ कहा गुसाईं। सिर नावहु सगरिउ दुनियाई॥
आने फूल भाँति बहु फूले। बास वेधि कौतुक सब भूले॥

जीव ब्रह्म के अनुरूप ही है—

बूँदहि बूँद समान, यह अचरज कासौ कहौं।
जो हेरा सो हैरान, मुहम्मद आपुहि आपु महँ॥
× × ×
दूध माँझ जस घीउ है, समुँद माँह जस मोति।
नैन मीजि जो वेखहु, चमक उठै तस जोति॥

जीव और ब्रह्म के बीच जो भिन्नता दिखाई देती है वह अज्ञान के कारण। जिस प्रकार एक बालक दर्पण में अपने ही प्रतिविम्ब को अन्य समझता है, वैसे ही जीव और ब्रह्म की स्थिति है—

दरपन बालक हाथ, मुख देखै दूसर गनै।
तस भा दुह एक साथ, मुहम्मद एकै जानिये॥
× × ×
उहै दोउ मिलि एकै भयऊ। बात करत दूसर होइ गयऊ॥

इस प्रकार ब्रह्म और जीव की एकता की स्पष्ट घोषणा कवि करता है। ब्रह्म ही समस्त जगत एवं सृष्टि का आदि कारण है—

बिना उरेहु अरंभ बखाना। हुता आप महँ आपु समाना।

वह रूप रंग जाति रहित, ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी परे दार्शनिकों का निरुपाधि ब्रह्म है। वह अगम है अगोचर है, अद्वैत है।

सरग न धरति न खंभमय, बरम्ह न विसुन महेस।
बजर बीज बीरौ अस, आहि न रंग न भेस॥
× × ×

वा वह रूप न जाइ बखानी। अगम-अगोचर अकथ कहानी ।।

× × ×

ओहि ना बरन न जाति अजाती। चंद न सुरज, दिवस ना राती ।।

× × ×

जो किछु है सो है सब, ओहि बिनु नाहिन कोइ।
जो मन चाहा सो किया, जो चाहै सो होइ ।।

× × ×

एक से दूसर नाँहि, बाहर भीतर बूझि लै।
खाँडा दुइ न समाइ, मुहम्मद एक मियान मँह ।।

शरीर की रचना—व्यापक ब्रह्म जिस प्रकार सारी सृष्टि में समाया हुआ है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी। इसलिए कवि मनुष्य के शरीर में संसार की प्रतिच्छाया देखता है। यह शरीर चार फरिश्तों—मीकाईल, जिब्राईल, इसराईल तथा इसराफील—द्वारा चार तत्वों—मिट्टी, जल, अग्नि और वायु से निर्मित किया गया है और उसमें पाँच इन्द्रियों को प्रविष्ट कराया गया है—

भइ आयसु चारिहु कै नाऊँ। चारि वस्तु मेर वहु एक ठाऊँ ।।
तिन्ह चारिहू कै मन्दिर सँवारा। पाँच भूत तेहि मंह पैसारा ।।

इस शरीर रूपी मन्दिर के दस द्वार हैं किन्तु दसवाँ द्वार ब्रह्मरंध्र बन्द कर दिया गया है—

नव द्वारा राखै मँझियारा । दसँव मूदि कै दिएउ केवारा ।।

यह शरीर जगत का एक संक्षिप्त संस्करण है—

माथ सरग धर धरती भयऊ। मिलि तिन्ह जग दूसर होइ गएऊ ।।

× × ×

सुनु चेला जस सब संसारू। ओही भांति तुम कया विचारू ।।

कवि ने पिण्ड ब्रह्मांड की समानता का बड़े विस्तार में वर्णन किया है और उस पर इस्लामी धर्म का पूर्ण आरोप किया है। इसी में स्वर्ग-नर्क, चांद-सूरज,

दिन-रात, ऋतु-महीने, मक्का-मदीना, फरिश्ते, मुरशिद, खलीफा तथा आसमानी पुस्तकें आदि सभी कुछ विद्यमान है। संक्षेप में—

सातौं दीप नवखंड, आठौं दिसा जो आहि।
जो बरम्हंड सो पिंड है, हेरत अन्त न जाहि॥

कवि ने शरीर के सातों खण्डों में सात ग्रहों की कल्पना की है। इस शरीर निर्माण का प्रमुख कारण यह है कि जीव उसमें रहते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार कर ले।

साधना—अखरावट में वर्णित साधना, सूफी-साधना है। सूफी साधना मूलत: प्रेम और विरह की साधना है। **'साधक को अपने भीतर बिछुड़े हुए प्रियतम (अद्वैत स्थिति, अल्लाह) के प्रति 'प्रेम की पीर' जगानी पड़ती है।'** किसी समय जीव और ब्रह्म एक ही थे। न जाने कब किस कारण उनमें भेद उत्पन्न हो गया। तभी से जीव उस ब्रह्म से एकाकार होने के लिए प्रतिपल तड़पा करता है।

हुता जो एकहि संग, औ तुम्ह काहे बीछुरे॥
अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाई किछु॥

वस्तुत: यह तरंग प्रेम की ही तरंग है। परन्तु उस परम प्रेममय को प्राप्त कर लेना सरल नहीं। वैसे तो उसे प्राप्त करने के लिए अनेक मार्ग हैं यहाँ तक कि असंख्य हैं—

विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन-रोआं जेते॥

परन्तु एक सच्चे मुसलमान की भांति जायसी का पूर्ण विश्वास था कि इन असंख्य मार्गों में सर्वाधिक सहज और सरल मार्ग मुहम्मद साहब का है—

तेहि मँह पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनो जग छाज बड़ाई।
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा॥
लिखि पुरान विधि पठवा साँचा। भा परवान दुऔ जग बांचा।
सुनत ताहि नारद उठि भागे। छुटे पाप पुन्नि सुनि लागै॥

वह मारग जो पावै, सो पहुँचे भव-पार।
जो भूला होइ अनतँहि, तेहिं लूटा बट-मार॥

सूफियों के अनुसार कुरान एक पवित्र ग्रंथ था और मुहम्मद साहब एक महान् पुरुष थे। इसलिए वे उनका आदर तो करते थे परन्तु इस्लाम की तरह विश्वास नहीं। ईश्वर की सर्व व्यापकता एवं अद्वैतता में उन पर अद्वैत का प्रभाव स्पष्ट था। प्रपंच के कारण ही जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न अनुभव करता है। इस प्रपंच से मुक्त होने के लिए जायसी ने सूफीमत की चारों अवस्थाओं और सातों मुकामात का सांकेतिक विवेचन किया है। देखिए वे स्पष्ट कहते हैं कि बिना शरीयत के अनुसरण के साधक अपने ध्येय को कभी प्राप्त ही नहीं कर सकता। उसके अनुसरण के पश्चात् ध्येय प्राप्ति का पूर्ण विश्वास हो जाता है।

सांची राह शरीयत, जेहि विस्वास न होइ।
पांव राखि तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचे सोइ॥

× × ×

राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत पार पहूँची॥

× × ×

सात खण्ड और चार नसेनी। अगम पड़ाव पँथ तिरबेनी।

× × ×

बाँक चढ़ाव सात खण्ड ऊँचा। चारि बसेरे जाइ पहूँचा॥

सूफीमत में गुरु की महत्ता कितनी होती है यह बताने की आवश्यकता नहीं। अखरावट का कवि भी इसे भली-भाँति जानता है और उसे यह पता है कि प्रेम के इस अगम मार्ग पर गुरु की बिना विशेष अनुकम्पा के कोई अग्रसर नहीं हो सकता। इसलिए वह कहता है :—

दा-दाया जाकँह गुरु करई। सो सिख पंथ समुझि पग धरई॥

× × ×

तौ वह चढ़ै जो गुरु चढ़ावै। पाँव न डिगै, अधिक बल आवै॥

जो बिना गुरु की सहायता के आगे बढ़ता है वह अवश्य ही पथ-भ्रंष्ट हो जाता है—वह शैतान के जाल में फँस जाता है—

जो अपने बल चढ़ि कै नाघा। सो खसि परा टूटि गइ जाँघा ॥
नारद दौरि संग तेहि मिला। लेइ तेहि साथ कुमारग चला ॥

अस्तु गुरु-कृपा का संयोग परम आवश्यक और अत्यन्त सुखकर है :—

जेइ पावा गुरु मीठ, सो सुख मारग मँह चलै।
सुख आनन्द भा डीठ, मुहम्मद साथी पौढ़ जेहि ॥

प्रियतम का मार्ग बड़ा ही कठिन है, स्वयं को खोकर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि विचार मन, लेहु न हेरि हेराइ ॥

जिन्हें ऐसा करने पर सिद्धि मिल जाती है उनके लिए एक बड़ा कड़ा प्रतिबन्ध है कि वे अपनी सिद्धि को प्रकट नहीं कर सकते, यदि प्रकट कर दें तो साधना भंग हो जाय। इसलिए जो सफल हो जाता है वह चुप ही रहता है।

जो जाने सो भेद न कहई। मन मँह जानि बूझि चुप रहई ॥

कवि ने साधक को मन वचन कर्म से अत्यन्त ही पवित्र संयमित रहने का उपदेश दिया है।

जायसी ने नाथ संप्रदाय से अनेक बातें ज्यों की त्यों ग्रहण कर ली हैं और उनके पारिभाबिक शब्दों को अपनी साधना में मिला अपने सूफीमत को एक विचित्र स्वरूप प्रदान किया है। जायसी की यह देन भारतीय सूफीमत की एक विशिष्टता बन गई। जायसी की साधना समन्वयात्मक गुणों से भरपूर है।

इस प्रकार हम देखते हैं अखरावट में सूफी दर्शन के सिद्धांतों की प्रधानता है। उसे ही केन्द्र मानकर कवि ने अपने दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन किया है। वैसे "अखरावट में जायसी किसी सिद्धांतवाद में बँध जाना नहीं चाहते। वे योग उपनिषद अद्वैतवाद, भक्ति और इस्लामी एकेश्वरवाद से बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। उनके लिए कुछ भी अग्राह्य नहीं है, यदि वह उनमें प्रेम की पीर जगाने में सफल हो सके। अलग-अलग पंथों की अनेक भावनायें, अनेक

विचारावलियाँ, अनेक सूक्तियाँ जायसी के धर्मभाव में मिलकर उससे इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि चमत्कृत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वैत) योग (हठयोग, चक्रभेद और आनन्दवाद) और सूफी इस्लामी सिद्धान्तों का समन्वयात्मक एकीकरण जायसी की विशेषता है।"

(डा० रामरतन भटनागर)

आखिरी कलाम—आखिरी कलाम इस्लामी युवक जायसी द्वारा खींचे गए कयामत के दिन का चित्र उपस्थित करता है। इसकी कथा वस्तु का विस्तृत विवेचन जायसी की कृतियों वाले अध्याय में मैं कर चुका हूँ। यहाँ पर कुछ प्रमुख स्थलों का उदाहारण देकर मैं मूल कथावस्तु का संकेत मात्र करूँगा।

जिस समय जायसी ने इस ग्रन्थ की रचना की उस समय वे सूफीमत के रंग में नहीं रँगे थे। कुरान और हदीसों पर विश्वास रखते थे। इसी नाते कट्टर मुसलमान की भाँति उन्होंने मुहम्मद साहब और फरिश्तों का चित्रण प्रस्तुत किया है।

"इस्लाम ग्रंथों में महाप्रलय एवं न्याय-दिवस का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि महाप्रलय में सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश हो जायेगा। तत्पश्चात समस्त प्राणी परमात्मा के सम्मुख उपस्थित होकर अपने-अपने कृत्यों का विवरण देंगे, उनकी इन्द्रियाँ उनकी साक्षी होंगी। विचारक परमात्मा उनके कृत्यों के अनुसार प्रत्येक प्राणी को स्वर्ग नरक की व्यवस्था देंगे। इस विवरण में 'पुले-सरात', 'कौसर-स्नान,' शराब, हूर, आदि के प्रसंग भी सम्मिलित हैं। मुसल-मानों का यह भी विश्वास है कि हजरत मुहम्मद अपने अनुयायियों के पापों को परमात्मा से क्षमा करा देंगे। खुदा उस वक्त कयामत के लिए कहेगा "ऐ मुहम्मद जिनको तुमने पेश किया वे तुम्हें जानते हैं मुझे नहीं जानते" —आचार्य शुक्ल।

"यह सूफियों की धारणा है। सारांश यह है कि कयामत का होना; प्राणियों का उठना, पुले-सरात को पार करना ईश्वर के समक्ष उपस्थित होना रसूल उम्मत को क्षमा प्रदान तथा शाश्वत स्वर्ग बिहार—ये मूल बातें धार्मिक ग्रंथों से ली गई हैं। इनके अतिरिक्त ४० दिन अग्नि उपल वर्षण

४० दिन जल वर्षण, ४० वर्ष तक ईश्वर का एकांत एवं विचार, प्राणियों का नंगे वदन तथा तालू पर आँख होना, अन्य पैगंबरों के पास जाकर रसूल का दैत्य प्रदर्शन, फातिमा की खोज, उसका क्रोध, खुदा की रसूल पर धोंस, रसूल का फातिमा को समझाना, दावत विशेषताएँ ईश्वर दर्शन, दो दिन तक बेहोश पड़े रहना आदि विवरण कवि-कल्पना प्रसूत है।"— डा० जयदेव

अब कुछ उदाहरण लीजिए :—

प्रलय का दृश्य—

जबहिं अंत कर परलै आई। धरमी लोग रहै ना पाई॥
जारहिं माया मोह सब केरा। मच्छ रूप कै आयहिं बेरा॥
धूम वरन सूरज होइ जाई। कृस्न बरन सब सिष्टि देखाई॥
जो रे मिले तेहि मारै, फिरि-फिरि आइकै गाज।
सब ही मारि 'मुहम्मद' भूज अरहिता राज।

× × × ×

पुनि मैकाइल आयसु पाये। अनवन भाँति मेघ बरसाये॥
पहिले लागै परै अंगार। धरती सरग होइ उजियार॥
लागी सबै पिरिथिमी जरै। पाछे लागे पाथर परै॥
जिया जंतु सब मरि घटे, जिता सिरजा संसार।
कोउन रहै मुहम्मद, होइ बीता संसार।

× × × ×

जिबराइल पाइब फरमानू। आइ सिष्टि देखब मैदानू॥

× × × ×

मकाइल पुनि कहब बोलाई। बरसौ मेघ पिरिथिमी जाई॥

× × × ×

पुनि इसराफील फरमाये। फूँके सब संसार उड़ाए।

× × × ×

अजराइल कह बेगि बोलाए। जीव जहाँ लगि सबै बोलाई।

और फिर—

चालिस बरिस जबहिं होइ नै हैं। उठिहि मया पहिले सब औहै
मयामोह कै किरपा आये। आपुहि कहे आपु फरमाये
मैं संसार जो सिरजा एता। मोर नाँव कोऊ नहिं लेता
जतने परे अब सबहिं उठावो। पुल सेराव कै पंथ रंगावो

इस प्रकार कथा आगे चलती है। सम्पूर्ण ग्रंथ के अवलोकन से
होता है कि इस्लाम के अनुसार कयामत के दिन का जो वर्णन है ज
'आखिरी कलाम' में उसे ही प्रमुखता दी है। हाँ अपनी ओर से का
तथ्य जो उन्होंने जोड़े हैं, वे उनकी मौलिक उपज के अन्तर्गत आते हैं।
कलाम में जायसी का एक कट्टर इस्लामी मुसलमान का ही स्वरूप प्र
से प्रकट हुआ है। समन्वयात्मक प्रवृत्ति के तो वे थे ही, जो कि उस
एक विशेषता थी। प्रारम्भिक कृति होने के नाते कवि के अपरिपक्व
और सिद्धांतों को ही उसमें वाणी मिली है।